॥ श्रीः ॥

साधारण धर्म्म।

हिन्दी भाषा का अद्वितीय ग्रन्थ

जो

सब मतमतान्तरों के झगड़ों से रहित

और

सत शास्त्रों और मुख्य २ मतों के सिद्धान्तों

का प्रकाशक पूज्यपाद,

योगेश्वर श्री १०८ श्रीस्वामी शिवगणजी

आचार्य शान्ति आश्रम उर्दू भाषा रचित

से

मुन्शी शिवप्रताप

प्राइवेट सेक्रेटरी श्री दर्बार और इन्स्पेक्टर

सरिश्ते तालीम कोटा

ने

हिन्दी भाषा में अनुवाद करके

आगरा

मून प्रेस में छपा सन् १९०६ ई०

तृतीयबार १००० } ※ { मूल्य १)

भूमिका।

परमात्मा की प्रेरणा और योगाभ्यास के साधनों के प्रताप से सत्य धर्म का अभाव देख कर बहुतसे महत्पुरुषों की इच्छा के अनुसार और बहुतसे योग्य पुरुषों की सम्मति के द्वारा मैंने यह पुस्तक साधारण धर्म्म नाम की लिखी है जिस्से यह प्रयोजन है कि सच्चे धर्म्म के खोजने वालों को क्रम से उन्नति करने का अवसर मिले और संसार के दुःखों की निवृत्ति होकर सुखों की वृद्धि हो॥

इस समय बहुतसे मनुष्य धर्म्म की उन्नति के लिये परिश्रम कर रहे हैं जिन में से कई तो अपने लाभ के हेतु काम कर रहे हैं, कई केवल एक वा अधिक सिद्धान्तों पर वादविवाद करना ही ठीक समझते हैं और कई केवल एक वा अधिक धर्म्म के अङ्गों को ही फैलाना और काम में लाना आवश्यक समझ कर उस की ओर पूरा ध्यान लगा रहे हैं और एक बात में अदला बदली करने से अनेक बातों में हेर फेर करने की आवश्यकता पड़ती है और उन अगणित अदला बदली को देख कर वे लोग घबरा जाते हैं और उन का मन उच्चाटन होजाता है और इसी कारण से जैसी चाहिये सफलता प्राप्त नहीं होती ऐसी व्यवस्था में धर्म्म का क्रम से सरल बोली में और स्पष्टता के साथ वर्णन आशा है कि धर्म्म के खोजने वालों के लिये अवश्य लाभदायक होगा॥

शिवगण।

श्री

भूमिका।

जब कि योगेश्वर स्वामीजी महाराज श्री १०८ श्री शिवगणजीने अपनी रची हुई साधारण धर्म की उर्दू पुस्तक छपा करके मेरे पास भेजी तो मैंने उस को आद्योपान्त कई बार पढ़ा और अवसर मिलने पर अपने कई मित्रों को भी सुनाया जिन्होंने उस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की और शोक प्रकाश किया कि ऐसी उत्तम पुस्तक हिन्दी भाषा में नहीं है जिस्से वे और भारतवर्ष के संपूर्ण हिन्दी भाषा के रसिक लाभ उठासकें मेरे परम मित्र राजा साहिब श्री बिजयसिंहजी ने मुझ से अपनी इच्छा प्रगट की कि आप उस का हिन्दी भाषा में उल्था करें निदान उन के कथन और श्री स्वामीजी महाराज की आज्ञा से यह साधारण धर्म का हिन्दी अनुवाद छपवा कर पाठकों की भेट करता हूं और आशा करता हूं कि सब सज्जन पुरुष इस को पढ़ कर और इस की शिक्षाओं पर चल कर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का लाभ उठावेंगे॥

इस अविद्या के समय में धर्म का अर्थ सर्व साधारण मनुष्यों ने थोड़ासा संध्योपासन करलेना और दरिद्रियों को कुछ दान देदेना ही समझ रक्खा है यह बड़ी भूल है, जो लोग इस पुस्तक को पढ़ेंगे उन को ज्ञात होगा कि धर्म का क्या अर्थ है और किस प्रकार से वह सब को प्राप्त होसक्ता है॥

धर्म प्रचारक जितने पहिले वा इन दिनों में होचुके हैं उन की यही इच्छा रही है कि जितने मत उन से पहिले विद्यमान हैं वे सब नष्ट होजावें और केवल उन का ही मत संसार में फैल जावे हज़रत मोहम्मद, स्वामी शङ्कराचार्य्य, गुरु नानक और स्वामी दयानन्द सरस्वती इत्यादि का जीवन चरित्र पढ़ने से जान पड़ता है कि जो ढङ्ग उन्होंने अपने मत फैलाने का निकाला उस में दूसरों के मत का खण्डन करना ही अपना मुख्य उद्देश समझा और इस उद्देश का परिणाम जो हम देखते हैं यह हुआ कि सब मतों के एक होजाने के बदले मतों की संख्या में एक मत की और अधिकता होगई। हमारे स्वामीजी महाराज का ढंग इन पहिले मत प्रचारकों से सर्वथा निराला है। यह किसी की निन्दा नहीं करते क्योंकि सोच विचार कर देखा जावे तो उत्तम सिद्धान्त सब मतों के एक ही हैं और झगड़े जितने हैं वे सब ऊपरी बातों में हैं इन सब झगड़ों के मिटाने के लिये और सत्य धर्म का प्रचार करने के हेतु ऐसे उपदेशकों की आवश्यकता है जैसे कि प्राचीन समय में मुनि ऋषि और महात्मा होगये हैं स्वामीजी महाराजने ऐसे महात्मा उत्पन्न करने के लिये अपने गुरुजी की स्मरण में सत्युग के आश्रमों की भांति शिवगिर शान्ति आश्रम गुजरात (पंजाब) में स्थापित किया है जहां साधुओं को योगाभ्यास की शिक्षा दीजाती है हमारी परमेश्वर से यह प्रार्थना है कि वह सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर श्री स्वामीजी महाराज और इस आश्रम को दीर्घायु करे कि जिस से सच्चे महात्मा उत्पन्न होकर इस संसार के दुःखों की निवृत्ति और सुखों की प्राप्ति हो॥

शिवप्रताप।

राजा साहिब श्री विजयसिंहजी
की सेवा में।

प्रिय महाशय !

आप की धर्म्म के निर्णय में रुचि, हिन्दी भाषा की उन्नति की अभिलाषा तथा मेरे साथ पूर्ण प्रीति को देख कर इस ग्रन्थ को जिस का आप ही की इच्छानुसार मैंने भाषा अनुवाद किया है आप की भेट करता हूं, आशा है कि आप इस को स्वीकार करेंगे और इस को पढ़ कर और इस में लिखी हुई शिक्षाओं पर चल कर लाभ उठावेंगे ॥

आप का हितैषी,

शिवप्रताप ।

साधारण धर्म्म के विषयों का सूचीपत्र ॥

विषय	पृष्ठ

इति।

॥ श्रीः ॥

साधारण धर्म की अकारादि अनुक्रमणिका ।

॥ श्रीः ॥

अथ साधारण धर्म्म।

धर्म एक संस्कृत शब्द है जिस का अर्थ धारण करना है, बोल चाल में धर्म उन कर्मों को कहते हैं जिन के जानने और ठीक २ करने से इस संसार में सुख और अन्त में मुक्ति मिल सक्ती है, और इस के विरुद्ध उन कर्मों को न जानने और न करने को अधर्म कहते हैं जिस के कारण अनेक प्रकार के दुःखों में फंसना पड़ता है॥

जिन कर्मों को करते समय या फल भोगते समय अपने को वा दूसरों को आराम मिले वे धर्म में गिने जाते हैं और जिन को करते समय वा फल भोगते समय अपने को या दूसरों को दुःख पहुंचे वे अधर्म समझने चाहियें॥

जिन कर्मों के करने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियां क्रम से बढ़ती चली जावें और जिन रीतों पर चलने से मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान हो और इस विश्व से अपना सम्बन्ध जान पड़े वह धर्म है और इस के विरुद्ध अधर्म॥

दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्मों को अधर्म और शुभ संस्कार और शुभ कर्मों को धर्म कहते हैं॥

दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्म अर्थात् बुरे विचार और बुरे काम वे हैं जिन के करते समय भय, शङ्का या लज्जा उत्पन्न हो॥

खाना, पीना, सोना, जागना, हर्ष, शोक, मित्रता, शत्रुता आदि सारी बातों में मनुष्य और पशू दोनों बराबर हैं परन्तु मनुष्य में एक ऐसी शक्ति भी विद्यमान है जिस के कारण से धर्म और अधर्म को पहिचान सक्ता है और धर्म को भले प्रकार जान कर और उस के

अनुसार चल कर ऊंचे से ऊंचे पद प्राप्त कर सक्ता है और इसी कारण से मनुष्य इस सृष्टि के सारे चराचर से ऊंचे पद का समझा गया है ॥

जिन महात्मा पुरुषों ने धर्म को भले प्रकार जान कर उस के अनुसार कर्म किये हैं उन को उस के फल में शहद से अधिक मिठास, जल से अधिक शीतलता, चन्द्रमा से अधिक शांति और आनन्द और सूर्य से अधिक तेज और प्रकाश जान पड़ता है। वे धर्म को एक पल भी छोड़ना नहीं चाहते और उस को अपने आप धारण करना और दूसरों को धारण कराना अपना सब से बड़ा कर्तव्य समझते हैं। स्वार्थी और अज्ञानी पुरुष उन को ऐसा करने से बहुधा रोकना चाहते हैं और अनेक प्रकार के कष्ट भी पहुंचाना चाहते हैं परन्तु धार्मिक पुरुष किसी रुकावट और कष्ट का ध्यान न करके धर्म के लिये अपना जीव तक अर्पण करने को तय्यार रहते हैं ॥

मनुष्य चाहै किसी देश का हो किसी जाति का हो, धनाढ्य हो वा कङ्गाल, पढ़ा लिखा हो वा अज्ञानी, बालक हो वा वृद्ध, पुरुष हो वा स्त्री, सब धर्म को प्राप्त करने और उस के फल भोगने के अधिकारी हैं ॥

जब मनुष्य जन्मता है तो धर्म वा अधर्म उस के साथी बनते हैं। जन्म भर हर समय में ये बराबर साथ रहते हैं और जब मनुष्य मरजाता है तो सारी सांसारिक वस्तुएं स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर, धन, मान, बड़ाई इत्यादि उस का साथ छोड़ कर यहां ही रहजाते हैं केवल धर्म और अधर्म साथ जाते हैं। इस कारण सब को उचित है कि धर्म को अति आवश्यक समझ कर उस को जानने का और उस के अनुसार उमर भर चलने का उपाय करै और दूसरों से प्रयत्न करावे ॥

सांसारिक वस्तुओं के प्राप्त करने में बहुत परिश्रम उठाना पड़ता है फिर भी कभी प्राप्त होती हैं और कभी नहीं, क्योंकि यदि बहुतसे मनुष्य उपाय करें कि वे राजा बनजावें तो वे सब कदापि नहीं हो सक्ते और इस के सिवाय सांसारिक वस्तुओं के प्राप्त होने पर यदि उन का अनुचित बर्ताव किया जावे तो सम्भव है कि अपने तईं वा दूसरों को दुःख पहुंचे परन्तु धर्म को यदि लाखों और करोड़ों मनुष्य प्राप्त करना चाहैं तो सब को प्राप्त हो सक्ता है। धर्म के प्रभाव से सांसारिक सामान भी थोड़े परिश्रम से मिलने सम्भव हैं और उन का अनुचित बर्ताव कभी नहीं हो सक्ता। और न यह कभी सम्भव है कि धार्मिक पुरुषों से किसी को दुःख पहुंचे ॥

जैसे उत्पन्न होने से लेकर मरण पर्यंत मनुष्य की अवस्था की एक ही श्रेणी दीख पड़ती है परन्तु उस में बालकपन, युवा अवस्था, बुढापा इत्यादि भेद उपस्थित हैं और जैसा बचपन में प्रारम्भ होजाता है उसी रीति से तरुणाई और बुढ़ापा बहुधा व्यतीति होते हैं इसी रीति से धर्म अर्थात् मनुष्य के कर्मों की एक ही पंक्ति जान पड़ती है तो भी धर्म निरूपक अर्थात् धर्म के खोजने वालों को सुलभता और बर्ताव के लिये धर्म के थोड़े से भेद कर देना योग्य समझा गया और उन भेदों में से शारीरिक धर्म इत्यादि प्रथम कर्मों को पूर्णता से वर्णन करना उचित समझा गया है क्योंकि आदि अच्छा होने से अन्त तक सुगमता से सफलता होती चली जावे ॥

प्रथम दो बड़े भेद १ लौकिक और २ पारलौकिक धर्म हैं। लौकिक धर्म से प्रयोजन उन कर्मों से है जिन को जानने और काम में लाने से शरीर आरोग्य और निर्मल बुद्धि होकर अपने मन चाहे सांसारिक सुख मिलना सम्भव है ॥

पारलौकिक धर्म से वे कर्म समझने चाहियें जिन के द्वारा मोक्ष मिलता है ॥

लौकिक धर्म के पांच भेद किये गये हैं :—

१—शारीरिक धर्म अर्थात् देह के कर्म।

२—मानसिक धर्म अर्थात् व्यवहारिक कर्म।

३—आत्मिक धर्म अर्थात् जीव के धर्म।

४—गृहस्थ धर्म अर्थात् कुटुम्ब के धर्म।

५—सामाजिक धर्म अर्थात् जाति धर्म।

इसी रीति से पारलौकिक धर्म के चार भेद हैं :—

१—संन्यास धर्म अर्थात् संसार त्यागन करने के धर्म।

२—योगाभ्यास।

३—ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान।

४—मोक्ष।

प्रथम विभाग।

प्रथम अध्याय।

शारीरिक धर्म की व्याख्या।

शारीरिक धर्म से उन कर्मों से प्रयोजन है जो इस स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। जो मृत्यु के पश्चात् यहीं रहकर नष्ट होजाता है॥

ये कर्म जन्म धारण करते ही आरम्भ होजाते हैं। जैसे दूध पीना, हाथ पांव इत्यादि शरीर के विभागों को हिलाना, मल मूत्र का त्याग करना, सोना, जागना इत्यादि॥

थोड़े समय तक ये कर्म स्वाभाविक ही होते रहते हैं परन्तु ज्यों ज्यों मनुष्य बड़ा होता जाता है सृष्टि कर्त्ता इन कर्मों के करने का बोझा मनुष्य पर डालता जाता है॥

वे बालक बड़े भाग्यवान् हैं जिन के माता पिता इन कर्मों की अच्छेपन का अनुभव करके और स्वयं उन को भले प्रकार जान कर के अपने बालकों को बचपन से ही इन कर्मों के करने का स्वभाव डाल देते हैं॥

शरीर की बनावट वा कामों का संक्षेप से वर्णन।

शरीर की बनावट वा कामों का वर्णन तो पारलौकिक धर्म में किया जावेगा तो भी साधारण रीति से देखने में भी इस गज़ डेढ़ गज़ के पुतले में अद्भुत चतुराई और बनावट दिखलाई देती है ॥

हड्डियों का जोड़, रग और पट्ठों की तारबन्दी, मांस और चर्बी का लेपन, चमड़े का ढक्कन, फेंफड़ों में वायु का लुहार की धौंकनी के समान बराबर चल कर लोहू को साफ़ करना, दिल के द्वारा लोहू का सारे शरीर में एक रीति से घूमना और उस के मल का गुरदों और चमड़े के छिद्रों अर्थात् गिलटियों के द्वारा निकलते रहना कैसी अद्भुत लीला रची हुई है ॥

आहार चबाने के लिये मुख में दांत, उस को नर्म करने और पचाने के लिये मुख में थूक और पेट में पित्त, आहार पहुंचते ही अपना २ काम कैसी रीति अनुसार आरम्भ कर देते हैं ॥

दिमाग़ अर्थात् भेजे के बचाव के लिये, कि जिस के अन्दर अनेक सूक्ष्म शक्तियां काम कर रही हैं, अस्थियों की दृढ़ डिबिया, सर्दी और गर्मी इत्यादि से बचने के लिये बाल, नेत्रों के बचाव के लिये पलक, उंगलियों के वास्ते नाखून और इसी रीति से शरीर के सारे अवयवों के बचाव के लिये जैसे चाहिये ठीक वैसे ही दृढ़ सामान बने हुए हैं ॥

शरीर में कोई कांटा इत्यादि चुभजावे तो उस को बाहर निकालने का उपाय, कोई न खाने योग्य वस्तु मुख की राह से चली जावे तो वमन वा दस्त के द्वारा बाहर निकालने का उपाय, नाक में कोई विरुद्ध बेमेल वस्तु जाने लगे तो बालों से रुकावट होनी वा छींक के द्वारा तुरन्त बाहर निकाल देना, कोई घाव लग-जावे तो उस को अच्छा करने वाला मसाला, लोहू, पीव इत्यादि

चारों ओर से दौड़ कर घाव को अच्छा करने का यत्न करना कैसे प्रबल प्रबन्ध हैं ॥

ऐसे प्रबल प्रबन्ध पर भी जब शारीरिक धर्म के नियम बार २ तोड़े जाते हैं तो शरीर में अनेक प्रकार के रोगादिक उत्पन्न होकर उस को दुःख में फंसा करके अन्त को नष्ट कर देते हैं और यदि शारीरिक धर्मों के नियमों को भले प्रकार जान करके निश्चय पूर्वक इन की पालना की जावे तो सब शारीरिक शक्तियां प्रबल होकर और यथार्थ रीति से बढ़ कर पूर्ण आयु और शारीरिक सुख का कारण होती हैं ॥

शारीरिक वेगों का ठीक २ बर्ताव ।

शारीरिक वेगों को अनुचित रीति पर कभी उत्पन्न न करना चाहिये परन्तु जब वे अपने आप स्वाभाविक उत्पन्न हों वा किसी भूल के हेतु अनुचित तौर पर ही उत्पन्न हों तो उन को रोकना बहुत ही बुरी बात है और शारीरिक धर्म के विरुद्ध है ॥

वेगों को रोकने से बाहर निकलने योग्य पदार्थ शरीर के भीतर रहजाने से दुःख देता है और अनुचित बर्ताव से उन वेगों के स्थान ढीले और निकम्मे होजाने से अष्ट प्रहर का दुःख लगजाता है और शरीर यथार्थ नहीं बढ़ने पाता ॥

यदि किसी वेग के समय वा चाल में कुछ परिवर्तना अर्थात् अदला बदली करनी आवश्यक वा ठीक समझी जावे तो ऐसी परिवर्तना अर्थात् अदला बदली धीरे २ करनी अच्छी होती है, बहुत काल तक वेगों के ठीक २ बर्ताव से वे मनुष्य के आधीन होजाते हैं ॥

धार्मिक पुरुषों के जानने के लिये थोड़ेसे वेगों का संक्षेप वर्णन उन के उचित और अनुचित बर्ताव के साथ इस स्थान में किया जाता है ॥

१ भूख—जब पेट में आहार नहीं रहता है तब जठराग्नि का वेग उत्पन्न होता है और उस समय पेट में आहार न पहुंचाने से शरीर शक्ति हीन होजाता है इस कारण आहार अवश्य पहुंचाना चाहिये। भङ्ग इत्यादि मादक वस्तुओं के काम में लाने से यह वेग अनुचित तरह पर उत्पन्न होता है इस हेतु इन वस्तुओं को कभी काम में न लाना चाहिये॥

२ तृषा—अर्थात् प्यास जब शरीर में स्वाभाविक मात्रा से तरी कम रहजाती है तो प्यास का वेग उत्पन्न होता है और जीभ सूखने लगती है इस वेग के रोकने से बहुतसी बीमारियां पित्त का निर्बल होना इत्यादि के उत्पन्न होने और इस के उपरान्त मृत्यु का भी डर है ऐसी वस्तुयें जो गर्म और रूखी हों खाने से यह वेग अनुचित तौर पर पैदा होता है॥

३ मल त्याग—हाजत के समय दस्त को रोकने से उस का प्रभाव मग़ज़ में जाना आरम्भ होता है और माथा भड़कना, आधासीसी, कब्ज़ी, बवासीर इत्यादि अगणित बीमारियां उस वेग को रोकने से उत्पन्न होती हैं॥

४ मूत्र अर्थात् पेशाब—इस वेग को रोकने से भी कई व्याधियां मूत्र का बन्द होजाना वा जलन से आना इत्यादि उत्पन्न होती हैं अधिक ठण्डी और मूत्र लाने वाली वस्तुओं के सेवन से यह वेग अनुचित तौर पर उत्पन्न होता है॥

५ अपानवायु—जितना चाहिये उस से अधिक आहार कर लेने वा बादी चीज़ों के खाने से यह वेग बार २ उत्पन्न होता है। उचित है कि एकान्त स्थान में जाकर इस वेग को निकाल दिया जावे लज्जा इत्यादि कारणों से बहुधा बड़े बुद्धिमान् भी इस वेग को रोक कर अपनी आरोग्यता को बिगाड़ देते हैं॥

६ **वमन करना**—जब कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्य के खाने को नहीं है पेट में चली जाती है तो मेदा अर्थात् आंतें उस को नहीं सहसकीं और वमन के द्वारा निकालना चाहती हैं घृणा लाने वाली वस्तुओं के देखने और दुर्गन्ध के सूंघने से भी जी मिचला कर वमन आती हुई ज्ञात होती है ऐसे अवसर पर लोन मिलाए हुए गरम पानी से वा गले में उंगली डाल कर वा मोर इत्यादि जानवर का पर डाल कर अच्छी तरह शुद्धि कर लेनी चाहिये इस वेग के रोकने से शीत, पित्त अर्थात् शरीर पर दाफड़ और कुष्ठ इत्यादि रोगादिक होजाना सम्भव है ॥

७ **छींक**—जब अधिक सर्दी वा सर्दी और गर्मी के एकाएकी बदलने का प्रभाव पड़ने से वा तीक्ष्ण वस्तुयें जैसे मिर्च तम्बाकू इत्यादि की धांस हवा के साथ नाक में जाते ही एक दम छींक आती है। इस के रोकने से सिर भड़कना, सिर का भारी होजाना, कनपटी और भंवारों की पीड़ा आदि कई व्याधियां उत्पन्न होजाती हैं। विना कारण बार २ बत्ती नाक में डाल कर वा हुलास सूंघ कर छींकें लेना इस वेग का अनुचित बर्ताव है ॥

८ **डकार**—बहुधा जब पेट भर जाता है खाने के पश्चात् कभी २ डकार आती है उस को धीरे से निकाल देना चाहिये इस के रोकने से पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, पेट फूल जाता है, भोजन के समय या पीछे मुंह खोल कर ज़ोर २ से डकार लेना बहुत ही अनुचित है ॥

९ **उबासी**—ऊंघ, आलस्य और थकावट के कारण से उबासी आती है विना शब्द करने और यदि बहुतसे मनुष्य हों तो मुंह फेर कर और हाथ वा रूमाल इत्यादि कोई कपड़ा मुंह पर रख कर इस वेग को निकालना चाहिये इस वेग को रोकने से सारे शरीर और विशेष करके आंखों में पीड़ा होने का डर है ॥

१० खांसी—जब फेंफड़े आदि में कोई दुःख होता है जैसे फेंफड़े में कफ़ का विशेष उत्पत्ति होना, तो खांसी के द्वारा वह उस दुःख को दूर करना चाहता है। तम्बाकू वा चरस के अधिक पीने से, वा खटाई के अति अभ्यास से, वा चिकनाई पर पानी पीने से, वा अजीर्ण इत्यादि से यह वेग उत्पन्न होता है और इस के बढ़ जाने से क्षय इत्यादि प्राणघातक रोगादिक उत्पन्न होने का भय है॥

११ नींद—शरीर जब थक जाता है तो सुख चाहता है, विशेष करके बचपन में आठ से दस घंटे तक, युवा अवस्था में छः से बारह घंटे तक और बुढ़ापे में जितनी नींद आजावे उतनी ही लेना चाहिये और रहनगत के हिसाब से न्यूनाधिक भी योग्य है जैसे अति परिश्रम उठावें वे किंचित् अधिक सोवें, जहां तक सहसके, सोने के समय मुंह को वस्त्र से नहीं ढकना चाहिये जिससे अच्छी हवा सांस लेसके, जब मल वा मूत्र की शङ्का हो, वा भूख प्यास लग रही हो, वा आहार पचा न हो उस समय सोना शरीर की आरोग्यता को बिगाड़ता है। सोने के पश्चात् मुंह के थूक को जल से कुल्ला करके अच्छी तरह शुद्ध कर लेना उचित है। खेल, तमाशा, परीक्षा की सामग्री, और घर में किसी रोगी की टहल करने के कारण इस वेग को रोकने से मस्तक में पीड़ा, शरीर का भारी होना, शरीर में आलस्य का आना इत्यादि अनेक रोग लग जाते हैं॥

१२—रोना वा आंसू निकालना—जब मनुष्य के मन पर एकाएक ही कोई आनन्द वा दुःख व्यापता है तो आप से आप रोना आता है और आंसू टपकने लगते हैं और कभी २ कोमल हृदय का पुरुष अपने किये हुए व्यतीत बुरे कर्मों को स्मर्ण करके घबराता है और भविष्यत् काल में उन बुरे कर्मों से बचने का सच्चे मन से प्रण करता है उस समय आंखों से आंसू निकलने लगते हैं

जिन के द्वारा धार्मिक पुरुषों के विचार के अनुसार उस के पिछले पापों का बल न्यून होजाता है, जब किसी कारण से सच्चा रोना आवे तो उस के वेग को कदापि नहीं रोकना चाहिये, तनिक २ सी बात पर रोने का स्वभाव डालना वा घर में किसी शोक के समय लोगों की दिखावट की रीति पर रोना इस वेग का अनुचित बर्ताव है। इस वेग को रोकने से मस्तक और कनपटी में पीड़ा, आंखों की पीड़ा और कभी २ दस्तों की व्याधि होजाती है, जिस का कारण यह है कि शोक की चोट का प्रभाव जो नेत्रों पर होना था वह आंतों पर होता है॥

१३ काम अर्थात् वीर्य का वेग—इस वेग का अधिक सम्बन्ध मन के साथ है और इसी कारण से इस को केवल शारीरिक वेग ही नहीं समझना चाहिये, जहां तक होसके बुरे विचारों को रोकना चाहियें इस का यथार्थ वर्णन मानसिक धर्म के विभाग ब्रह्मचर्य और गृहस्थ धर्म के विभाग सन्तानोत्पत्ति में किया जावेगा, वीर्य संपूर्ण शरीर का राजा है और सर्व शरीर में ऐसा फैला हुआ है जैसे दूध में मक्खन, गन्ने में मिठास, तिलों में तेल। मग़ज़ की ताक़त, शारीरिक बल, दृष्टि की तीक्ष्णता और मुख की क्रान्ति वीर्याधीन ही है इसी के द्वारा विशेष विचार शक्ति और परिश्रम उठाने की शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसी अच्छी और उपयोगी वस्तु को कोई लुटाना नहीं चाहता और उत्पत्ति उस की खर्च करने ही पर है इस हेतु ईश्वर ने इस के निकास में भी एक निराला स्वाद रख दिया है। धर्म पर चलने वालों को चाहिये कि सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता के समय तो व्यय करें और केवल स्वाद के वश होकर ऐसी अमूल्य वस्तु को न लुटावें क्योंकि ऐसा करना इस वेग का अनुचित बर्ताव होगा। जिस समय काम के कोप से शरीर में वीर्य का वेग उत्पन्न होता है तो वह सर्व शरीर के अवयवों से

निकलना आरम्भ होजाता है और उस समय मन को एक मुख्य आह्लाद प्राप्त होता है॥

मस्तक के पिछले विभाग में एक मुख्य स्थान है जहां से काम का वेग उत्पन्न होता है जब कपालों के उस मुख्य स्थान में हल चल मचजाती है तो उसी समय लोहू इत्यादि और सब अवयवों में भी काम का वेग उत्पन्न होजाता है और वीर्य का प्रभाव पहिले उसी स्थान से चल कर पीठ की वीर्य बाहिनी नाड़ियों में होता हुआ और उन के रसों को साथ लेता हुआ अण्डकोष में आता है और वहां श्वेत रंग का द्रव्य बन कर गर्भाधान की शक्ति उत्पन्न करने वाला होजाता है इससे यह बात निकलती है कि वीर्य के निकलने के तीन द्वार हैं उन में से पहिला द्वार मस्तक का पिछला भाग है इस पहिले द्वार के शुभ विचारों का ताला लगाना बहुत ही आवश्यक है॥

निर्लज्जता की बातें वा कहानियों के पढ़ने सुनने से वा स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री के मुख्य २ अवयवों के दृष्टि गोचर होने से से काम का वेग अनुचित रीति से उत्पन्न होता है॥

ऐसी अयोग्य रीतियों से विशेष करके बाल्य अवस्था में इस वेग को कदापि उत्पन्न न होने देना चाहिये जिस का व्यवहारोचित उपाय केवल यही है कि रात दिन सत्संग में रहना चाहिये, सारे संसार के धार्मिक पुरुषों ने सत्संग की बहुत ही महिमा वर्णन की है और धर्म सम्बन्धी साधनों में उस को बहुत बड़ा साधन माना है जिस का वर्णन विस्तार पूर्वक मानसिक धर्म के साथ दूसरे विभाग में किया जावेगा॥

यदि बचपन में आदि से ही बच्चों का पूरा प्रयत्न रक्खा जावे तो जब तक प्रयत्न रहैगा काम का वेग प्रगट न होगा न्यून से न्यून लड़कों की २० वर्ष की अवस्था तक और लड़कियों की १५ वर्ष की अवस्था तक संभाल रखनी आवश्यक है। इस संभाल से उन का

वीर्य अच्छी तरह से पुष्ट होकर शरीर की आरोग्यता आदि सुख देने का कारण होगा और उन की सन्तति भी पुष्ट और आरोग्य होगी यदि ऐसा होना कोई रीति से भी सम्भव न हो तो लड़कों के वीर्य की १६ वर्ष तक और लड़कियों की १२ वर्ष तक अवश्य ही रक्षा रखनी चाहिये इस का पूरा वर्णन मानसिक धर्म के विभाग ब्रह्मचर्य में और गृहस्थ धर्म के विभाग सन्तानोत्पत्ति में किया जावेगा ॥

आरोग्यता बनी रखने की दूसरी रीति।

व्यायाम ।

यद्यपि मनुष्य के शरीर में अनेक रोगादिक भरे हैं जिन को जानना बहुत कठिन है तथापि आरोग्यता के नियमों पर चलने से बहुतसे रोगों से बचाव होजाता है और निरोगता बनी रखने के लिये व्यायाम बहुत ही आवश्यक है ॥

व्यायाम वह दिव्य साधन है जिस के प्रति दिन करने से मनुष्य बहुत फुर्ती वाला, निरोग और प्रफुल्लित रहता है और पूर्ण आयु प्राप्त करता है और यदि कोई रोग शरीर में हो और वह रोग बहुत पुराना और असाध्य न होगया हो तो इस साधन को लगातार और साधारण रीति से करने पर उस रोग का बल घट कर शनैः२ आरोग्यता होनी प्रारम्भ होजाती है और जब यह साधन करना आरम्भ कर दिया जाता है तो बहुधा कोई नया रोग नहीं होने पाता कदाचित् कोई विशेष अमर्यादा न की हो ॥

व्यायाम एक स्वाभाविक साधन है, बच्चे जब बहुत ही छोटे होते हैं तो अपने हाथ पांव इत्यादि शरीर के अवयवों को सदा हिलाते रहते हैं और जब थोडेसे बड़े होते हैं तो निरन्तर दौडने, भागने, उछलने, कूदने के खेलों में उद्योग करते रहते हैं और उन

खेलों में प्रसन्न होते हैं और इस रीति से उन का सारा शरीर भले प्रकार पोषण होता रहता है और वे सदा फुरती वाले और प्रफुल्लित रहते हैं और जो बच्चा अभाग्यवश वे खेल नहीं खेलने पाता तो वह जन्म भर रोगी, उदास और दुर्बल रहता है ॥

केवल मनुष्य को ही नहीं परन्तु दैव ने प्राणी मात्र को व्यायाम करना सिखलाया है और वे करते रहते हैं यहां तक कि जो पक्षी और पशु इत्यादि मनुष्य के फन्दे में फंस जाते हैं वे बन्धन में होने पर भी अपना बहुतसा समय व्यायाम में लगाते हैं जैसा कि चिड़िया-घर और अजाइब-घर में यह प्रति दिन दृष्टि गोचर होता है कि सिंह और रीछ मैना और तोते इत्यादि पशु और पक्षी अपने अपने पिंजरों में बहुतसा समय चलने, फिरने, फुदकने और फड़-फड़ाने में व्यतीत करते हैं इन कारणों से मनुष्य को भी व्यायाम करना हर तरह से आवश्यक और उचित है ॥

व्यायाम का मूल तत्व यह है कि शरीर को अच्छी तरह परिश्रम होकर किंचित पसीना आजावे। अतएव चलना, दौड़ना, छलांग मारना, कुश्ती लड़ना, वृक्ष पर चढ़ना, जल में तैरना, डण्ड पेलना, मुद्गर हिलाना, बोझ उठाना, वा दूर फेंकना, फरी, गदका, बनेठी इत्यादि लकड़ी के खेल, चांदमारी करना, तीर लगाना, घोड़ा इत्यादि पशुओं की सवारी करना, तथा कई प्रकार के अङ्गरेज़ी खेल—क्रिकेट, फुटबोल, लान्टेनिस इत्यादि सब व्यायाम अर्थात् शरीर के साधन गिने जाते हैं ॥

इन में से जिन साधनों में मन लगे और जो रहन गत वा अपने व्यापार वा वृत्ति के अनुकूल हों उन्हीं को करना चाहिये व्यायाम को इच्छानुसार नहीं करना चाहिये परन्तु इस को अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ कर प्रति दिन करना उचित है हां इतना विचार

अवश्य रहै कि जितने जुदी २ तरह के और शरीर को कम थकाने वाले साधन होंगे उतने ही अधिक लाभ दायक होंगे ॥

स्त्रियों के साधन पुरुषों के साधनों से और भी हलके होना चाहिये और रजस्वलाधर्म वा गर्भ के समय तो उन हलके साधनों में से भी केवल चुने हुए थोड़ेसे साधन बहुत सावचेती और पथ्य के साथ करने चाहियें ऐसी दशाओं में न करने से इतनी हानि नहीं होती जितनी कि बिना विचारे से व्यायाम करने में होती है और उस में भयानक फल मिलने का डर है ॥

उत्तम समय व्यायाम का स्नान के पश्चात् और भोजन से पहिले है यदि कोई दूसरा समय नियत करने की आवश्यकता हो तो शङ्काओं से रहित होकर और भोजन के पूरे पाचन होजाने के पश्चात् व्यायाम करना उचित है, साधन करने के समय लंगोट अवश्य ही कसना चाहिये और उत्तम तो यह है कि शेष सब शरीर नग्न रहै अथवा बहुत थोड़े वस्त्र पहिने जावें ॥

खुले मैदान में जहां निर्मल और स्वच्छ हवा आती हो, व्यायाम करना बहुत लाभ दायक है परन्तु ठण्डी वा प्रचण्ड पवन से बचना उचित है ॥

जैसे २ अवस्था ढलती जावे वैसे ही व्यायाम के साधन हलके और कमी के साथ होने चाहियें ॥

मनु आदि ऋषियों का वचन है कि हर एक मनुष्य को स्त्री हो वा पुरुष राजा हो वा रङ्क व्यायाम नित्य प्रति अवश्य करना चाहिये जो कोई उस रोग नाशक साधन को नहीं करते हैं उन को भोजन विष के समान लगता है आदि में बहुत थोड़ा व्यायाम करना चाहिये और शनैः २ अपने बल, पराक्रम के अनुसार बढ़ाना चाहिये इस रीति से फुरती और चालाकी धीरे २ आती जाती है ॥

यदि व्यायाम के साधनों को अपने आप करके दिखलाने और पूर्ण रीति से मुख से वर्णन करने से ठीक २ और सुगमता से समझना सम्भव है तथापि अधिक समझ वाले और व्यायाम सीखने के अभिलाषी पुरुषों के हितार्थ थोड़े से आवश्यक साधनों का वर्णन लिखना उचित समझा गया॥

इन साधनों को हर मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार करे मुख्य परिमाण यह है कि शरीर में किंचित् पसीना आजावे किन्तु विशेष थकान कदापि नहीं होनी चाहिये नहीं तो लाभ के बदले हानि होने का भय है॥

यदि धार्मिक पुरुषों और विशेष करके साधुओं को काम के वेग को रोकने की आवश्यकता हो तो उन को छाती और बाहुओं के साधनों के द्वारा शरीर को भले प्रकार थकाना चाहिये॥

इन साधनों में यह भी एक गुण है कि बिना किसी सहारे अर्थात् एपैरेटस आदि के हर मनुष्य हर स्थान में सुगमता से कर सक्ता है॥

यदि बूढ़ा आदमी भी अपने शरीर बल के अनुसार परिमाण के साथ व्यायाम के साधन प्रारम्भ करेगा तो कुछ काल में उस का शरीर भी तरुण पुरुषों के समान फुरती वाला होजाना सम्भव है॥

यद्यपि एक २ साधन की संख्या सात २ रक्खी गई है तथापि व्यायाम करने वाले अपने बल, अवकाश और रहनगत के अनुसार संख्या नियत कर सक्ते हैं॥

जिन को बैठने का वा सोच विचार का काम विशेष करना पड़े उन को उचित है कि अपने काम के बीच में अर्थात् हर दो २

तीन २ घंटों के काम के पीछे दो मिनट के वास्ते छाती और बाहुओं के साधन अवश्य कर लिया करें और हर साधन के बीच में थोड़ेसे पांवड़े टहल लिया करें ॥

साधन करने के समय जहां तक होसके दम रोकने का उपाय किया जावे और नहीं तो श्वांस मुख बन्द करके नाक के राह निकालना चाहिये ॥

यदि ये साधन लगातार बहुत काल तक होते हैं तो सारा शरीर सुडौल होजाना सम्भव है ॥

वे साधन नीचे लिखे अनुसार हैं ॥

१ पांव और टांगों के साधन ।

(क) पांव की उंगलियों के सहारे खड़े होकर और बदन को तना हुआ रख कर और बाहुओं को ऊंचा करके एक स्थान में खड़े हुए कम से कम सात बार उछलना ॥

(ख) ऊपर लिखे अनुसार एक स्थान में खडे रहने के बदले सात पांवड़े तक उछलते हुए चल कर उसी रीति से पीछा आना ॥

(ग) पांव की उंगलियों के बल खड़े होकर अकड़ते हुए सात पांवड़े चलना और पीछा आना ॥

(घ) सारे शरीर को तना हुआ रख कर और टांगों को थोड़ासा झुका कर पहिले दाहनी टांग को एक पांवड़ा दूर रखना और फिर बाईं टांग को उसी स्थान में लेजाना और दाहनी टांग को अपने पहले स्थान पर लेआना इसी रीति से उछल २ कर सात बार करना। कहते हैं कि महाराजा श्री रामचन्द्रजी के

दूत अङ्गद ने लङ्कापति रावण के दर्बारखाने में अपनी टांग पृथ्वी पर टेक कर कहा था कि कोई दर्बारी योद्धा उस की टांग को उठावे बहुधा पुरुषों ने कोशिश की परन्तु टांग हिल भी न सकी अङ्गद ऊपर लिखा साधन प्रति दिन १०० बार किया करता था॥

(ङ) दोनों टांगों को चौड़ा करके और हाथों को ऊंचा करके और दोनों को मिला कर उछलना फिर टांगों को मिला कर और हाथों को चौड़ा करके उछलना अर्थात् जब टांगें चौड़ी हों तो हाथ मिलजावें और जब हाथ फैलें तो टांगें मिलजावें—सात बार॥

(च) एक टांग से पन्द्रह पांवड़े चलना और दूसरी टांग से उतनी ही दूर उलटे पांव पीछा आना॥

(छ) बदन को तना हुआ रख कर और घुटने पर हाथ रख कर सात बार ऊठक बैठक करना यह साधन बहुधा बच्चों के लिये अच्छा है॥

(ज) तने हुए खड़े होकर पहले एक टांग को पीछे दूसरी टांग को झटका देना—सात बार॥

२ नाभी और कमर के साधन।

(क) दोनों हाथों को कमर के दाएं बाएं रख कर और सारे शरीर को तना हुआ रख के कमर से ऊपर २ के शरीर को एक ओर कमर तक झुकाना और फिर उसी रीति से दूसरी ओर—सात बार॥

(ख) ऊपर लिखी रीति से खड़े होकर कमर से ऊपर के सारे शरीर को आधे वृत्त वा चक्र के अनुसार जल्दी २ सात बार घुमाना॥

(ग) शरीर को तना हुआ रख कर और दोनों बाहुओं को ऊंचा करके और हाथों को मिला कर खड़ा होना और फिर आगे को झुक कँर अपने पांव के अंगूठों को छूना परन्तु घुटने मुड़ने न चाहियें—सात बार॥

(घ) एड़ियों को ऊंचा रख कर उकड़ूं बैठ कर उछलते हुए सात पांवड़े सामने की ओर चल कर उसी तरह उलटा पीछा आना॥

३ पेट और छाती के साधन।

(क) खड़े होकर और शरीर को तना हुआ रख कर दोनों हाथों को ऊंचा करना और छाती से ऊपर के शरीर को पहिले दाहिनी ओर फिर बाईं ओर को सात बार झुकाना॥

(ख) ऊपर लिखी रीति अनुसार सात बार पीछे को ओर झुकना। इस साधन से पेट का बढ़ना और तिल्ली की बीमारी नहीं होती॥

(ग) सात बार डण्ड पेलना अर्थात् दोनों हाथों को पृथ्वी पर धर कर और पांवों को फैला कर और चौपग्गा होकर एक बार दाहिनी ओर और दूसरी बार बाईं ओर बल करके डण्ड निकालना॥

(घ) भीत से दो पांवड़े दूर खड़े होकर दहिने और बायें हाथ को बारी २ भीत पर रख कर सारे शरीर को बल से सात बार झुकाना॥

(ङ) अकड़े हुए खड़े होकर दोनों बाहुओं को थोड़ासा फैलाए हुए रखना और मूठियां बन्द करके और कोहनियां मोड़ कर दोनों हाथों को छाती के पास लाना और झटके के साथ

दोनों बाहुओं को फैलाना परन्तु कोहनियां मुड़ी हुई हों—सात बार यह साधन कफ़ इत्यादि बीमारियों को रोकने वाला है॥

(घ) बदन को तना हुआ रख कर और बाहुओं को लम्बा करके दोनों हथेलियों को मिलाना और फिर जहां तक होसके दोनों बाहुओं को फैलाना—सात बार॥

४ बाहुओं के साधन।

(क) सारे शरीर को सीधा रख कर खड़े होना और बाहुओं को तना हुआ रख कर कोहनी के पास से नीचे को ओर झुका देना—सात बार॥

(ख) सीधे खड़े होकर और दोनों कोहनियों को एक साथ मोड़ कर हाथों को कंधे के पास लाना और फिर झटका देकर दोनों हाथों को एक साथ फैलाना और फिर एक दम पीछा लेजाना—सात बार॥

(ग) ऊपर लिखी रीति अनुसार हाथों को झटका देकर ऊपर को ओर एक साथ फैला कर फिर एक दम कन्धों के पास पीछा लेजाना—सात बार॥

(घ) पहले एक बाहू को बल से पन्द्रह बार घुमाना और फिर दूसरे को॥

(ङ) दोनों बाहुओं को एक साथ चक्कर को भांति बहुत बल से परन्तु यत्न के साथ तीस बार घुमाना॥

५ गरदन और कण्ठ के साधन।

(क) खड़े हुए और सारे शरीर को तना हुआ रख कर पहिले दाहिने कंधे की ओर, फिर बायें कंधे की ओर, सात बार गर्दन को झुकाना॥

(ख) खड़े हुए सारे शरीर को तना हुआ रख कर और मस्तक को थोड़ासा नीचा करके गर्दन को पहिले दाहिनी ओर फिर बाईं ओर झुका कर और फिर सिर को ऊंचा करके गर्दन तक पीछे को झुकाना—सात बार ॥

६ मस्तक के साधन।

(क) किसी दीवार की ओर पीठ करके दीवार से दो पांवड़े दूर खड़े होना और दोनों हाथों को कमर पर रख कर जितना होसके सिर को नीचे अर्थात् दीवार की ओर झुकाना और फिर हाथों को कमर से उठा कर पीछे की ओर दीवार से लगा कर सिर को पीछे लटकाना और सारे बदन को साध कर हाथों को दीवार से अलग करके सिर को कई पल तक लटकाए हुए रखना—दो बार ॥

(ख) हाथों को भूमि का सहारा और पांवों को दीवार का सहारा देकर एक २ मिनट तक उलटे लटके रहना ॥

७ सारे शरीर के साधन।

(क) किसी ऊंची वस्तु खूंटी वा वृक्ष की शाखा इत्यादि को पकड़ कर आधे २ मिनट तक चार बार लटकना ॥

(ख) पृथ्वी पर लेट कर शरीर को तना हुआ रख कर और दोनों टांगों और बाहुओं को जहां तक होसके चौड़ा फैला कर एक मिनट तक लेटे रहना ॥

(ग) ऊपर लिखे अनुसार दोनों टांगों को मिला कर पांवों की ओर और दोनों बाहुओं को मिला कर सिर की तरफ़ जितना लम्बा किया जासके सारे बदन को लम्बा करना एक मिनट तक ॥

(घ) औंधा लेट कर और दोनों हाथों को पीठ की ओर कमर के पास लेजा कर मिलाना और फिर छाती के बल पहिले दाहिनी ओर, फिर बाईं ओर सात बार करवट लेना ॥

(ङ) शरीर को साधारण तौर पर रख कर दो मिनट तक सीधे लेटे रहना ॥

ये सारे साधन आध घंटे में और अभ्यास होजाने से उस्से भी कम समय में हो सक्ते हैं यदि इस थोड़ेसे समय को ऐसे आवश्यक और उपयोगी काम में नहीं लगाया जावेगा तो बीमारी को, दुःख उठाने और रुपया खर्च करने के उपरान्त, इस्से कितना ही अधिक समय देना पड़ेगा ॥

शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध अन्न और शुद्ध वस्त्र का काम में लाना ।

धार्मिक पुरुषों और धर्म के खोजने वालों को, शारीरिक वेगों का ठीक बर्ताव रखते हुए और शारीरिक व्यायाम को नित्य प्रति करते हुए, नीचे लिखी बातों पर भी पूरा ध्यान देना चाहिये ॥

वायु का ठीक बर्ताव ।

मनुष्य के लिये सब से विशेष आवश्यक वस्तु हवा है वह हर समय अपरिमाण सांस के द्वारा पी जाती है और इसी हेतु वायु सब स्थानों में अधिकता से विद्यमान है । यदि थोड़े समय भी वायु न मिले वा विषैली हवा पीने में आवे तो आयु पूर्ण होजाती है जितनी निर्मल और सुथरी वायु खुले मैदान बाग़ समुद्र और नदी के तट को मिल सके उतना ही अधिक लाभ समझना चाहिये ॥

सांस के द्वारा जो वायु अन्दर जाकर पीछें बाहर निकलती है वह गन्दी होजाती है छोटे और अंधेरे घरों में बहुधा मनुष्यों के

रहने से उन के स्वासों से निकली हुई वायु आरोग्यता को हानि पहुंचाती है—इस हेतु से जहां तक होसके हवादार और खुला हुआ घर होना चाहिये और सोने के कमरे में बहुत मनुष्य वा सामान कदापि नहीं भरना चाहिये यदि किसी मुख्य अवसर पर किसी स्थान में अधिक मनुष्य इकट्ठे होवें तो वहां पर सुगन्धी फूल और लोबान इत्यादि को काम में लाना चाहिये ॥

वृक्षों से रात के समय गन्दी हवा निकलती है और दिन में निर्मल इस कारण से रात को वृक्षों के नीचे अधिक समय तक कभी बैठना वा सोना न चाहिये ॥

वायु को शरीर में लेजाने और बाहर निकालने के लिये प्राण इन्द्री अर्थात् नाक के दोनों छिद्र हैं जिन में यह शक्ति भी है कि वे अच्छी और बुरी हवा को पहिचान सकें इस हेतु जहां बुरी हवा मालूम हो और यदि वहां से झट पट निकल जाना हो तो सांस को रोक लेना उचित है यदि विशेष समय तक रहना हो तो जहां तक होसके धीरे २ स्वास लेना उचित है ऐसे अवसर पर नाक को बन्द करके मुंह के द्वारा सांस लेना बहुत ही अनुचित और आरोग्यता को हानिकारक है ॥

जहां दुर्गन्ध आती हो वहां सदा वा बहुत देर तक कदापि नहीं रहना चाहिये यदि मन उपरान्त रहना पड़े तो उस दुर्गन्ध को दूर करने के ढंग काम में लाना आवश्यक है यदि दूर न होसके तो सुगन्धि और दुर्गन्ध को काटने वाली वस्तुओं के द्वारा हवा को स्वच्छ कर लेना आवश्यक है ॥

यदि प्रति दिन किसी रमणीक स्थान में कम से कम पांच बार और विशेष अपनी इच्छा बल और अवकाश के अनुसार धीरे २ स्वास को ऊपर खेंचा जावे और थोड़े समय के लिये वहां

रोक कर फिर उसी रीति से धीरे २ निकाला जावे और थोड़ी देर बाहर रोक कर फिर ऊपर को खेंचा जावे तो इसी तरह साधन करने से शरीर के बहुतसे भीतरी पर्दों और फेंफड़ों इत्यादि में वायु का प्रवेश होकर शरीर के मैल के निकल जाने में सहायता मिलती है और सारा शरीर स्वच्छ और पुष्प की भांति प्रफुल्लित होजाता है। परिश्रम का काम अधिक किया जासक्ता है और थकावट कम आसक्ती है। इस साधन के लगातार करने से थोड़े ही समय में प्राण स्थिर होने लगता है और मन भी एकाग्र होकर प्रकाश और ईश्वर प्रेरणा होने लगती है॥

जल का ठीक बर्ताव ।

वायु से दूसरे दरजे पर विशेष आवश्यक और काम में आने वाली वस्तु जल है और इसी कारण से परमेश्वर ने तीन चतुर्थांश के लगभग पानी रक्खा है और बनस्पति और प्राणियों के अवयवों में भी बहुत कुछ जल विद्यमान है मनुष्य के शरीर में (१००) सौ में से (७०) सत्तर भाग पानी से भरा हुआ है शरीर के कठोर से कठोर विभाग दांत, बाल और नखों इत्यादि में भी जल विद्यमान है। नस और पट्ठों की नर्मी, लोहू की तेज़ी, और दूसरे सारे रसों को जल ही सहारा देता है पट्ठों की लचक और मोड़ इत्यादि में भी पानी से मदद मिलती है और चलते समय अस्थियों में रगड़ न लगने का कारण भी पानी ही है॥

पानी को आहार और दवा दोनों कहते हैं कारण यह है कि कोई खाना बिना पानी के न चब सक्ता है और न पच सक्ता है स्वयं जल में पचाने इत्यादि की मुख्य शक्ति विद्यमान है॥

बिना आहार बहुत समय तक मनुष्य जी सक्ता है परन्तु बिना जल जीता नहीं रह सक्ता। नैरोग्य पुरुष को दो सेर जल के लगभग की प्रति दिन आवश्यकता समझनी चाहिये हां गर्म

ऋतु में कुछ विशेष और सर्द ऋतु में कुछ कम। इतना ही पानी पसीने, थूक और मूत्र के द्वारा निकलता रहता है॥

नीचे लिखे अवसरों पर पानी न पीना चाहिये॥

(१) व्यायाम के पश्चात्॥

(२) खाली पेट॥

(३) तर मेवा खाने के पीछे॥

(४) खट्टी और चिकनी वस्तुओं के खाने के पीछे॥

(५) ऊंघ आती हो तो॥

(६) बिना प्यास॥

ग्रीष्म ऋतु में ठण्डा जल वा बर्फ़ का जल वा शर्बत इत्यादि बिना प्यास वा प्यास से अधिक पीना बहुत ही हानिकारक समझना चाहिये इसी रीति से भोजन के समय हर ग्रास के साथ जल पीना वा बार २ अत्यन्त जल पीना भी आरोग्यता को हानि पहुंचाता है श्रेष्ठ तो यह है कि भोजन के एक घंटे पीछे जल पिया जावे॥

मोटे मनुष्य को अवश्य ही भोजन के समय जल न पीना चाहिये वा बहुत कम जल पीना चाहिये॥

जहां तक होसके स्वच्छ और सद्य पानी पीना चाहिये मरघट और कबरों के पास के कुओं और झरिनों का पानी वा जिस कूए का पानी बहुत दिनों से न सींचा गया हो वा जिस पानी के रंग, गन्ध और स्वाद में अन्तर जान पड़े वह कदापि नहीं काम में लाना चाहिये॥

जहां नदी का जल काम में लाया जाता हो वहां बस्ती से ऊपर का पानी बहुधा अच्छा होता है क्योंकि उस में मल मूत्र इत्यादि के मिलने की शङ्का नहीं होसकी जहां तालाब का पानी पिया जाता हो वहां स्नान करना, कपड़े धोना

इत्यादि काम उस में होना ही न चाहिये वा हर काम के लिये उचित दूरी पर न्यारे २ घाट बने हुये होना ठीक है जहां कुए का पानी पिया जाता हो वहां पनघट कुए के किनारे से इतना ऊंचा और पक्का बना हुआ होना चाहिये कि कीड़े मकोड़े और वर्षा ऋतु का मैला पानी इत्यादि उस में न जासकें और यदि ऐसे कुए चारों ओर वृक्षों से घिरे हुए हों तो उन के ऊपर छाया होना चाहिये कि वृक्षों के पत्ते इत्यादि का कूड़ा गिरने और सड़ने न पावे और ऐसे कुओं का पानी हर साल वर्षा ऋतु के पीछे निकाल दिया जाया करे तो बहुत लाभ होगा ॥

पीने के पानी को टपका कर स्वच्छ करना बहुत ही अच्छा है परन्तु जिन बर्तनों में पानी टपकाया जावे, वे बर्तन शुद्ध रहने चाहियें यदि शुद्ध न रहैंगे तो उन में मैल जम कर पानी के छोटे २ जीव उत्पन्न होजाने का भय है ॥

पीने के पानी को अग्नि पर औटा लेना वा लोहा गर्म करके उस में बुझा लेना, फिटकिरी के पानी से शोध लेना और कपड़े से छानना बहुत अच्छा है ॥

कई अवस्थाओं में गर्म पानी पीना भी लाभदायक है। घूंट २ करके पीने से प्यास बुझती है और रुधिर के घूमने में तेज़ी आती है और आंतों में आहार का रस अच्छी तरह बनता है, पाचन शक्ति बढ़जाती है और मूत्र को शुद्ध करके अच्छी तरह बाहर निकाल देता है। अजीर्ण में भोजन से पहिले एक छटांक गर्म पानी पीना बहुत फलदायक है। सर्दी लग गई हो, वा नींद न आती हो, वा बहुत थकावट हो, तो भी गर्म पानी पीना अच्छा है ॥

लोहे के बर्तन वा मिट्टी के घड़ों में पानी रखना बहुत अच्छा है। वे बर्तन और स्थान जहां बर्तन रक्खे जाते हों ऐसे शुद्ध रहने चाहियें कि वहां काई न जमने पावे और सदा उन को ढक कर रखना चाहिये॥

आहार का ठीक तरह से काम में लाना।

अवस्था, प्रकृति, ऋतु और रहनगत अर्थात् व्यवहार का विचार रख कर वे चीज़ें जो जल्दी पचने वाली हों, जो अच्छे स्वाद वाली हों और शरीर को भले प्रकार पोषण करें खानी चाहियें॥

कच्ची, सड़ी हुई, जली वा दुर्गन्ध वाली वस्तु न खानी चाहिये और खाने पीने की चीज़ें अति गर्म कभी न काम में लानी चाहियें॥

धातुओं अर्थात् खान से निकलने वाली वस्तुओं में से लवण, बनस्पति में से नाज, ऋतु फल और हरा शाक, मांस आहार के स्थान पर दूध, घृत और मक्खन प्रति दिन काम में लाना अति लाभ दायक है परन्तु किसी वस्तु को चाहे वह कैसी ही स्वाद हो बिना भूख खाना वा भूख से अधिक खाना सर्वथा हानि पहुंचाता है॥

एक ही आहार को चिरकाल तक करते रहना भी आरोग्यता को हानि पहुंचाता है क्योंकि शरीर के पोषण के लिये जुदी २ चीज़ों की आवश्यकता है और उन सब का शरीर में पहुंचाया जाना आवश्यक है इस हेतु रहनगत पर ध्यान रखके जुदे २ आहार अपने लिये छांटना और उन को परिमाण से काम में लाना उचित है। जैसे विचार परिश्रम के लिये कन्दमूल, सेव, अंगूर, बादाम इत्यादि फल; शारीरिक परिश्रम के निमित्त सत और चिकनाई वाली वस्तुयें जैसे चांवल, शक्कर इत्यादि; मांस बढाने के लिये गेंहूं, जौ, दाल इत्यादि

और अस्थि बढ़ाने और पुष्ट करने के लिये खार और चूना मिली हुई वस्तुयें—दूध, घृत आदि अधिक लाभकारी हैं ॥

खाने के समय ठीक २ नियत करने चाहियें। बहुधा प्रति दिन कम से कम दो बार और अधिक से अधिक चार बार उचित कालान्तर के साथ आहार करना योग्य है ॥

कोई वस्तु जो बहुतसी हाथ आगई हो परिमाण से अधिक कभी न खानी चाहिये और इसी भांति यदि कोई निकम्मी वस्तु मिलजावे तो कभी काम में न लाई जावे ॥

भोजन के समय चित्त को बहुत प्रसन्न रखना और खाने को मुंह के थूक के साथ भले प्रकार गीला और महीन करके और दांतों से धीरे २ चिगल कर खाना चाहिये ॥

भोजन के पश्चात् थोड़े समय के लिये टहलना, कुछ समय तक दाहिनो करवट से लेटना, राग इत्यादि सुना वा धीरे २ अपने आप गाना वा किसी मनोहर पुस्तक अथवा समाचार पत्र को पढ़ना उचित है। उस समय बहुत परिश्रम वा चिन्ता अथवा दौड़ने भागने का काम करना वा ऐसी बैठक बैठना जिस में पेट दबे वा एकाएक ही सोजाना आरोग्यता का हानिकारक है ॥

स्वच्छता अर्थात् सफ़ाई ।

जैसे वायु, जल और आहार शरीर के पोषण के लिये आवश्यक हैं वैसे ही स्वच्छता अर्थात् सफ़ाई को भी एक अति आवश्यक और धर्म का मुख्य विभाग समझना चाहिये ॥

बाहरी वा भीतरी भेद से स्वच्छता के कई विभाग हैं जिन में से शारीरिक धर्म सम्बन्धी स्वच्छता का वर्णन इस स्थान में किया जाता है जो बहुधा जल, मिट्टी, पवन और अग्नि के द्वारा होती है ॥

शरीर की शुद्धि।

शरीर में हज़ारों छिद्र हैं जिन को रोम कहते हैं और यद्यपि वायु का विशेष विभाग नासिका के ही द्वारा शरीर में जाता और बाहर निकलता है, इसी रीति से जल और आहार मुख के द्वारा शरीर में जाते हैं और मल मूत्र होकर बाहर निकलते रहते हैं, तो भी बहुतसा सूक्ष्म विभाग इन तीनों वस्तुओं का संपूर्ण छिद्रों में होकर शरीर में जाता और बाहर निकलता रहता है इस कारण से सारे छिद्रों को नीचे लिखी रीतियों से शुद्ध रखने का उपाय करते रहना आवश्यक है॥

(१) लघुशङ्का वा मल के त्याग करने के पश्चात् उन के स्थानों को शुद्ध करना, नाखूनों से मैल निकाल कर हाथ और उंगलियों को मिट्टी से धोना चाहिये॥

(२) दांत और जिह्वा को दांतुन से अच्छी तरह शुद्ध करना चाहिये बंबूल वा नींब के वृक्ष की कोमल शाखा विशेष लाभदायक है यदि दांतुन न मिलसके तो सुंठि और लवण के चूर्ण को काम में लाना उचित है॥

(३) सारे शरीर को प्रति दिन जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये, जिस को बोल चाल में स्नान करना कहते हैं स्नान का जल भी निर्मल होना चाहिये बहते हुए पानी में जो थोड़ा ऊपर से गिरता हो स्नान करना अधिक लाभकारी है स्नान के समय सारे शरीर को गीले कपड़े से धीरे २ रगड़ कर मैल उतारना और स्नान के पश्चात् सूखे कपड़े से पूंछना उचित है॥

प्रश्न—स्नान के लिये उचित समय कौनसा है॥

उत्तर—हर मनुष्य अपने अवकाश, अवस्था, आरोग्यता और ऋतु का ध्यान करके जो समय उचित समझा जावै उसी

समय पर स्नान करे, बहुधा सोने के पश्चात् मल मूत्र का त्याग करके स्नान करना चाहिये ॥

जब शरीर थका हुआ हो, गर्म हो, पेट भरा हुआ हो, मल त्याग करने की शङ्का हो, उस समय में स्नान करना उचित नहीं। बीमारी के समय मुख्य करके दस्त और अतिसार अर्थात् पेचिश की बीमारी में न्हाना उचित नहीं ॥

गर्म ऋतु में सूर्य उदय से पहिले स्नान करना अति फलदाई है जिन का शरीर नैरोग्य हो उन को बहुधा उसी समय ठंडे जल से और यदि होसके तो बहते पानी में स्नान करना चाहिये। निर्बल और वृद्ध मनुष्यों को बहुधा सर्द ऋतु में थोड़े उष्ण से बन्द मकान में स्नान करना उचित है ॥

ग्रीष्म इत्यादि सब ऋतुओं में स्नान के पीछे धोती आदि गीला वस्त्र धारण करना हानिकारक है ॥

(४) प्रति दिन, तीसरे दिन वा आठवें दिन, विशेष करके खुश्क और शीत काल में सारे शरीर पर तैल मर्दन करना बहुत गुणकारी है ॥

(५) केशों को सदा स्वच्छ रखना चाहिये, आठवें दिन वा जैसा अवसर हो, किसी मैल निकालने वाली वस्तु साबुन, आंवले इत्यादि से केशों को धोकर तैल लगाना उचित है ॥

(६) स्नान के समय और सोते और जागते समय भी नेत्रों को ठंडे और निर्मल जल से भिगोना और छींटे मार कर अच्छी तरह शुद्ध करना चाहिये यदि नेत्र किसी कारण से निस्तेज और मैल से भरे हों तो त्रिफला अर्थात् हड़, बहेड़ा और आंवले के पानी से धोकर कुछ काल पीछे वा सोते समय बच्चों के काजल और बड़ी अवस्था वालों के सुर्मा लगाना अच्छा है ॥

(७) हेमन्त ऋतु में थोड़े समय नग्न शरीर से धूप में बैठने और ग्रीष्म ऋतु में चांदनी में बैठने से, सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से शरीर बहुत निर्मल, शुद्ध और प्रफुल्लित हो जाता है ॥

उज्ज्वल वस्त्र ।

वस्त्र ऐसी भांति के पहन्ने योग्य हैं कि जिन में होकर सर्दी वा गर्मी अवगुण न करसके जो ऐसे कसे और जकड़े हुए न हों कि जिन के धारण करने और उतारने में बहुत परिश्रम पड़े और स्वास लेने में रुकावट हो वा कोई विभाग शरीर का दबा हुआ रहे और न ऐसे खुले हुए हों कि चलते समय पवन से उड़ने लगें वा इतने लम्बे हों कि पृथ्वी से रगड़ते हुए जावें ग्रीष्म ऋतु में मस्तक पर एक थान का साफ़ा और पांव पर मोज़े पहन्ना उचित नहीं है ॥

वस्त्रों को समय २ पर झाड़ना और मैल निकालने वाली वस्तुओं और जल से धोना चाहिये जो जल से धोए न जासकें उन को वायु और धूप से शुद्ध करलेना चाहिये ॥

जैसे दिन के पहन्ने के वस्त्र शुद्ध और सुथरे रखने आवश्यक हैं, उसी रीति से रात के काम में आने वाले वस्त्र—बिछौना इत्यादि और धोती को भी शुद्ध और स्वेत रखना चाहिये ॥

खाने पीने और दूसरे काम में आने वाले बर्तन और सामान को भी स्वच्छ और सुथरा रखना उचित है ॥

घर की सफ़ाई ।

रहने का घर ऐसा होना चाहिये जिस में सील वा गीलापन न हो सूर्य का प्रकाश भले प्रकार आता हो पाखाना ऐसे स्थान में हो कि सारे घर में दुर्गन्ध न फैलने पावे और जिस की सफ़ाई सुगमता से होसके ॥

रसोई भी ऐसे स्थान में हो कि धूआं सब घर में न फैलसके। रसोई में प्रति दिन भोजन बनाने से पहिले झाडू देकर चूने की ज़मीन हो तो पानी से और नहीं तो मिट्टी इत्यादि से चौका देना उचित है। रसोई के घर में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि न तो जल पृथ्वी में प्रवेश होने पावै और न एक स्थान में एकत्र होकर सड़ने लगै सील और दुर्गन्ध को दूर करने के हेतु सावधानी के तौर पर यदि लोबान इत्यादि भी जलाया जावै तो अति श्रेष्ठ है॥

पाखाना और मोरियां प्रति दिन साफ़ होनी चाहियें घर के बाहर वा चौक और बरामदे में तुलसी इत्यादि छोटे वृक्ष और पुष्पों की कूंड़ियां अनुक्रम से लगाना और कमरों को पुष्पों के गुच्छों से और ऋषि मुनियों के चित्रों से और उपदेशक वाक्यों से सजाना चाहिये॥

वर्षा काल के पीछे सारे घर में चूने से धुलाई करा के शुद्ध कर लेना उचित है॥

गीलापन वा दुर्गन्ध दूर करने के लिये वा शर्द ऋतु में तापने और घर को गर्म रखने के लिये अवश्य अग्नि जलाई जाती है इस हेतु धूम—निर्गम अर्थात् धूआं निकलने का मार्ग भी रखना आवश्यक है यदि धूआं निकलने की नाली न हो तो ऊपर छत के पास और नीचे पृथ्वी के पास ऐसे तावदान और छेद रखने आवश्यक हैं जिन के द्वारा धूआं निकल सके और निर्मल वायु आसके जहां तावदान और प्रकाश आने के छिद्र न हों वहां कोयला इत्यादि जलाना विशेष करके द्वार बन्द करके ऐसा करना आरोग्यता को बहुत ही हानि पहुंचाता है॥

प्रकाश को काम में लाना ।

रात्रि के समय प्रकाश काम में लाया जाता है। मिट्टी के तैल में जिस को लोग बहुधा जलाने के काम में लाते हैं दुर्गन्ध और धूआं विशेष होने का विकार है इस हेतु तिल वा सरसों का तैल वा मोमबत्ती जलाना उचित है यदि अधिक प्रकाश की आवश्यकता हो तो मिट्टी का तैल ऐसी लम्पों में जलाना चाहिये जिन में कांच की चिमनी वा कोई दूसरा उपाय ऐसा हो कि धूआं और काजल कम निकले॥

कम प्रकाश वा अधिक प्रकाश के सामने अति सूक्ष्म काम करने से नेत्रों को हानि पहुंचती है इस कारण यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि सूक्ष्म काम करते समय पूरा प्रकाश रहै और लम्प इत्यादि को सन्मुख रखने के स्थान में अथवा तो पीछे की ओर वा बाईं ओर उचित दूरी और ऊंचाई पर रखना चाहिये और यदि बहुत काल तक काम करना पड़े तो हर घंटे, आध घंटे के पीछे नेत्र मूंद कर एक दो मिनट तक विश्राम लेना उचित है॥

ऊपर लिखे नियमों के अनुसार चलने से शारीरिक आरोग्यता अच्छी बनी रहती है और रोग नहीं लगने पाता॥

प्रश्न—क्या ऐसे नियमों पर चलने से महामारी से बचना भी सम्भव है॥

उत्तर—महामारी के बल का प्रभाव बहुधा उन्हीं शरीरों पर विशेष चलता है जिन में उसी प्रकार का पदार्थ पहिले से उपस्थित हो और ऊपर लिखी रीतियों पर चलने से वैसा पदार्थ बने ही नहीं पाता इस कारण महामारी के रोगों से भी बहुत बचाव होजाता है तो भी महामारी की रोक और उस से बचने के लिये सामाजिक उन्नति

का भार उठाने वाले मनुष्यों को प्रबन्ध करना चाहिये जिस का वर्णन सामाजिक धर्म में विधि पूर्व्वक किया जावैगा ॥

शरीर एक घर की भांति है ।

प्रगट हो कि मनुष्य का शरीर केवल घर वा यंत्र के भांति है और यद्यपि शरीर का प्रभाव, आहार और रक्तनगत के कारण, मन इत्यादि पर भी अवश्य पड़ता है—जैसे भूक प्यास निद्रा के कारण आलस्य, मस्तक की पीड़ा इत्यादि में मन की शक्तियां—स्मृत इत्यादि ठीक २ निज का काम नहीं कर सक्तीं, तो भी शरीर पर मन का प्रभाव अधिक पड़ता है—जैसे भय, क्रोध आदि शरीर को इतना अवगुण पहुंचाते हैं कि कभी २ बहुत असाध्य रोगादिक होजाते हैं इस कारण से शारीरिक धर्म को पालन करते हुए मानसिक धर्म इत्यादि शारीरिक धर्म से कई गुणा अधिक सावधानी से पालन करना चाहिये जिन का वृत्तान्त आगामी बिभागों में वर्णन होगा ॥

प्रथम भाग ।

दूसरा अध्याय ।

मानसिक धर्म ।

मानसिक धर्म की व्याख्या ।

जैसे प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला स्थूल शरीर अर्थात् पंच महाभूत की काया त्वचा, मांस, रुधिर, अस्थि, मेद और वीर्य से बना हुआ है वैसे ही प्राण जो जीवन और चलने फिरने का कारण है, कर्म इन्द्रियों, ज्ञान इन्द्रियों और प्रतिक्षण संकल्प करने वाले मन से बना हुआ है ॥

इन सब शक्तियों से बना हुआ सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के भीतर है जिस की शक्तियां स्थूल शरीर से कई गुणा अधिक हैं और केवल प्रकाश रूप है—स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का ढक्कन वा खोला मात्र है जिस पर उस का प्रभाव प्रतिक्षण पड़ता रहता है ॥

मानसिक धर्म की व्याख्या अलङ्कार में ।

अलङ्कार रूपी कथा में धार्मिक पुरुष ऐसा कहते हैं कि शरीर रूपी नगर में मन राजा की भांति है, ज्ञान इन्द्रियां उस के अधि-कारी, कर्म इन्द्रियां उस के सेवक, संपूर्ण नाड़ियां और पट्ठे उस की सेना और वीर्य्य धन का भण्डार है। वीर्य्य जितना अधिक होगा और संपूर्ण कारबारियों, चाकरों और सेना से ठीक २ काम लेकर उन को वीर्य्य रूपी धन से प्रसन्न किया जावेगा, उतनी ही राज्य की

वृद्धि होगी और यदि वीर्य्य थोड़ा होगा और उस के बढ़ाने का उपाय न किया जावेगा और उस को वृथा और विपरीत से व्यय किया जावेगा तो मन रूपी राजा का तेज जाता रहैगा, कारबारी निर्बल होकर थक जावेंगे और अन्त में काम करने से उत्तर देदेवेंगे और राज नष्ट को प्राप्त हो जावेगा॥

मन की शक्तियां अगणित हैं, जिन के ठीक २ बर्ताव करने से सर्व सुख प्राप्त हो सक्ते हैं और यदि अज्ञानता, आलस्य और लालच आदि विषयों के कारण संपूर्ण शक्तियों की ठीक २ वृद्धि न होने पावै वा उन से पूरा २ काम ही न लिया जावे वा बिपरीति काम लिया जावे तो मन इन्द्रियों के बन्धन में फंस कर भांति २ के दुःखों में पड़ जाता है और इन्द्रियां भी अध्यक्ष रहित सेना के अनुसार व्याकुल और बिखरी हुई रहती हैं॥

मन को सम्पूर्ण अवस्थाओं में एकाग्र रखना चाहिये।

जैसे दिन के पीछें रात्रि और रात्रि के पीछें दिन सदैव होते रहते हैं, और ग्रीष्म के पश्चात् शरद और शरद के पश्चात् ग्रीष्म का तार लगा हुआ है, इसी प्रकार सांसारिक कामों में सुख के पीछें दुःख और दुःख के पीछें सुख लगा हुआ है। इस हेतु किसी हर्ष वा शोक में अधिक लिपायमान न होकर मन को संपूर्ण अवस्थाओं में सावधान और एकाग्र रखना चाहिये। न आनन्द के अवसर पर अत्यन्त ही आनन्दित हो जाना उचित है, न दुःख के समय में बहुत ही घबरा-जाना योग्य है—इन दोनों अवस्थाओं को चिरस्थाई न समझ कर अपने सदाचारों में सच्चे मन से लगा रहना चाहिये। जितने बड़े २ मनुष्य प्रसिद्ध काम करके अपना नाम कर गये हैं, वे सब ऊपर लिखित रीति अनुसार अपने करने योग्य कामों को करते रहे हैं उदाहरण को तरह पर संक्षेप वृत्तान्त महाराजा रामचन्द्रजी का लिखा जाता है॥

दृष्टान्त महाराजा रामचन्द्रजी ।

जब महाराजा रामचन्द्रजी को उन के पिता दशरथजी ने राज्य देने का विचार किया उस समय अयोध्या वासियों और रामचन्द्रजी की माता कौशल्या इत्यादि को अत्यन्त हर्ष हुआ । जैसे २ राज्य तिलक का समय पास आता जाता था पुरवासियों का आनन्द बढता जाता था । यहां तक कि जिस दिन राज्य तिलक होना था, उस से पहली रात्रि को सब रात नगर और बास बास में भांति २ के आनन्द मङ्गल किये गये, परन्तु महाराजा रामचन्द्रजी के चित्त में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ । वे जैसे सदैव रात्रि को सोया करते थे उसी तरह सोकर और पिछले प्रहर उठ कर नित्य नियम करते रहे । और फिर सदैव की रीति अनुसार महाराजा दशरथ के पास गये वहां जाते ही राज्य के बदले बनवास मिला, उस समय भी महाराजा रामचन्द्रजी को कुछ भी क्षोभ न हुआ बरन वे यह कहते थे कि अब बन के रमणीक स्थानों को देख कर चित्त को प्रसन्न करेंगे और एकान्तवासी महात्माओं के दर्शन और सत्सङ्ग से लाभ उठावेंगे ॥

राज्य के स्थान में बनवास मिलना कुछ कम विपत्ति न थी परन्तु उस आपदा के समय में पिता के मरने का घोर कष्ट पतिव्रता स्त्री सीताजी को रावण का हर कर लेजाना, रावण के साथ युद्ध में योद्धा भाई लक्ष्मणजी का अत्यन्त घायल होना निदान चोट पर चोट का पड़ना ऐसी दुःखदाई बातें थीं, जिन के सुन्ने से जी कांप जाता है, परन्तु महाराजा रामचन्द्रजी ने सब क्लेशों को एक सच्चे धार्मिक और योद्धा पुरुष के समान सहन करते हुए चौदह वर्ष के आपत्ति काल को अति पुरुषार्थ, पराक्रम, धर्माचार के साथ व्यतीत करके फिर स्वदेश अर्थात् अयोध्या में जाकर राज्य किया ॥

मन के बुरे बिचारों को रोकने की रीति।

मनुष्य का मन समुद्र की नाईं है जिस में संकल्प विकल्प की लहरें उठती रहती हैं॥

भारतवर्ष के ऋषियों ने मन को दो जिह्वा वाला सर्प कहा है, एक जीभ में अमृत भरा हुआ है और दूसरी में विष, अच्छे विचारों को अमृत और बुरे विचारों को विष समझना चाहिये॥

पहिले मन में संकल्प उत्पन्न होता है उस के अनुसार कर्म होता है और अपना फल सुख वा दुःख देता हुआ संस्कार रूप बीज की भांति मन में उपस्थित रहता है। इसी प्रकार संस्कार से कर्म और कर्म से संस्कार का चक्कर बराबर चलता रहता है और अच्छे वा बुरे विचारों में मन अहर्निशि फंसा रहता है॥

बुरे विचार एक दिन में उत्पन्न नहीं होते हैं परन्तु धीरे २ बहुत काल तक उन में फंसे रहने से वे बलवान् हो जाते हैं। बहुधा आदि में किसी कुसङ्ग के कारण, किसी एक विषय की निर्बल इच्छा उत्पन्न होती है; विषयों में, चाहे धन की अभिलाषा हो, चाहे नाम की, चाहे अच्छे घर और अच्छे आहार की, चाहे गौरवताई वा प्रभुताई की, चाहे भोग विलास की, मन उस विषय को धीरे २ पसन्द करने लगता है॥

फिर उस को भोगने की इच्छा उत्पन्न होती है, उस समय उस विषय के प्राप्त होने के उपाय सोचे जाते हैं। पहिले उचित उपायों पर दृष्टि पड़ती है परन्तु उन में कष्ट होने के हेतु वा निष्फलता के

कारण अनुचित साधन काम में लाये जाते हैं परन्तु यह सावधानी रखनी पड़ती है कि उन अनुचित साधनों को कोई जानने न पावे और साथ ही उन अनुचित साधनों को उचित स्थापित करने की चिन्ता रहती है कि बात चौड़े आजाने पर उस के प्रमाण दिये जासकें। अन्त में यह दशा होजाती है कि कोई चाहे जितना बुरा कहै, चाहे जैसे कष्ट उत्पन्न हों, चाहे जैसे अपराध वा पाप करने पड़ें, परन्तु चित्त उस ओर से नहीं हटसक्ता। घर बार को छोड़ देना, सर्दी गर्मी को सहलैना, प्राण तक का त्याग कर देना, सुलभ जान पड़ता है परन्तु उस बुरे स्वभाव को छोड़ना कठिन दीख पड़ता है। यदि जो बुरा विचार पहली बार उत्पन्न हुआ था उस को बुरा समझ कर रोक दिया जाता, तो मन फिर कभी उस ओर न जाता और विषय रूपी शत्रु हृदय रूपी कोट में कभी न घुसने पाता॥

अतएव बुरे विचारों से मन को शुद्ध करने के लिये, कुसङ्ग का त्याग और सत्सङ्ग का ग्रहण करना उचित है। सत्सङ्ग की सहायता से संपूर्ण बुरे विचारों को एक २ करके मन से निकाल देना चाहिये॥

यदि ऐसे महात्माओं का सत्सङ्ग न मिलसके, जिन की विद्या और व्यवहार सम हैं, तो उस के बदले ऐसे महात्माओं की बनाई हुई धर्म सम्बन्धी पुस्तकें, जो प्रति अवसर और स्थान में सुगमता से मिलनी सम्भव हैं, अवलोकन करना चाहिये॥

बचपन से ही यदि मनुष्य कुसङ्ग से बचकर सत्सङ्ग रूपी धन को प्राप्त करता रहै तो उस का मन स्वाभाविक ही शुद्ध रहैगा॥

मन को शुद्ध करने की दूसरी रीति।

निम्न लिखित विषयों अर्थात् बुराइयों से, जहां तक होसके मन को बचाना चाहिये, यद्यपि मुख्य २ अवस्थाओं और अवसरों में इन विषयों से बचाना इतना दुर्लभ है, कि प्रायः असम्भव कहना चाहिये तो भी सोच विचार रखने और उद्योग करते रहने से इन विषयों के प्रभाव से बहुत कुछ बचना सम्भव है। वे दोष नीचे लिखे अनुसार हैं:—क्रोध, अभिमान, सुकुमारता, ईर्षा द्वेष, निन्दा, भय, लज्जा, शङ्का, लोभ, मोह, हट वा बाद, पक्षपात, स्वार्थ चिन्ता, असावधानी, आलस्य, आतुरता, लल्लो पत्तो, छल, असत्य अर्थात् झूंठ॥

१—क्रोध वा रिस।

यह दोष थोड़ेसे कारण से ही उत्पन्न होजाता है और शरीर को अग्नि की भांति तपाने और जलाने लगता है। क्रोध की व्यवस्था में मन और इन्द्रियां पराधीन होजाती हैं और उस अविवेकता के झकड़ और रोष की अवस्था में कई ऐसे अयोग्य और अनुचित कर्म होजाने सम्भव हैं, जिन का बुरा प्रभाव समस्त अवस्था भर सहना पड़े और पश्चात्ताप करना पड़े, शास्त्रार्थ के समय क्रोध करने से बिचार शक्ति और तर्क नष्ट होजाते हैं न्याय, निष्ठुरता, प्रबलता, और निर्दयता से बदल जाता है सत्य निर्णय की खेवट बन्द होकर अपनी जय का उपाय प्रारम्भ होजाता है, इस हेतु सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी कोई बात न होने पावै जिस्से क्रोध उपजे और उन सब बातों से जो क्रोध दिलावें दूर रहना चाहिये। क्योंकि जिस मनुष्य को ज्वर का भय हो उस को उन संपूर्ण वस्तुओं से जो ज्वर वृद्धि कारक हों अवश्य त्याग करना उचित है। क्रोध को रोके जाने वा कम किये जाने की अपेक्षा क्रोध को उत्पन्न ही न होने देना बहुत अच्छा है, यदि किसी मुख्य कारण से क्रोध आजावे,

तो अपने आप को निरपराधी निश्चय कराने के बदले, वहां से हट जाना उचित है, जैसे सर्प को किञ्चित् स्थान मस्तक टेकने को भी मिलजाता है, तो वह अपने सकल शरीर को भी समेट कर वहां लेजाता है, इसी रीति से जिस मन पर क्रोध को थोड़ा भी अधिकार होजाता है उस मन का क्रोध अधिपति होजाता है॥

क्रोध को रोकने का एक यह भी उपाय है कि जब क्रोध का आना जान पड़े तो बड़े धीरज और गम्भीर वृत्ति के साथ मन को संभाले रखना चाहिये॥

स्वाभाविक एक मनुष्य दूसरे को कष्ट पहुंचाना कदापि नहीं चाहता है परन्तु तामसी पुरुष बहुधा वृथा ही ऐसा सोच लेता है कि उस दूसरे मनुष्य ने मुझ को पीड़ा पहुंचाने का विचार किया था॥

यदि क्रोध का बल न रुक सके, तो जिह्वा को रोकने का उद्योग करना चाहिये। कटु और तिरस्कार युक्त बचनों से आक्षेप करना वा क्रोध की बातों को रोष के साथ कहना अग्नि को अधिक प्रज्वलित करना और ज्वाला को भड़काना है। चुप होजाने से क्रोध आप से आप चला जाता है और शान्ति अपनी छाया डाल देती है॥

प्रगट हो कि किसी मनुष्य पर प्रीति के हेतु उस की भलाई के लिये क्रोध करना अनुचित नहीं है। भलाई से अथवा प्रेम से किसी बुराई वा अन्याय के विरुद्ध क्रोध वा अप्रसन्नता दिखलाना निन्दा के योग्य नहीं है॥

२—अभिमान वा अहङ्कार।

सोच विचार कर देखो तो क्षणभंगुर मनुष्य की आयुर्दा जल के बुदबुदे के समान है, रोग इत्यादि के समय निपट

पराधीन होजाता है और थोड़े समय में जैसे रीते हाथ आया था वैसे ही इस असार संसार से कूच कर जाता है। यदि विद्या धन और राज्य का अभिमान किया जावे तो संसार में एक से एक बढ़ चढ़ कर विद्यावान्, धनाढ्य और बड़े से बड़े राज्य वाले विद्यमान हैं॥

अपने से एक वा अधिक पद ऊँचे मनुष्यों की भांति रहना वा दिखलाना अभिमान का यथार्थ लक्षण है। कङ्गाल जो दिखावट में अपने आप को धनाढ्य जतलाते हैं अर्थात् विवाह इत्यादि अवसरों पर रुपया उधार लेकर वृथा व्यय करते हैं वा मांगे के आभूषण वस्त्र पहिन कर अपनी भड़क दिखलाते हैं। थोड़ी विद्या वाले जो अपने आप को बड़े विद्वान् दिखाना चाहते हैं यह सब एक प्रकार के घमण्डी हैं। अभिमानी की इच्छायें इतनी अधिक होती हैं कि वे कभी पूरी नहीं हो सक्तीं। मन एक छोटीसी वस्तु है, परन्तु बड़ी बड़ी वस्तुओं की इच्छा करता है, वह सेरभर नाज नहीं खासक्ता किन्तु सब जगत को भी अपने लिये उपयुक्त नहीं समझता। घमण्ड से अन्त में सदैव नीचा देखना पड़ता है और इस दुःख को असहन समझ कर अभिमानी सदैव व्याकुल रहता है॥

यह अच्छा है कि कोई मनुष्य भला हो और बुरा कहा जावे, विरुद्ध इस के कि बुरा हो और भला प्रसिद्ध किया जावे। प्रथम अवस्था में विनय और नम्रता प्राप्त होकर शान्ति होती है और दूसरी में झूठे यश और कीर्त्ति से मनुष्य घमण्डी होजाता है। न्यूनता से अपने को छोटा दिखलाना वा दीनता से बातें करना भी एक भांति का घमण्ड है, जिस्से बचने के लिये मनुष्य को चाहिये कि जैसा हो वैसा ही अपने को बतलावे और अपनी अल्प शक्ति पर दृष्टि डाल कर और परमात्मा की महान् शक्ति पर ध्यान देकर उस

के महल से अपना परिमाण करना चाहिये ऐसा करने से चाहे जितनी मनुष्य वृद्धि क्यों न करे उस बड़े प्रमाण के सामने वह वृद्धि थोड़ी ही दीख पड़ेगी ॥

सांसारिक वस्तुओं के प्राप्त होजाने पर जो मनुष्य घमण्ड करते हैं उन को नीचे लिखे इतिहास पर ध्यान देना चाहिये ॥

क़ारून बादशाह और विद्वान् सोलन की कहानी ।

कहते हैं कि बादशाह क़ारून बड़ा धनाढ्य था और अपने धन का बड़ा घमण्ड रखता था, जो मनुष्य उस के पास जाता उस को अपना धन दिखला कर प्रशंसा सुने की अभिलाषा रखता था। एक बार सोलन, जो यूनान के मुख्य सात विद्वानों में से था, क़ारून के दरबार में गया क़ारून ने अपनी प्रकृति के अनुसार उस हकीम को भी अपना धन दिखलाया और प्रशंसा सुने को अभिलाषा की। सोलन ने उस की सम्पदा, ऐश्वर्य और प्रताप को देख कर, प्रशंसा करने के बदले मौन धारण की। क़ारून को वह मौन अप्रिय लगी और स्वयं प्रश्न करने लगा कि तुम संसार में सब से अधिक भाग्यवान् किस को समझते हो ? सोलन ने एक मनुष्य का नाम बताया, जो अपने देश की स्वाधीनता बनी रखने के हेतु, किसी युद्ध में मारा गया था—क़ारून ने फिर पूछा कि उस्से दूसरे स्थान में किस को सुखी जानते हो ? सोलन ने उत्तर दिया कि दो तरुण बालक थे जिन्होंने अपने माता पिता की भले प्रकार सेवा की थी और आज्ञा मानी थी, जिस के बदले उन की माता ने आशीर्वाद दिया कि सब से बड़ा सांसारिक सुख उन को प्राप्त हो! और वह सुख शान्ति के साथ मृत्यु होजाने में प्रगट हुआ ॥

जब क़ारून ने दूसरे स्थान में भी अपना नाम न सुना तो आश्चर्य और अप्रसन्नता के साथ कहने लगा कि क्या मैं जिस के पास इतना धन, माल और वैभव है सुखी नहीं समझा जासक्ता हूं? सोलन ने उत्तर दिया कि मरने से पहिले कोई सुखी कैसे कहा जासक्ता है, संसार की प्रत्येक वस्तुओं में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है, इस हेतु नहीं कहा जासक्ता कि तुम्हें अभी मरने से पहिले क्या २ बातें प्राप्त होंगी॥

यह सत्य प्रत्युत्तर सुन कर क़ारून बहुत अप्रसन्न हुआ और बिना सत्कार किये ही सोलन को बिदा कर दिया॥

कुछ कालान्तर के पश्चात् ईरान के बादशाह कैखुसरो ने क़ारून के देश पर चढ़ाई की और युद्ध में हरा कर बन्द कर लिया और आज्ञा की कि वह गीले कांटों में जला दिया जावे॥

जब अग्नि भले प्रकार प्रज्वलित होगई और क़ारून को उस में डालने का विचार किया गया, उस समय उस को सोलन का वचन स्मरण आया और उस के मुख से स्वतः ही सोलन का नाम तीन बार निकला। कैखुसरो ने उस शब्द का अर्थ और उच्चारण का कारण पूछा और सकल वृत्तान्त ज्ञात होने पर उस के मन पर भी सोलन की शिक्षा और संसार की चपलता का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसने क़ारून को जीवदान दिया और उस का राज्य भी पीछे उस को देदिया॥

इस संयोग के पीछे क़ारून को धन सम्पदा का अभिमान कभी नहीं हुआ॥

३—सुकुमारता।

मन को नित्य प्रति सुख चैन में रखना भी बड़ा दोष है। ग्रीष्म ऋतु में पंखे और ख़स की टट्टी के नीचे बैठे हुए भी

मस्तक की पीड़ा होना और सर्द ऋतु में अनेक वस्त्रों के पहने हुए और अंगीठी से तापते हुए भी, सर्दी का लगजाना सुकुमार पुरुषों की प्रकृति में गिना जाता है और उन का मन अति कोमल होने के हेतु तितीक्षा अर्थात् सर्दी गर्मी सहने के योग्य कभी नहीं रहता ॥

नव्वाब वाजिद अलीशाह का संक्षेप वृत्तान्त ।

नव्वाब वाजिद अलीशाह बाल्य अवस्था से ही बहुत लाड़ में पले थे। यह एक प्रसिद्ध बात है कि जिस दिन किञ्चित् मात्र भी अधिक दूध लेने में आजाता था, तो नव्वाब साहब को दस्तों का रोग होजाता था। दही खाने से सर्दी लग जाती थी और कच्ची सूंठ (अदरक) खाने से मुख में छाले होजाया करते थे। और यदि कोई मनुष्य थोड़ा चिल्ला कर बोलता तो मस्तक में पीड़ा होने लगती थी ॥

जब गवर्नमेंएट अङ्गरेज़ी ने अवध के देश पर अपना अधिकार जमाया और नव्वाब साहब के महलों को रातों रात सेना के योद्धाओं ने घेर लिया, उस समय नव्वाब साहब अज्ञात प्रमत्त अवस्था में और साधारण स्त्रियों के वस्त्र और हाथों में चूड़ियां इत्यादि पहिने सोते हुए थे जब वे एक महल से दूसरे महल में जाने लगे, पहरे के जवान ने अपनी सदैव की रीति के अनुसार उग्र ध्वनि से पुकारा "होल्ट हू कम्ज़ देअर" अर्थात् ठहरो तुम कौन हो जिस को सुन कर नव्वाब साहब की छाती धड़कने लगी और मूर्च्छा आगई और जब नव्वाब साहब अङ्गरेज़ी अफ़सर के सामने आए तो यद्यपि वे बड़े पुष्ट रूप यौवन सम्पन्न थे परन्तु यह कह कर कि मैं निरपराधी हूं डाढ़ें मार कर बच्चों के समान रोने लगे ॥

४—ईर्षा।

इस संसार में संपूर्ण मनुष्यों को सुख वा दुःख, हानि वा लाभ, स्तुति वा निन्दा, सम्पत्ति वा विपत्ति, केवल अपने कर्मों के अनुसार मिलती है अतएव किसी मनुष्य को बढ़ा हुआ देख कर ईर्षा करने से उस की उन्नति में किसी प्रकार की हानि नहीं होसक्ती, केवल द्वेषी का जीव जलता रहता है और वह सब की दृष्टि में तुच्छ होजाता है और उस का ईर्षा करने का स्वभाव जैसे २ बढ़ता जाता है उतनी ही अचैनता उस मनुष्य को रहती है और न्याय शक्ति उस्से पृथक् होजाती है॥

ईर्षा बहुधा दूसरों के सुख को देख कर उत्पन्न होती है। बड़ों से इस कारण कि वे हमारे बराबर नहीं हैं। छोटों से इस हेतु कि वे कदापि हमारे बराबर न होजावें और बराबर वालों से इस निमित्त कि वे हमारे बराबर क्यों हैं। द्वेषी ऊपर लिखित कारणों से दूसरों के दोष, दुःख और विपत्ति को देख के प्रसन्न हुआ करता है॥

द्वेष रखना चौड़े बैर भाव रखने से अधिक अधम और भयङ्कर है, क्योंकि कलह करने वाला जब कलह का कारण नहीं रहता है तो बिरोध रखना त्याग कर देता है, परन्तु द्वेषी कभी मित्र नहीं होता शत्रु तो चौडे लड़ाई करता है और शत्रुता का सच्चा कारण होने से उस को चौड़े करने में कभी भय वा शङ्का नहीं लाता, परन्तु द्वेषी केवल अपनी कुटिलता के कारण द्वेष करता है जिस को किसी मनुष्य के सामने चौड़े नहीं कर सक्ता और प्रगट लड़ने के विरुद्ध छिप २ कर अति तुच्छता और कातरता के साथ आक्षेप करता रहता है॥

द्वेषियों ने अपनी निन्दनीय प्रकृति ईर्षा के वश होकर धर्म पर अधर्म रूपी शस्त्रों से अनेक बार आक्षेप किये हैं और उस को नष्ट

करने में अपनी शक्ति भर कोई बात शेष न छोड़ी, महात्माओं को दुःख पहुंचाया, मित्रों के साथ छल किया, भले मनुष्यों की निन्दा की, निष्पापियों का हनन किया, यहां तक कि अनेक प्रकार के बुरे कर्म करते २ अपने आप को नष्ट किया, अतएव धार्मिक पुरुषों को उचित है कि ईर्षा रूपी बीज को अपने मन रूपी भूमि में कदापि न बोवें ॥

५—द्वेष अर्थात् शत्रुता ।

जब मनुष्य जन्म धारण करता है तो उस का न कोई शत्रु होता है न मित्र, धीरे २ उसी के कर्तव्य ही शत्रुता वा मित्रता के कारण होते जाते हैं । द्वेष दोष से मन में नित्य एक प्रकार की जलन और अप्रसन्नता रहा करती है और जिस के साथ द्वेष किया जाता है उस की ओर से प्रतिक्षण भय लगा रहता है, इस कारण उचित है कि संपूर्ण पुरुषों के साथ यथायोग्य बर्ताव करते हुए, मन में किसी से भी द्वेष भाव न रक्खा जावे ॥

यदि मनुष्य अच्छे कर्म करने वालों से मित्रता रक्खे, दातारों का धन्यवाद करता रहे, दुःखियों की सहायता करता रहे, और कुकर्मियों से अलग रहने का उपाय करता रहे, तो द्वेष के बुरे प्रभाव से बहुत कुछ बच सक्ता है ॥

६—निन्दा ।

प्रति मनुष्य में बुराई और भलाई दोनों गुण होते हैं नित्य प्रति बुराई को ही, जैसे मक्खी घाव पर ही बैठती है, देखते रहना और उस का बढ़ावे के साथ वर्णन करना वा भलाइयों को बुराइयां करके दिखलाना निन्दा कहलाता है । इस निन्दा दोष के करने वाले का मन बहुत मलीन होजाता है । सज्जनों की निन्दा करने वालों से

लाभ मिलता है, क्योंकि वे निन्दक पुरुषों के भय से सदैव नियमों पर चलते हैं और यदि वास्तव में कोई बुरी प्रकृति उन में होती है, तो उससे सचेत होकर उस को सुधारने का उपाय करते हैं । यथार्थ में देखो तो निन्दक पुरुष सज्जनों के बिना वेतन के रक्षक अर्थात् चौकीदार हैं ॥

निन्दक पुरुष को उचित है कि वह अपने छिद्र और दोषों को न्याय की दृष्टि से सदैव देखता रहै । ऐसा करने से न तो उस को दूसरों की निन्दा करने का समय मिलेगा और न वह निन्दा करने का साहस कर सकेगा ॥

७—भय अर्थात् डर ।

भय से मन पर बहुत बुरा प्रभाव होता है नित्य प्रति भय में फंसे रहने से आरोग्यता बिगड़ जाती है और आयु शीघ्र पूर्ण हो जाती है एकाएक ही भय उत्पन्न होने से मनुष्य बहुधा अचेत हो जाता है कभी २ प्राण भी जाते रहते हैं इस प्रसङ्ग की एक प्राचीन कहानी चली आती है कि एक मनुष्य किसी अंधेरी कोठरी में खूंटी गाडने गया था उस का वस्त्र खूंटी में आगया जिस के कारण भय से वहीं प्राण मुक्त होगया ॥

सब से बड़ा भय मन के स्वभाव के विरुद्ध काम करने से उत्पन्न होता है । भरतखण्ड के ऋषियों ने इसी हेतु भय को एक बड़ा दुःख माना है, वे भय से बचने के लिये नित्य प्रति मन में ऐसी प्रार्थना करते रहते थे कि हे परम पिता परमेश्वर ! आप हम को ऐसे शुभ कर्मों के करने की सदैव प्रेरणा करते रहिये कि जिन के कारण हम को इस संसार में किसी दूर देश अथवा समीप देश में अर्थात् मन इन्द्रियां इत्यादि से अपने अन्तर में और दूसरी प्राणियों से बाहिर

में जो भय उत्पन्न होता है वह नष्ट को प्राप्त होजावे। हे परमात्मन्! आप हम को मित्र और अमित्र, ज्ञात और अज्ञात संपूर्ण पदार्थों से भय रहित कीजिये और ऐसी कृपा कीजिये कि संपूर्ण पदार्थ हम को मित्र भाव से सुखदायक होवें॥

८—लज्जा ।

वे इच्छायें और विचार जिन के करने से अपने मन में वा दूसरे मनुष्यों के सामने लज्जा आवे, सदा त्याग करने के योग्य हैं। बार २ लज्जा आने से मन की कई शक्तियां निर्बल और नष्ट होजाती हैं, और निर्लज्जता के काम सदा करते रहने से प्रकृति ऐसी बिगड जाती है कि उन को छोड़े करने पर समर्थ होजाता है और इस प्रकार संपूर्ण मनुष्यों की दृष्टि में तुच्छ और अधम होकर अथवा तो वह अपने मन में ही अपने आप को नीच समझने लगता है वा इतना निर्लज्ज होजाता है कि संसार में कोई बडा वा अच्छा काम करने का उत्साह उस को नहीं रहता है और पुरुषार्थ, वीरता इत्यादि गुण उस के भीतर से नष्ट होजाते हैं वा बुराई की ओर लगजाते हैं॥

९—शङ्का ।

शङ्का की अवस्था में मन को बहुत क्लेश रहता है, अतएव जिस काम में शङ्का उत्पन्न हो उस को भले प्रकार से दूर कर लेना चाहिये। शङ्का का स्वभाव जितना अधिक होजाता है, उतना ही विवेक कम होजाता है और अप्रसन्नतासी ज्ञात पड़ती है॥

शङ्का, सत्य पूछो तो, कोई बुरी वस्तु नहीं है यथार्थ में किसी काम की शङ्का उत्पन्न होने पर भी कर लिया जाता है तो वह अच्छा नहीं है॥

शङ्का रूपी चमगादड़ें, अविद्या रूपी सूर्य्य के अभाव में, निकला करती हैं, उन के दूर करने का यथार्थ उपाय यही है, कि जिस विषय में शङ्का उत्पन्न हो उस को बुद्धि और निरूपण के द्वारा यथोचित तुरन्त ही दूर कर लिया जावे और सदा यह विचार रखना चाहिये कि शङ्का ही शङ्का में अवसर हाथ से न निकल जावे॥

१०—लोभ अर्थात् लालच।

जैसे लालच के मछली जाल में फंस जाती है वैसे ही बड़े २ बुद्धिमान् मनुष्य भी लोभ के वश होकर अयोग्य काम कर बैठते हैं द्रव्य के लालची मति हीन होकर जुए में रुपया खो बैठते हैं। रसायण बनाने के ध्यान में तांबे से सोना बना लेने के लालच में आकर सैकड़ों मनुष्य नाश को प्राप्त हो गये॥

प्रयोजन यह है कि जहां विपरीति से लालच ने मनुष्य के मन पर अधिकार पाया वहां ही वह पुरुष अनेक दुःख और पापों की रज्जु से बंध जाता है लालच के वेग में जो २ भूल मनुष्य करता है उन के लिये यावत् जीवन पछताना और लज्जित होना पड़ता है॥

११—मोह।

किसी सांसारिक पदार्थ में अनुचित प्रीति रखने को मोह कहते हैं जिस के प्रबल होने पर मन की विचार शक्ति पर तम रूपी असावधानता का आवरण पड़ जाता है॥

माता पिता जब बच्चों को किसी बुरी बात वा रोग ग्रस्त होने पर औषधि देते समय रोने के कारण रुकजाते हैं वा अपने नेत्रों से

दूर होने के भय से विद्याध्ययन के लिये दूर देश में नहीं भेजते हैं। युवा पुरुष अपनी स्त्री के कहने से मा बाप और दूसरे सम्बन्धियों मित्र और अनुचर आदि से अनुचित बर्त्ताव करते हैं, वा व्योपारी आदि देश की प्रीति से देशाटन करने में बिलम्ब करते हैं, वा शूरवीर योद्धा मृत्यु के भय वा स्त्री पुत्रों की प्रीति के हेतु युद्ध से पृथक् खड़े रहते हैं, तो यह संपूर्ण मोह के लक्षण हैं जिन के कारण से अगणित हानियां उठानी पड़ती हैं॥

१२—हठ वा वाद।

जब किसी बात को अपने अनुभव, अभ्यास और निरूपण के द्वारा उचित वा अनुचित समझ लिया जावे तो भी उस के विरुद्ध किया जावे उस को हठ कहते हैं। इस दोष से अनर्थ, अवनति, हानि और अपमान उठाना पड़ता है॥

प्रसिद्ध है कि जब लङ्कापति रावण महाराजा रामचन्द्रजी की स्त्री सीताजी को चुरा कर ले गया और महाराजा रामचन्द्रजी सेना सहित उस से लड़ने को गये उस समय रावण के भाई विभीषण और उस की भार्य्या मन्दोदरी इत्यादि ने कई प्रकार से समझाया कि महाराजा रामचन्द्रजी को उन की स्त्री पीछे देकर क्षमा मांगो परन्तु रावण ने वाद किया और अन्त को युद्ध में मारा गया॥

१३—पक्षपात।

संपूर्ण प्राणी मात्र को अपने अनुयाई समझ कर और मनुष्य को स्वजातीय जान कर उन के गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार बर्त्ताव करना चाहिये। मुख्य २ मनुष्यों को अपना समझ कर उन के साथ पक्षपात करने से विचार शक्ति और न्याय शक्ति निर्बल होकर मन मलीन होजाता है॥

संसार में जितने क्लेश, झगड़े और युद्ध हुए हैं और जितनी आपत्तियां इस समय उपस्थित हैं जिन के कारण संसार दुःख सागर प्रतीत होता है उन सब पर गहरी दृष्टि डाल कर खोज किया जावे तो बहुधा पक्षपात ही उन का हेतु जान पड़ेगा॥

महाराजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन को पक्षपात करके युधिष्ठिर को राज्य से पृथक् करना चाहा जिस का परिणाम महाभारत की घोर लड़ाई हुई जिस ने भारतवर्षी राजा और प्रजा को भांति २ की हानियां पहुंचा कर निर्बल कर दिया॥

१४—स्वार्थ।

सदा अपने स्वार्थ को ही दृष्टि में रखना, अपने रत्ती भर लाभ के लिये दूसरों की मन भर हानि कर देना भी उचित समझना, अपने लाभ के अवसर पर दूसरों के अधिकार को सर्वथा भूल जाना, धर्म सम्बन्धी बातों में अपने स्वार्थ के हेतु अपने असत्य को सत्य और दूसरों के सत्य को असत्य करके दिखलाना, इस को स्वार्थ दोष कहते हैं॥

भारतवर्ष के ऋषि स्वार्थ को बहुत ही बुरा समझते थे वे अपने जीवन का मुख्य उद्देश दूसरों को ही लाभ पहुंचाना जानते थे और दूसरों को लाभ पहुंचाने की बातें सोचने और करने में ही अपना जन्म भर व्यतीत करते थे और मनुष्य मात्र के लाभ में ही अपना लाभ समझते थे इस कारण उन्होंने निष्काम कर्मों की बहुत महिमा वर्णन की है॥

१५—चिन्ता।

बहुधा धन इत्यादि सांसारिक पदार्थों को प्राप्त करने, रक्षा करने, वा खोए जाने पर मन में चिन्ता होती है चिन्ता से मन

की बहुतसी शक्तियां निर्बल हो जाती हैं और हृद्धावस्था समय से पहिले आजाती है ॥

बुद्धिमान् पुरुष चिन्ता करने के बदले धैर्य्य के साथ उद्योग करते हैं कि जिस पदार्थ की इच्छा हो वह प्राप्त होजावे और उस की रक्षा और पूरी हृद्धि होती रहै । यदि किसी वस्तु के प्राप्त करने में वा उस की हृद्धि करने में सच्चे मन से उद्योग किया जावे तो बहुधा सफलता प्राप्त होती है ॥

उद्योग करने पर भी असफलता रहै तो उद्योग की कमी समझ कर दूसरी तीसरी बार जब तक सफलता न हो प्रयत्न करते रहना चाहिये ॥

ब्रूस की कहानी ।

स्कोटलैण्ड के प्रसिद्ध स्वदेश भक्त जोन ब्रूस राज्य प्राप्त करने का बहुत उद्योग करता रहा परन्तु सदैव निष्फलता हुई और बड़े २ दुःखों में फंस गया, यहां तक कि उस का उत्साह कम होने लगा, उस निराशा में जब कि वह एक बार खाट पर लेटा हुआ था उसने एक कीड़े को भीत पर चढ़ते देखा कि जो भीत पर होकर छत पर जाना चाहता था परन्तु बार २ गिर पड़ता था जब छः बार गिर-चुकने के पश्चात् सातवीं बार चढ़ने लगा तो ब्रूस ने जिस की भी छः बार हार हो चुकी थी बहुत ध्यान और अनुराग से उस कीड़े को देखना प्रारम्भ किया और मन में विचार किया कि यदि सातवीं बार कीड़ा भीत पर चढ़ गया तो मैं भी सातवीं बार फिर उद्योग करूंगा, कीड़ा उस बार छत पर चला गया अतएव उस तुच्छ कीड़े से धैर्य और उत्साह की संथा लेकर ब्रूस ने सातवीं बार अति धीरज और हिम्मत से उद्योग किया और सफलता प्राप्त की ॥

संसार में अनेक पदार्थ हैं जिन को मनुष्य प्राप्त करना चाहता है परन्तु वे ही पदार्थ मिलते हैं जिन के लिये पूरा उद्योग किया जाता है अतएव वे वस्तुयें जिन के लिये मनुष्य पूर्ण उद्योग न करें और वे न मिलें उन के लिये चिन्ता करने के बदले सन्तोष करना उचित है॥

सन्तोष करने से कोई पदार्थ मिलता नहीं परन्तु जो सुख पदार्थ के मिलजाने से होता है उतना ही वा अधिक सुख का होना सन्तोष के द्वारा सम्भव है॥

इस संसार में मनुष्य जन्म से मरण तक अपनी अवस्था को अपने ही कर्मों के अनुसार बहुत अच्छी वा बुरी कर सक्ता है, अतएव अपने उद्योग से प्राप्त किये हुए पदार्थों ही में प्रसन्न और सन्तोष वृत्ति से रहना चाहिये॥

शेख सादी का वृत्तान्त।

प्रसिद्ध कवि शेख सादी शीराज़ी बहुत कङ्गाल थे यहां तक कि एक बार बहुत काल तक एक जोड़ा पगरखियां उन को पहनने को न मिलीं और सादी साहब यह सोच कर कि इतनी योग्यता होने पर भी एक जोड़ा जूता मुझ को न मिला शोकातुर होगये उसी समय सामने से एक मनुष्य को आते देखा कि जिस की दोनों टांगें टूटी हुई थीं, उस को देख कर सन्तोष आगया कि यदि पगरखियां न मिलीं तो कुछ शोक की बात नहीं टांगें तो अच्छी हैं॥

१६—असावधानता।

असावधान रहते हुए मन अपने शरीर रूपी नगर में यथोचित राज्य नहीं कर सक्ता जब तदाधीन शक्तियां इन्द्रियां प्राण इत्यादि निरन्तर अपने २ काम में तत्पर रहती हैं तो मन यदि पूरा सावचेत

न रहै तो उन को भले प्रकार सहायता नहीं कर सक्ता और न अपना पूरा अधिकार उन पर रख सक्ता है ॥

मन में थोडीसी भी असावधानता हो तो इन्द्रियां दुःख देकर वा हठ करके बुरे मार्ग पर चलना चाहती हैं और यदि कुछ काल तक उन से हिसाब न समझा जावे तो ऐसी निठुर होजाती हैं कि फिर उन को बस में लाना और ठीक २ मार्ग में चलाना बहुत कठिन होजाता है इस कारण असावधानता के दोष से सदैव बचना उचित है ॥

१७—आलस्य ।

जिस काम को मनुष्य कर सक्ता हो और न करै वा धीरे २ वा बिना पराक्रम वा बिना मन लगाये करै उस को आलस्य दोष कहते हैं । अधिक निद्रा लैना वा जगने के पीछें बिछौने पर पडे रहना वा बिना काम बैठे रहना वा पुरानी बातों को सोचने में ही वर्त्तमान समय को बिताना यह सब आलस्य के लक्षण हैं ॥

आलस्य को पापों की जड़ समझना चाहिये क्योंकि इस दोष के बढ़ने से कोई कर्म भी ठीक २ नहीं हो सक्ता और मन बहुधा बुराइयों की ओर अधिक लगजाता है इसलिये इस दोष से मन को उचित उपाय करके दूर रखना चाहिये ॥

१८—आतुरता ।

जैसे आलस्य एक दोष है ऐसे ही प्रति काम में आतुरता करना भी दोष है आतुरता से किसी काम के गुण और दोषों की यथोचित जानकारी नहीं हो सक्ती उस के संपूर्ण अङ्गों पर दृष्टि नहीं डाली जासक्ती हाथ पांव फूल जाते हैं मन को अप्रसन्नता होजाती है और इन सब कारणों से वह काम पूरा और सफलता के साथ नहीं होता जिस्से निराश होकर मन निर्बल होजाता है ॥

उचित यह है कि आलस्य और आतुरता दोनों को छोड़ कर मध्य भाग में धैर्य के साथ हर काम को सूर्य्य और चन्द्रमा के चक्कर की भांति रीति अनुसार किया जावे ॥

१६—लल्लो चप्पो ।

मन में चाहे जो ध्यान वा मनसूबा हो परन्तु किसी को प्रसन्न करने के हेतु अथवा मिथ्या उपकार जतलाने के लिये मिलते ही कुछ चापलूसी कर देनी वा मीठी २ बातों से मिथ्या विश्वास दिलाने को लल्लो चप्पो कहते हैं ॥

जो जन झूठ बोलने, मिथ्या प्रशंसा करने, धोखा देने और दुःख देने को बुरा स्वभाव समझ कर उन से बचते हैं वे भी लल्लो चप्पो करने में कुछ सोच विचार नहीं करते ॥

सम्भव है कि मुख्य २ अवस्थाओं में लौकिक दिखावट की तरह पर मन उपरान्त बातें बनानी पड़ें परन्तु ऐसी अवस्थाओं को जहां तक होसके न आने देना चाहिये ॥

बहुधा मनुष्य लौकिक दिखावट को राजनीति का एक तत्व समझते हैं और कुछ एक राज्याधिकारियों के लिये ऐसा करना ठीक भी है परन्तु सब अवस्थाओं में सब मनुष्यों के साथ ऐसा बर्ताव अनुचित है ॥

राजनीति के अनुसार भी इस लल्लो चप्पो के तत्व को यदि बर्ता जावे तो बहुत सावधानी और मध्यम रीति से बर्तना चाहिये ॥

लल्लो चप्पो के दोष से मन मलीन हो जाता है और जिस मनुष्य को मीठी २ बातों के द्वारा मिथ्या विश्वास दिया जाता है वह उन बातों पर विश्वास करके दूसरे उपाय करना छोड़ देता है और हानि उठाता है इस का पाप लल्लो चप्पो करने वाले के सिर पर पड़ता है इस कारण इस दोष से संपूर्ण धार्मिक पुरुषों को बचना उचित है॥

२०—छल अर्थात् धोका।

धोका देने से जब कभी उस धोका देने का चिन्तवन मन में आता है तो लज्जा, बेचैनी, पश्चात्ताप और भय उत्पन्न होकर मन कुमला जाता है और जिस को धोका दिया जाता है उस से चार आंखें नहीं हो जासकीं और वह सदैव के लिये बैरी और बुरा चाहने वाला होजाता है और जब अवसर पाता है तब ही बदला लेने का उद्योग करता है॥

झूंठा वचन देना भी एक प्रकार का धोका देना है मुख्य करके वह वचन कि जिस को देते समय ही सोच लिया जावे कि कदापि पूरा न करेंगे॥

२१—असत्य अर्थात् झूठ बोलना।

इस बुरी प्रकृति से मन बहुत मलीन होजाता है जब मनुष्य झूठ बोलता है तो मन भीतर से धिक्कार देता है परन्तु धीरे २ वह सूक्ष्म भीतरी शब्द फिर सुनाई देना सर्वथा बन्द हो जाता है॥

झूठ बोलने वाले को सदैव चिन्ता रहती है कि उस का झूठ चौड़े न आजावे इस कारण एक झूठ को छिपाने के हेतु दूसरी अनेक झूठी बातें बनानी पड़ती हैं तथापि सहस्रों उपाय करने पर भी कभी न कभी झूठ चौड़े आही जाती है और जिस के सन्मुख

झूंठ बोला जाता है और जिस २ को उस झूठ का वृत्तान्त विदित होजाता है वे सब झूठ बोलने वाले को तुच्छ समझने लगते हैं और जीवन पर्यंत उस की बात का चाहै वह सत्य भी बोले सर्वथा विश्वास नहीं करते हैं॥

भय, चापलूसी, धोका देने और जल्दी में वचन देते समय बहुधा झूठ बोल दिया जाता है अतएव ऐसे अवसरों को होसके तो आने ही नहीं देना चाहिये वा बहुत सावधानी और धैर्य के साथ सत्य का बर्तना चाहिये नहीं तो पश्चात्ताप करना पड़ता है॥

रुस्तम की कहानी।

कहते हैं कि ईरान के बादशाह कैकाऊस के समय में रुस्तम नाम एक प्रसिद्ध जेठी मल्ल हुआ है जब रुस्तम के सोहराब नामी एक पुत्र जन्मा तो रुस्तम की स्त्री ने अपने पति को समाचार भेजे कि उस के पुत्री हुई है जब सोहराब तूरान के बादशाह अफ़रासियाब की सेना में भरती होकर कैकाऊस से लड़ने आया और रुस्तम के और उस के युद्ध ठहरा तब युद्ध करने से पहिले सोहराब ने रुस्तम से उस का नाम पूछा रुस्तम झूठ बोला और अपने आप को रुस्तम का शागिर्द अर्थात् शिष्य बतलाया जब सोहराब हारा तो जीव निकलते समय रुस्तम से कहा कि मेरा पिता तुझ से बदला लेगा, रुस्तम ने उस के बाप का नाम पूछा सोहराब ने उत्तर दिया "रुस्तम" उस समय रुस्तम की जो दशा हुई सोहराब को जो दुःख हुआ और दूसरे सम्बन्धियों इत्यादि को जो क्लेश हुआ उस का अनुमान प्रत्येक मनुष्य अपने जी में कर सक्ता है॥

यह सन्ताप युक्त आख्यान रसातल के पृष्ठ पर क्यों लिखी गई? केवल इस कारण से कि रुस्तम की स्त्री ने रुस्तम से और रुस्तम ने सोहराब से असत्य बात कही॥

मनुष्य जितना अधिक झूठ बोलने का स्वभाव डाल लेता है सत्यता जो संपूर्ण भलाइयों की जड़ है उस्से उतनी ही दूर होती जाती है इस कारण किसी व्यवस्था में झूठ बोलना उचित नहीं॥

मन को शुद्ध करने की तीसरी रीति।

इन्द्रियों के द्वारा मन को संपूर्ण सांसारिक पदार्थों का ज्ञान होता है और उसी से विचार उत्पन्न होते हैं जो वस्तु देखी न हो, सूंघी न हो, चक्खी न हो और छुई न हो, उस का अनुभव मन में कभी नहीं होता है, अतएव इन्द्रियां मन को बोध होने के द्वार समझने चाहियें इस कारण इन्द्रियों को वश में रखने और उन के ठीक २ बर्ताव से मन सदैव शुद्ध रहसक्ता है इन्द्रियों को नियम में रखने के लिये कई एक उपदेशों का संक्षेप वर्णन किया जाता है॥

१—चक्षु अर्थात् नेत्र।

नेत्र देखने की शक्ति का यंत्र है जब नेत्र के भीतरी पटलों में प्रकाश की किरणें पड़ती हैं तो पट्ठों में हलचल उत्पन्न होकर वही भेजे में पहुंचती है तब मन को उस प्रकाश का ज्ञान होता है॥

प्रकाश का प्रभाव नेत्र के पटलों से एकाएक ही नहीं जाता रहता है परन्तु कुछ काल तक बना रहता है, यही कारण है कि प्रकाश को देखने के पश्चात् यदि नेत्र मूंदे जावें तो भी कुछ काल तक वह प्रकाश दिखलाई देता रहता है, इसी कारण किसी बुरे पदार्थ को देखने से और विशेष करके बार २ देखने से उस का प्रभाव बहुधा नेत्र पर और नेत्र के द्वारा मन पर होने लगता है॥

जब किसी पदार्थ से किरणें खिंच कर नेत्र के दो सूक्ष्म अक्षि पटलों पर पहुंचती हैं तो तुरन्त उस पदार्थ का चित्र उस स्थान में बन जाता है और उस चित्र का संस्कार अर्थात् बीज मन में सदैव बना रहता है ॥

अतएव नेत्र को बुरी वस्तुओं के देखने से सदा बचाना चाहिये नेत्र देखने से नहीं अघाते हैं परन्तु मध्यम रीति से प्रत्येक वस्तु को देखने से वश में रहते हैं ॥

विषय और लालच की दृष्टि से बहुत हानि होती है उस्से संपूर्ण मनोविकार जाग पड़ते हैं और मन रूपी दुर्ग में द्रोह मचजाता है जो मनुष्य किसी को बुरी दृष्टि से देखता है वह मानसिक पाप का भागी होता है ॥

इस कारण नेत्रों को इतना वश में रखना चाहिये कि उन पर बुरे पदार्थों का प्रभाव न होने पावे और जब इच्छा हो उन पदार्थों से हटा लिया जावे वा बुरे पदार्थों की ओर जाने ही न देना चाहिये ॥

नेत्र मन की ताली है इन के द्वारा मन तक सहज ही पहुंचना होजाता है इसलिये सदैव नेत्रों को महात्माओं के दर्शन और उन के बनाये हुए पवित्र ग्रन्थों के अवलोकन करने में और दूसरे मनोहर रचनाओं के देखने में ही लगा रक्खे ॥

बुरे पदार्थों के देखने वाले विषयों के आधीन होके प्रसन्न होकर जाते हैं और शोकाकुल होकर पीछे आते हैं उन की प्रसन्नता रूपी रात्रि दुःख रूपी प्रातःकाल से बदल जाती है ॥

२—कर्ण अर्थात् कान।

प्रथम वायु कान के बाहरी विभाग में इकट्ठी होती है अर्थात् वायु की लहरें कान में आती हैं, फिर दूसरे विभाग में जाकर तीसरे विभाग में मुख्य शक्ति बन कर पट्ठों को हिलाती है जिस्से शब्द सुनाई पड़ता है। उस शब्द के द्वारा मन पहिचान लेता है कि वह कैसा है और किस का शब्द है और उस शब्द का संस्कार अर्थात् बीज़ मन में सदैव बना रहता है॥

कान विद्याध्ययन के पवित्र द्वार हैं अतएव उन को निर्लज्जता की और बुरी बातों से बचाते हुए महात्माओं के उपदेश और बुद्धिमानों की शिक्षाओं के सुन्ने में लगाना चाहिये॥

बुरी बात को चाह करके सुन्ना पाप है और ऐसा सुन्ना रोका जासक्ता है और रोका न जावे वा बुराई सुन्ने पर उस को बुरा न कहाजावे तो वह भी पाप और अधर्म समझना चाहिये॥

नीच और निर्लज्जता के शब्द कान पर पड़ना अच्छा नहीं और इच्छा करके उन को सुन्ना पाप समझना चाहिये ऐसे शब्द मन के विकारों को अग्नि के कणिकाओं की भांति गर्मी पहुंचाते हैं और तपाते रहते हैं॥

मिथ्या प्रशंसक अर्थात् खुशामदी और स्वार्थ दृष्टि मनुष्य की बातों से कानों को बचाये रखना चाहिये, काना फूंसी करने और दूसरों की गोप्य बातों को सुन्ने से भी बचना उचित है॥

जो मनुष्य बुरी बातों को मन लगा कर सुनते हैं, वे वैसा ही बोलने भी लगते हैं। जिन का मन दृढ़ नहीं है, उन को अवश्य ही बुरी बातों के सुन्ने से बचना चाहिये, क्योंकि बुरे शब्द निर्बल मन पर ही अधिक प्रभाव डालते हैं और अच्छे मन वाले बुरे शब्दों को घृणा और अप्रीति से सुनते हैं और तुरन्त ही भूल जाते हैं॥

यदि बुरे शब्दों को सुन्ने वाले न हों, तो बोलने वाले भी नहीं रह सक्ते जैसे जीभ को कड़वी वस्तुओं के खाने का स्वभाव होजाता है, वैसे ही कानों को भी बुरे शब्दों के सुन्ने का चसका पड़जाता है, जिस का यत्न यह है, कि सदैव बुरे शब्द बोलने वालों के समीप बैठने से बचने का उद्योग किया जावे॥

दूसरों की बुराई सुन कर कदापि प्रसन्न न होना चाहिये और कहने वाला चाहे कितना ही भरोसे वाला हो, फिर भी ऐसी बातें सन्देह और शङ्का से ही सुन्ना उचित है और निन्दक को यथाशक्ति मुंह न लगाना चाहिये॥

३—जिह्वा अर्थात् जीभ।

इस इन्द्री से दो काम निकलते हैं एक चखने अर्थात् स्वाद लेने का और दूसरा बात चीत करने का॥

यह बात जान्ने को जिह्वा बहुधा सहायता देती है, कि कौनसी वस्तु खाने के योग्य है। यह थोड़ीसी सहायता नाक और नेत्रों से भी मिलती है, और इसी कारण से वे इन्द्रियां भी जीभ के पास ही रक्खी गई हैं। बारम्बार तीक्ष्ण और कटु वस्तुओं के वर्ताव से चखने की शक्ति निर्बल और नष्ट होजाती है॥

बोलने की शक्ति के लिये जीभ की जितनी प्रशंसा की जावे थोड़ी है इस चार अंगुल की जीभ के द्वारा पढ़ने पढ़ाने का काम चल

रहा है, इसी के द्वारा शिक्षा और उपदेश रूपी झरना बह रहा है, यही सभा और उत्सव का स्वरूप है और इसी के द्वारा धर्म सम्बन्धी सभाओं में पवित्र भजनों और सत्य उपदेश रूपी अमृत की वर्षा हुआ करती है ॥

यही जीभ जब इस का अनुचित बर्ताव किया जावै, तो बहुत भयानक शस्त्र बनजाती है बड़े २ युद्ध और संग्राम, झगड़े और घर की लड़ाइयां, जीभ की अणी के हिलने से होजाती हैं। यही छोटीसी जीभ असत्य और कपट प्रबन्ध का शस्त्र निन्दित बचन बोलने का आयुध, प्रपञ्च करने का कारण और मूर्खता प्रगट करने का हेतु होजाती है ॥

जैसे अग्नि की छोटीसी कणिका लकड़ी के बड़े ढेर को जला देती है, इसी भांति शरीर का एक तुच्छ भाग जीभ अनेक प्रकार के फन्द मचा देती है ॥

अतएव जीभ को सदैव बश में रखने का उपाय करते रहना चाहिये ॥

अयोग्य और बिना अवसर का ठट्ठा वा निर्लज्जता की बातें करते रहने से। जिह्वा भी अशुद्ध होजाती है और मन भी मलीन होजाता है ॥

जीभ को न तो कांटों की झाड़ी के अनुसार होना चाहिये, कि जो कोई समीप होकर निकले उसी के वस्त्र फटजावें, और न सूखे वृक्ष की भांति होना चाहिये, कि जिस्से किसी को कुछ लाभ न पहुंच सके, परन्तु मनोहर और हरे भरे, मीठे फल युक्त सुगन्धी छाया वाले वृक्ष की भांति होना उचित है, जिस्से सब को कुछ न कुछ लाभ अवश्य मिलै ॥

सुनी हुई बात को अपनी देखी हुई बात के भांति दूसरों से न कहना चाहिये, क्योंकि सम्भव है, कि जिस्से तुम ने उस बात को सुना वा जिसने किसी दूसरे से उस को सुना, उन में से किसी न किसी ने अपने कुछ प्रयोजन के हेतु कुछ झूठ की मिलावट करदी हो ॥

जिस के दो अर्थ लगसकें, अथवा निरर्थक बातें करने का स्वभाव न डालना चाहिये जहां सत्य बोलने का अवसर न हो वहां चुपचाप बैठे रहना उचित है ॥

शत्रु हो वा मित्र उस के निमित्त वा उस्से दूसरे की प्राइवेट बातों के निमित्त बात चीत करना उचित नहीं है, इसी भांति जहां तक होसके किसी का भेद भी चौडे न करना चाहिये ॥

आदर और अनादर दोनों जीभ में हैं, कृपाण का घाव भरजाता है परन्तु जीभ का घाव नहीं भरता, इस कारण पहले अच्छी तरह बात को मन में तोलो, फिर मुख से बोलो ॥

४—नासिका अर्थात् नाक ।

यही इन्द्री फूलों की सुगन्ध और मल की दुर्गन्ध का प्रभाव पहुंचा कर, मन को प्रफुल्लित वा मलीन करती है । बहुत काल तक अति तीक्ष्ण सुगन्ध वा दुर्गन्ध के सूंघने से यह इन्द्री निर्बल होजाती है, जैसे गन्धियों और भङ्गियों को अपने पास की वस्तु की सुगन्ध वा दुर्गन्ध आनी बन्द होजाती है, जिस के हेतु अज्ञानता में बहुत काल तक दुर्गन्ध का प्रभाव नाक में पहुंचने से मन मलीन होजाता है। अतएव अधिक तीक्ष्ण सुगन्ध वा दुर्गन्ध को सूंघने से और बहुधा बारम्बार और बहुत काल तक सूंघने वा सांस लेने से सदैव बचना उचित है, इसी प्रकार दुर्गन्ध वाले खाने पीने के पदार्थों से भी बचना योग्य है ॥

५—त्वचा ।

त्वचा अर्थात् स्पर्श इन्द्री संपूर्ण शरीर की रक्षा के लिये है, इसी कारण इस का एक स्थान नहीं है। अतएव संपूर्ण शरीर का चर्म इस का स्थान है परन्तु हाथों में यह शक्ति दूसरे स्थानों से कुछ एक अधिक दीख पड़ती है॥

जिस प्रकार यह शक्ति संपूर्ण शरीर से सम्बन्ध रखती है, वैसे ही इस का बल भी दूसरी इन्द्रियों के बल से अधिक प्रकार का है, जैसे कड़ापन वा कोमलता को जाचना, गर्मी वा सर्दी का पहिचानना, समता वा विषमता का ज्ञान होना इत्यादि इस इन्द्री के द्वारा होता है॥

शरीर के जिस भाग को बहुत काल तक अधिक सर्दी वा गर्मी में वा बिना काम लिये वा मैला रक्खा जाता है, उस भाग से इस शक्ति का बल कम होने लगता है और उस बल के अभाव से मन, जो संपूर्ण शरीर की रक्षा और पालना करता रहता है, उस भाग की रक्षा वा पालना बहुत कम वा कुछ भी नहीं कर सक्ता है॥

जब कभी इन्द्रियां, अच्छे मार्ग को छोड़ कर, कुमार्ग पर चलें वा चलने के लिये आग्रह करें तो क्रोध दृष्टि वा ताड़ना करने के बदले बहुत धीरज और गम्भीरता के साथ उन को रोकने का उपाय करना उचित है॥

इन्द्रियों को वश में रखने के लिये, यह भी आवश्यक है, कि पेट नियम में रक्खा जावे, खाने पीने में अमर्यादा न करनी चाहिये, अच्छे भोजन का लालच करना वा उस को असन्तोष वा असम्भावना से खाना कदापि उचित नहीं॥

जैसे अधिक खाने पीने से शारीरिक आरोग्यता बिगड़ जाती है, उसी प्रकार मन और इन्द्रियां भी शिथिल होजाती हैं और उन को बुरी इच्छायें और मनोविकारादि घेरे रहते हैं॥

यदि शरीर को आवश्यकता से अधिक खाने को दिया जावे, तो अनुभव द्वारा निश्चय होचुका है, कि बहुत से रोगादिक अधिक भोजन से ही होते हैं और यदि न्यून भोजन दिया जावे तो मानों भजन के घोड़े को निरर्थक बनाना है ॥

बहुतसे मनुष्य बिना सोचे समझे अपने विचार और कामों से यह स्थापित करते हैं, कि उन को समझ के अनुसार तन और मन से जैसी इच्छा हो काम लिया जासक्ता है और जब सृष्टि नियमों से विरुद्ध चलने के कारण उन को कुछ दुःख होता है तो उस को प्रारब्ध बतला देते हैं और यह नहीं जानते, कि निज की अमर्यादा, असावधानी और भूल से वह दुःख उत्पन्न हुआ है, जिस का बुरा फल जो कुछ उन पर उन की सन्तति पर वा दूसरे मनुष्यों पर होगा, उस के स्वयं अपराधी और उत्तर दाता हैं ॥

कोई विचार और काम मनुष्य का ऐसा नहीं होता है, जिस्से असंख्य फल न निकलते हों और असंख्य मनुष्यों पर उस का प्रभाव न पड़ता हो ॥

विचार से देखा जावे, तो संपूर्ण मनुष्य और पशु बरन संपूर्ण चराचर एक ही माला के मणिये हैं। वे संपूर्ण एक दूसरे के आश्रय हैं, इस कारण प्रत्येक मनुष्य अपने अच्छे और बुरे विचार और कर्मों से संपूर्ण संसार की भलाई वा बुराई की संख्या कुछ अधिक वा न्यून कर देता है ॥

पूर्व काल के मनुष्यों के कर्तव्य का प्रभाव वर्त्तमान समय के पुरुषों पर पड़ रहा है और वर्त्तमान समय के पुरुषों के कर्तव्य का फल आने वाली सन्तति पर अवश्य ही पड़ेगा, मानो व्यतीत सन्ततियां एक दूसरे के सहारे खड़ी हुई हैं; और वर्त्तमान अपने संस्कार और कर्मों के चक्कर को उन के शुभ वा अशुभ परिणामों के

साथ आगामी सन्तति को सौंपेंगे, इस सर्व सम्बन्ध को पूरा सोच समझ कर, प्रत्येक मनुष्य को अपने प्रत्युत्तर का पूरा विचार रखना चाहिये और अवश्य मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये॥

मन की उन्नति की रीतियां।

जैसे शारीरिक आरोग्यता को बनी रखने और रोगादिक से बचने के लिये, शारीरिक धर्म का मुख्य साधन व्यायाम है, वैसे ही मन की शक्तियों को बढ़ाने और उस को प्रसन्न रखने का कारण और मानसिक धर्म का मुख्य साधन ब्रह्मचर्य्य है॥

बहुतसे मनुष्य बहुधा इस भरतखण्ड के साधु इत्यादि मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में कर लेना ही उचित समझते हैं और जब ऐसा करने में उन को किसी प्रकार थोड़ासा आनन्द आता है तो उसी आनन्द में मगन होजाते हैं॥

वास्तव में मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में करके मन को असंख्य शक्तियों को बढ़ाना चाहिये और वह केवल ब्रह्मचर्य्य से होसक्ता है, इसी लिये भरतखण्ड के ऋषि लोग मन को शुद्ध और इन्द्रियों को वश में इसी कारण करते थे कि ब्रह्मचर्य्य सेवन करें क्योंकि ब्रह्मचर्य्य जैसा महान् कठिन साधन शुद्ध चित्त और इन्द्रियों को वश में किये बिना प्रारम्भ नहीं किया जासक्ता॥

ब्रह्मचर्य्य सेवन करने के समय बहुत शुद्ध स्थान, शुद्ध भूमि, और शुद्ध शय्या होनी चाहिये, थोड़ीसी अशुद्धता से भी ब्रह्मचर्य्य तुरन्त खण्डन होजाता है॥

मन वचन कर्म से बुरे विषयों की इच्छा न करते हुए, विद्या-ध्ययन करने को ब्रह्मचर्य्य कहते हैं, कि जिस के आठ अङ्ग अर्थात् विभाग कहे गये हैं॥

१—कुसङ्गति, २—बुरी बार्त्तालाप, ३—बुरे विचार, ४—बुरी पुस्तकों का पढ़ना वा सुना, ५—बुरे राग का गाना वा सुना, ६—एकान्त में अथवा बिपरीति समय में पुरुषों का स्त्रियों से और स्त्रियों का पुरुषों से मिलना, ७—उन के शरीर के अवयवों को ध्यान लगा के बुरी दृष्टि से देखना, ८—वीर्य्य का किसी अनुचित रीति से नाश करना, इन आठों बातों से बचते हुए भले प्रकार चित्त देकर बिद्याध्ययन करने को अखण्ड ब्रह्मचर्य्य कहते हैं॥

प्रश्न—कौन कौन्सी विद्या और किस ढङ्ग से पढ़ना चाहिये?

उत्तर—प्रथम कुछ अवस्था तक जनरल एज्युकेशन अर्थात् सामान्य बिद्या पढ़ना चाहिये, उस के साथ ही शारीरिक आरोग्यता और धर्म सम्बन्धी नियमों को जाना और उन पर चलना चाहिये इस के पश्चात् जिस व्यौपार की इच्छा और योग्यता हो उस के सम्बन्धी बिद्या सीखना चाहिये। व्यौपार सम्बन्धी पूरा वर्णन गृहस्थ धर्म में किया जावेगा॥

भूमिया (भूपति) अर्थात् ज़मीनदार हो तो कृषि बिद्या सीखे, व्यौपार करने का उत्साह हो, तो हिसाब भूगोल इत्यादि जिस्से सब भूमण्डल की उत्पत्ति और सकल पदार्थों का भाव ताव जान पड़े सीखने का उपाय करे। धर्म की वाञ्छा हो तो अनेक प्रकार के धर्मों के तत्व जाने का उद्योग करे, धर्म सम्बन्धी जितनी शङ्कायें हों उन को महात्माओं के सत्सङ्ग से दूर करे, और फिर मन की शुद्धि और विचार शक्ति की वृद्धि के लिये योग बिद्या प्राप्त करे। यदि शूर बीरता की इच्छा हो तो धनुष बिद्या जिस का मुख्य अङ्ग अस्त्र बिद्या है सीखे, जिस के द्वारा अपनी और अपने देश की रक्षा कर सके॥

प्रश्न—ऊपर लिखी हुई बिद्यायें किस बोली में सीखनी चाहियें ?

उत्तर—जिस बोली में भले प्रकार आसकें, यदि मातृ भाषा में अर्थात् उस बोली में, जिस को मनुष्य जन्मते ही बोलना सीखता है, यह बिद्यायें सीखी जावेंगी, तो थोड़े समय में और सुगमता से संपूर्ण बिद्यायें सीख लेना सम्भव है ॥

जो मनुष्य मातृ भाषा के सिवाय राज्य भाषा इत्यादि किसी दूसरी भाषा के द्वारा कोई बिद्या सीखे उस को उचित है, कि बिद्याध्ययन की पश्चात्, जो कुछ दूसरी भाषाओं के द्वारा सीखा हो, उस को सर्व साधारण के हितार्थ अपनी मातृ भाषा में उल्था करने का उद्योग करै, जिस्से दूसरी भाषा सीखने में जो कष्ट और परिश्रम उठाना पड़ा उस का लाभ उन दूसरी भाषाओं के न जान्ने वालों को भी पहुंच जावे ॥

भाग्यवान् हैं वे देश और उन के रहने वाले जिन की मातृ भाषा राज्य भाषा, धर्म और नीति बिद्या की भाषा एक ही हैं ! ऐसे ही लोग उन्नति के खेत में सब से आगे पांव बढ़ा सक्ते हैं ॥

कहते हैं कि भरतखण्ड के कई एक ऋषियों भृगु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, काश्यप, पुलस्त्य, अगस्त्य, गौतम इत्यादि ने बहुत काल तक सोच विचार करने के पश्चात् एकाग्र होकर यह निश्चय किया था, कि सब धर्मों में उत्तम धर्म ब्रह्मचर्य्य है, क्योंकि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य धारण करता है, उस को पूर्ण आयु प्राप्त होती है, वृद्धावस्था शीघ्र नहीं आती, तेज बढ़ता है । शूर बीरता, पराक्रम, और धैर्य इत्यादि अच्छे गुण प्राप्त होते हैं । मन सदैव मगन रहता है । इस हेतु ऊपर लिखे ऋषियों ने ब्रह्मचर्य्य को ही स्वीकार किया और उस ही का उपदेश किया, उस उपदेश के कारण प्राचीन समय में यह एक सामान्य व्यवहार होगया था, कि लड़के २५—३६ और ४८ वर्ष

तक का और लड़कियां १६—१८ और २२ वर्ष का ब्रह्मचर्य्य सेवन करने का उद्योग किया करते थे, जिस का नाम कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम ब्रह्मचर्य्य कहा जाता था इस ब्रह्मचर्य्य सेवन के कारण उन का शरीर आरोग्य, इन्द्रियां बलवान् और मन निर्मल रहता था॥

उस समय में यह भी व्यवहार था, कि सात वर्ष की अवस्था से लड़के अपने गुरू के स्थान की पाठशाला में, और लड़कियां कन्या शाला में नगर से पृथक् और दूरी पर सांसारिक व्यवहारों से अलग रहते हुए, तन मन से विद्याध्ययन किया करते थे॥

कन्या शाला में कोई पुरुष वा लड़का और दुःशील वा संदिग्ध आचरण वाली स्त्री नहीं जासकी थी और इस रीति से लड़कियों का ध्यान विषयों की ओर किसी प्रकार नहीं जासक्ता था॥

लडकों की संभाल का यह प्रबन्ध था, कि गुरू की आज्ञा बिना वा अकेला कोई लड़का कहीं नहीं जासक्ता था, समय २ उन के ब्रह्मचर्य्य की परीक्षा की जाती थी और यदि बिना किसी मुख्य कारण, किसी प्रकार की न्यूनता पाई जाती, तो उचित ताड़ना की जाती थी॥

पूर्णमासी और अमावस्या को सदैव संपूर्ण ब्रह्मचारियों को एक स्थान पर एकत्र करके ब्रह्मचर्य्य के अनुसार अपने २ पद पर बिठलाया जाता था और वीर्य की रक्षा के आनन्द और नाश के दुःख हृदयग्राही शब्दों में बतलाये जाते थे। उन को नाना प्रकार से यह उपदेश किया जाता था, कि शरीर में जितना अधिक और पुष्ट वीर्य रहता है उतना ही शरीर में बल आरोग्यता और मन में शूर वीरता इत्यादि गुण उत्पन्न होकर, बहुत प्रसन्नता प्राप्त होती रहती है॥

जिस के शरीर में वीर्य अपनी असली अवस्था में नहीं रहता है, वह नपुंसक अर्थात् नामर्द और महाकुकर्म्मी होजाता है, उस को प्रमेह रोग लग कर दुर्बल, निस्तेज और निरुत्साही कर देता है, वह धीरज, साहस, बल, पराक्रम, आदि गुणों से रहित होकर, सदैव अधम और पश्चात्ताप में ग्रस्त रहता है और बहुधा शीघ्र ही नष्ट होजाता है, जो कोई बचपन में विद्याध्ययन करने वा वीर्य्य की रक्षा में कमी करता है, वह जन्म भर हाथ मलता रहता है ॥

कहते हैं, कि लङ्का के राजा रावण का पुत्र मेघनाथ नामी बड़ा बली था, उस के लिये ऐसा वर्णन करते हैं कि उस को १२ वर्ष ब्रह्मचर्य्य साधन करने वाला पुरुष ही हरा सक्ता था । जब महाराजा रामचन्द्रजी ने लङ्का पर चढ़ाई की, तो मेघनाथ ने उन की सेना को बहुत हानि पहुंचाई, परन्तु अन्त में लक्ष्मणजी ने उस को हराया, कि जिन्होंने बनबास में १४ वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन किया था ॥

सब मनुष्य जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं, लक्ष्मणजी की भांति बड़े बलवान् शत्रुओं को जीत सक्ते हैं ॥

प्रश्न—वे मनुष्य, जो ब्रह्मचर्य्य की महिमा न जानते हुए, वीर्य को नष्ट करके और विद्या के न प्राप्त होने से, जन्म के यथार्थ आनन्द को नहीं पासक्ते हैं, वे भी अपनी वर्त्तमान दुर्दशा में ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सक्ते हैं वा नहीं ?

उत्तर—कर सक्ते हैं, परन्तु जितने अधिक काल तक और जितनी अधिक अमर्यादा से ब्रह्मचर्य्य के नियमों को तोड़ा होगा उतना ही अधिक परिश्रम और उतने ही अधिक समय में ब्रह्मचर्य्य सेवन करने की शक्ति प्राप्त होनी सम्भव है । ऐसे पुरुषों को उचित है, कि पहिले यह नियम करें, कि आठ दिन तक मन वचन कर्म से
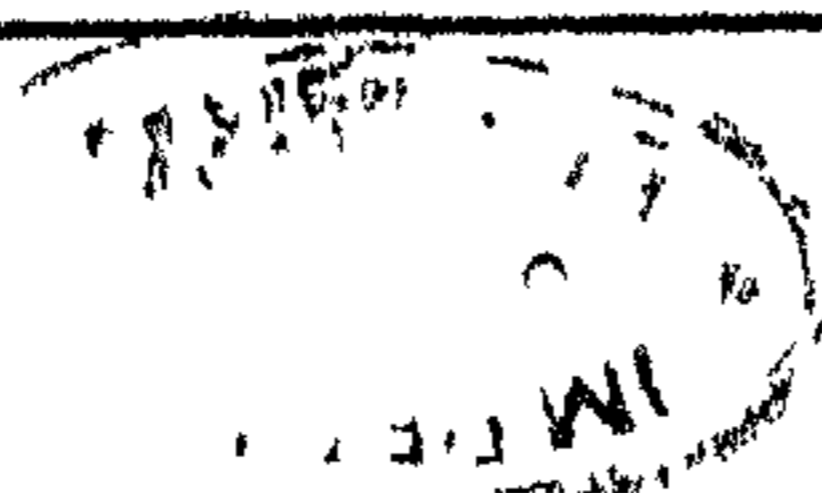
ब्रह्मचर्य्य सेवन किया जावे; फिर १५ दिन तक; उस के पीछे महीनों और वर्षों तक इस नियम को बढ़ाते चले जावें। जिस प्रकार समय अधिक बढ़ाया जावेगा, उसी प्रकार अधिक सुगमता होती चली जावेगी, तो भी जब कोई मुख्य विघ्न पड़जावे, तो किसी ब्रह्मचर्य्य सेवन किये हुए महात्मा से उपाय पूछना चाहिये॥

प्रश्न—भरतखण्ड के ऋषियों के प्राचीन समय की भांति सर्व देश में ब्रह्मचर्य्य पूर्ण रीति से किस प्रकार फैल सक्ता है?

उत्तर—जब कई मनुष्य ब्रह्मचर्य्य सेवन करने वाले उत्पन्न हों और दूसरों के लिये नमूना बन कर रहें या वे मनुष्य जिन के सिर पर सामाजिक उन्नति का बोझा है और जिन का वर्णन सामाजिक धर्म में पूर्णता से किया गया है, ब्रह्मचर्य्य सेवन के व्यवहारिक नियम सोच कर निकालें और उन को संपूर्ण देश में फैलावें॥

सब प्रकार की उन्नति संसार में धीरे २ हुआ करती है, ऋषियों ने अनन्त काल तक पीढ़ी दर पीढ़ी ब्रह्मचर्य्य सेवन करने में उन्नति करते हुए २५—३६ और ४८ वर्ष के तीन नाप नियत किये थे। इस समय में भरतखण्ड में बहुत काल से धर्म के बिगड़ने विद्या के कम होने और बाल्यावस्था में बिवाह इत्यादि के होने के कारण ब्रह्मचर्य्य का नियम टूट गया है, अतएव उस को पीछा स्थापित करने के लिये शनैः २ वृद्धि करने से सफलता प्राप्त हो सक्ती है॥

प्रारम्भ में १५—१८ और २० वर्ष की तीन अवस्थायें ब्रह्मचर्य्य सेवन की रक्खी जावें पाठशालाओं में, अवश्य करके जाति पाठ-शालाओं में, कभी २ ब्रह्मचर्य्य सेवन के लाभ और उल्लंघन की

ज्ञानियों का उपदेश हुआ करे और महीने में एक बार लड़कों के ब्रह्मचर्य्य की परीक्षा हुआ करे और उत्तम उत्तम विद्यार्थियों का सन्मान और निकृष्ट वा शङ्का वाले विद्यार्थियों की उचित ताड़ना की जावे॥

प्रश्न—परीक्षा किस प्रकार होनी चाहिये ?

उत्तर—विद्या की परीक्षा तो प्रचलित रीति के अनुसार ही उचित अधिकता वा न्यूनता से की जावे, और वीर्य्य की परीक्षा के लिये, ब्रह्मचर्य्य सेवन किये हुए बुद्धिमान् मनुष्य संभाल के लिये छांटे जावें। वे महीने में एक बार संपूर्ण ब्रह्मचारियों की सूरत को ध्यान से देखें, महीने में एक बार वे तोले जावें, और फीते से उन की छाती नापी जावे॥

भरतखण्ड के ऋषि वीर्य्य रक्षा की परीक्षा, कच्चे सूत के धागे के द्वारा किया करते थे, जिस को बोल चाल में जनेऊ कहते हैं और जो इस समय तक ब्रह्मचारियों के धर्म का एक चिन्ह अर्थात् लक्षण समझा जाता है, परन्तु उससे यथोचित गुण लेने के विरुद्ध इस समय एक निरर्थक वस्तु समझ कर केवल कुंजियां इत्यादि बांध लेने का काम लिया जाता है। ऋषि लोग यज्ञोपवीत संस्कार के समय ब्रह्मचारी से कहा करते थे कि यह जनेऊ तुझ को बुद्धि, बल, पराक्रम, और समस्त सांसारिक सुख देने का कारण हो और इस समय भी जनेऊ धारण करने के समय एक वेद मंत्र पढ़ा जाता है जिस का अर्थ वही है जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ। जनेऊ के धागे से दोनों छाती नाप कर ललाट से गुद्दी तक मस्तक को नापा जाता था यह परीक्षा पुराने पण्डित अब भी कहीं २ किया करते हैं॥

जो विद्यार्थी वर्ष भर तक सब महीनों की परीक्षा में ठीक उतरते रहें उन को इस वीर्य रक्षा के बदले में उत्तम पारितोषिक, धार्मिक पुस्तक और वेतन के रूप में, देना उचित है और जो विद्यार्थी साल भर तक सब परीक्षाओं में संदिग्ध वा अयोग्य ठहरें उन को ऐसी ताड़ना दी जावे जिस्से दूसरों को भी उपदेश हो॥

जब १५—१८ और २० वर्ष के ब्रह्मचर्य्य के नाप में लड़कों की संख्या अधिक होजावे तो नाप को बढ़ाते जाना चाहिये जैसे २ नाप बढ़ता जावैगा वैसे ही सच्चे धैर्य्य वाले और उच्च पद और प्रताप वाले मनुष्यों की संख्या बढ़ती जावैगी॥

लड़कों के ब्रह्मचर्य्य का इस रीति से प्रबन्ध करते हुए लड़कियों के लिये भी पहिले १२—१४ और १६ वर्ष का नाप नियत करना चाहिये॥

उन के लिये ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि बुरे चाल ढाल वाली स्त्रियों की सङ्गति और बुरी बात चीत और बुरे रागों के सुन्ने से सदैव बची रहैं और धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के पढने और गृहस्थ के प्रबन्ध में उन का चित्त लगा रहै और धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में ही उन की परीक्षा लेकर उचित उत्साह दिलाया जावै॥

जब कभी लड़कों के ब्रह्मचर्य्य का नाप बढ़ाया जावै तभी लड़कियों के ब्रह्मचर्य्य का नाप भी बढ़ाना उचित है और बिवाह के समय लड़के और लड़कियों के गुण, कर्म और स्वभाव का निर्णय करते हुए उन के ब्रह्मचर्य्य सेवन का निर्णय होना भी आवश्यक है और जहां तक होसके जिस पद का ब्रह्मचर्य्य सेवन किया हुआ लड़का हो उसी पद के ब्रह्मचर्य्य सेवन की हुई कन्या से उस का बिवाह होना उचित है॥

इस प्रकार संपूर्ण देश में ऋषियों के समय की भांति ब्रह्मचर्य्य का व्यवहार प्रचलित होना सम्भव है ब्रह्मचर्य्य के व्यवहार को फैलाना और वृद्धि करना सच्चा धर्म प्रवृत्ति की नीव डालना है जब ब्रह्मचर्य्य सेवन किये हुए लड़के लड़कियों के आरोग्य और तेजस्वी सन्तान उत्पन्न होंगे तो शेष संपूर्ण सुधार वे अपने आप कर लेवेंगे॥

जिस वंश में लगातार कई पीढ़ियों तक ब्रह्मचर्य्य की रीति चलती रहेगी उस वंश में गार्गी और लीलावती जैसी विद्वान् स्त्रियां, और भीम वा अर्जुन जैसे योद्धा लडके, शुक्र और चाणिक्य जैसे बुद्धिमान् और व्यास और शुकदेव जैसे ऋषि अवश्य उत्पन्न होने लगेंगे ॥

जैसें शारीरिक धर्म पालन करने से शरीर और उस के वेग अपने आधीन होने सम्भव हैं, वैसे ही मानसिक धर्म भले प्रकार पालन करने से मन और इन्द्रियां बश में होजाती हैं सत्सङ्ग और वीर्य्य की रक्षा से मन और इन्द्रियां निर्दोष और पुष्ट होजाती हैं और विद्या के पढ़ने से मन इतनी उन्नति कर लेता है कि बिना परिश्रम किये बिद्या प्राप्त होने लगती है, प्रयोजन यह है कि ब्रह्मचारी का अनुभव इतना खुल जाता है कि जिस पदार्थ पर वह दृष्टि डालता है और जिस बात के सोचने में मन लगाता है उस की अवस्था को पूरे तौर पर निरूपण कर लेता है ॥

शारीरिक और मानसिक धर्मों को पालन करते हुए ब्रह्मचारी को आत्मिक धर्म की ओर भी ध्यान देना चाहिये जिस का वर्णन आगामी अध्याय आत्मिक धर्म में किया जावेगा ॥
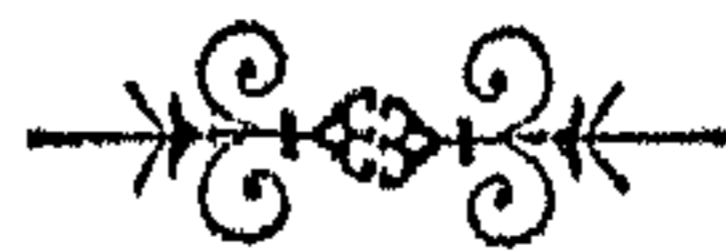
पहिला भाग।

तीसरा अध्याय।

आत्मिक धर्म।

आत्मिक धर्म की व्याख्या।

शारीरिक और मानसिक धर्मों का यथोचित पालन करने से, अर्थात् शारीरिक धर्म के मुख्य अङ्ग, व्यायाम, और मानसिक धर्म के मुख्य अङ्ग, ब्रह्मचर्य्य सेवन करने से जब विद्याध्ययन में पूर्ण परिश्रम किया जाता है, तो शारीरिक और मानसिक बल के बढ़ जाने से, विचार, न्याय और वाद विवाद की बहुतसी सूक्ष्म शक्तियां प्रगट होने लगती हैं, जिन के द्वारा अनुभव होता है, कि इन सब शक्तियों अर्थात् शारीरिक इन्द्रियों, मन और बुद्धि इत्यादि से परे, एक शक्ति है, जो इन समस्त शक्तियों को सहारा दे रही है, जिस को जीवात्मा कहते हैं॥

ऊपर वर्णन की हुई शक्तियों का जीवात्मा से जितना गहरा सम्बन्ध रहता है, उतनी ही वे शक्तियां अधिक बलवान् और सूक्ष्म होती हैं इस सम्बन्ध को उत्पन्न करने और बढ़ाने को आत्मिक धर्म समझना चाहिये, जिस का संक्षेप वर्णन यहां किया जाता है और पूर्ण वर्णन पारलौकिक धर्म में किया जावेगा॥

जीवात्मा की व्याख्या।

मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार के सम्बन्ध से, एक सूक्ष्म चैतन्य, शक्ति शरीर में विद्यमान है, उसी को जीवात्मा कहते हैं, प्रकृति के

सब से सूक्ष्म अङ्ग को, जब उस में संकल्प होता है, तब मन कहते हैं ; जब चिन्तवन होता है, चित्त बोलते हैं, जब विवेक उत्पन्न होता है, तब बुद्धि ; और ममता उत्पन्न होने पर अहङ्कार कहा जाता है। इन्हीं चारों के समूह का नाम अन्तःकरण है, जिस का यह अन्तः करण है, उस को जीवात्मा कहते हैं ॥

एक महात्मा ने जीवात्मा की व्याख्या ऐसे की है, कि जिस में इच्छा, राग, द्वेष, पुरुषार्थ, सुख और दुःख हो और एक दूसरे महात्मा ने जीवात्मा की व्याख्या निम्नलिखितानुसार वर्णन की है, कि काम, संकल्प, विकल्प, विचक्षणता, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, ह्री, धी, भी इत्यादि गुणों वाली वस्तु का नाम जीवात्मा है ॥

अच्छे गुण सीखने की इच्छा को संकल्प और बुरी प्रकृतियों के त्याग करने की इच्छा को विकल्प कहते हैं ॥

सोच २ कर अच्छे कामों को ही करना और बुरों से बचना, इस का नाम काम है जो काम करना हो उस के समस्त पक्षों को सोच कर, भले प्रकार निश्चय कर लेना, कि उस में किसी प्रकार का दोष तो नहीं है, इस को विचक्षणता कहते हैं किसी काम को पूर्ण विश्वास से करने को श्रद्धा और उससे विरुद्ध अश्रद्धा कहते हैं अपने कर्मों के करने में सुख हो वा दुःख हानि हो वा लाभ उस के सहन करने की शक्ति को धृति कहते हैं ; और उस के विरुद्ध अधृति अपनी प्रकृति के वश होकर किसी बुरे काम के करते समय, वा अच्छे काम से हटते समय, यदि मन को धिक्कार दिया जावे और लज्जित किया जावे उस को ह्री कहते हैं, भले कामों के तुरन्त मानने और उन के करने की शक्ति को धी कहते हैं, सुकर्मों को अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ के करना और बुरों से सदैव डरते रहना इस को भी कहते हैं ॥

बुद्धि अर्थात् समझ को जीवात्मा का मुख्य मंत्री समझना चाहिये, क्योंकि जीवात्मा से जो २ आज्ञायें मिलती हैं, वे बुद्धि के द्वारा ही निश्चय होती हैं, जैसे २ बुद्धि का सम्बन्ध जीवात्मा से अधिक होता जाता है, वैसे ही उस को जीवात्मा की ओर से आज्ञायें अधिक मिलने लगती हैं; और जितनी श्रद्धा से उन आज्ञाओं का [illegible] किया जाता है, उतनी ही प्रत्यक्ष रूप से, वे आज्ञायें मिलती हैं; और बुद्धि सात्विक अर्थात् सूक्ष्म होती जाती है, उन सूक्ष्म विभागों को भरतखण्ड के ऋषियों ने ऋतम्भरा, प्रज्ञा, आदि नामों से कहा है। उन पदों के प्राप्त होने ही से, उन्होंने धर्म के बड़े २ सच्चे तत्वों को ज्ञात किया था, परन्तु जब बुद्धि जीवात्मा की आज्ञाओं का [illegible] नहीं करती है, तब आज्ञा मिलना बन्द होजाता है, और वह बहुत निर्बल होजाती है। इसी प्रकार मन, जब बुद्धि के साथ रहता है, तब अधिक प्रकाशवान् और बलवान् होता है; और जब इन्द्रियों के साथ मिलता है, तब विकारों में फंस कर निर्बल होजाता है॥

आत्मिक धर्मोन्नति की रीतें।

साधारण रीति यह है, कि धन, विद्या, बुद्धि, बल और कुल इत्यादि संपूर्ण अभिमानों का त्याग करना चाहिये, फिर परिश्रम के साथ परीक्षा करके, किसी आत्मविद्या के जान्ने वाले महात्मा को गुरु करके, अत्यन्त विचार और रुचि के साथ एकाग्र चित्त होकर। वह विद्या पढ़नी चाहिये; और उस विद्या को इल्म उलयक़ीन हक़ुलयक़ीन और एनुलयक़ीन के पदों तक पहुंचाना चाहिये अर्थात् पहिले यह जान्ना चाहिये, कि जीवात्मा शरीर से पृथक् है जाग्रत् अवस्था में जीवात्मा आंख, कान इत्यादि इन्द्रियों के द्वारा सारा व्यवहार करता है; स्वप्नावस्था में इन्द्रियां शान्त होजाती हैं, उस समय मन के साथ सम्बन्ध रहता है; सुषुप्ति अवस्था में अर्थात् गहरी

नींद में, जब स्वप्न भी नहीं आता, उस अवस्था में भी जीवात्मा, उस अवस्था को जानता है, क्योंकि उस निद्रा से जागने पर, यह कहा जाता है, कि बडी गहरी नींद आई। यद्यपि उस अवस्था की कुछ सुध नहीं रहती, परन्तु इसी कारण कहा गया है, कि आत्मा ज्ञात और अज्ञात दोनों विषयों को जाने वाला है। तुरीय अवस्था में जीव शरीर की समस्त खोलियों से पृथक् होजाता है, इसी कारण उस में बहुत आनन्द जान पड़ता है॥

इसी हेतु आत्मा को सत् चित् आनन्द रूप कहा गया है सत् इस कारण, कि वह समस्त अवस्थाओं में विद्यमान रहता है, चित् इस कारण, कि वह संपूर्ण अवस्थाओं को जानता है, और आनन्द इस कारण, कि वह हर्ष शोक रहित और निरन्तर सुख का भण्डार है। इन सब बातों के जाने को इल्मुलयक़ीन कहते हैं, और यह गुरु के द्वारा मिलना सम्भव है, उस विद्या पर बुद्धि द्वारा विश्वास करने को, हक़ुलयक़ीन कहते हैं, और ज्ञान चक्षु के द्वारा अपने अन्तर प्रत्यक्ष करने को ऐनुलयक़ीन कहते हैं और यह पद प्राप्त होने पर, जैसे कमल का पुष्प जल में रहने पर भी निर्लेप ही रहता है, और जीभ चिकनाई खाने पर भी चिकनी नहीं होती, वैसे ही मनुष्य संसार में रहने पर भी, सांसारिक दुःखों के प्रभाव से दूर रहता है, और संसार में अनेक प्रकार की भलाइयां फैलाने की व्यवहारोचित रीतियां निकालता है॥

(२) आत्मिक उन्नति की दूसरी रीति सत्सङ्ग वा शोची, अर्थात् ब्रह्मनिष्ठी महात्माओं का सत्सङ्ग वा उन की रची हुई पुस्तकों का पढ़ना है। इस्से मनुष्य के तीनों ताप अर्थात् अध्यात्मिक, आधि-भौतिक, और आधिदैविक दूर होजाते हैं, महात्माओं की पुस्तकें पढ़ने से, अथवा उन का उपदेश सुन्ने से, जो शङ्का उत्पन्न हो, वह

उन से प्रीति और नम्रता भाव से, प्रश्न करके दूर करने को श्रवण कहते हैं। उस पढ़े हुए वा सुने हुए उपदेश को मन लगा के चिन्त-वन करने, और उस के अनुसार चलने को मनन कहते हैं, ऐसा करने से जो साक्षात् हो अर्थात् जो २ बातें ज्ञात हों और नवीन २ विचार उत्पन्न हों, उन को निदिध्यासन कहते हैं, इन तीनों साधनों के रीति अनुसार बर्तने और उन से ठीक २ लाभ उठाने को सत्सङ्ग कहते हैं। रामचन्द्रजी ने जो वशिष्ठजी के सत्सङ्ग से लाभ उठाया, और आत्मिक शक्ति प्राप्त की जिस के द्वारा स्वयम्बर में बडे २ योद्धाओं के सन्मुख सीताजी को व्याह लिया, और रावण जैसे महा-बली को परास्त किया, अर्जुनने जो श्री कृष्णजी के सत्सङ्ग से आत्म बल पाकर, महाभारत के युद्ध में जीत पाई, भरतखण्ड निवासियों को विदित है, इस सत्सङ्ग के प्रभाव से बडे २ पापी धार्मिक बन गये, इस के प्रमाण में एक दो उदाहरण देना उचित समझा जाता है॥

संक्षेप वृत्तान्त बाल्मीकिजी।

यह मनुष्य लूट खसोट किया करता था। एक बार वशिष्ठजी मिल गये, उन को भी लूटना और मारना चाहा। वशिष्ठजी ने पूछा, कि तू ऐसा दुष्ट कर्म क्यों करता है? बाल्मीकिजी ने उत्तर दिया, कि अपने कुटुम्ब को पालने के लिये। वशिष्ठजी ने फिर पूछा, कि जब इस दुष्ट कर्म का फल अत्यन्त दुःख तुझ को मिलेगा, उस समय तेरे कुटुम्ब के मनुष्य क्या तेरी सहायता करेंगे वा तेरे भागी होंगे? वशिष्ठजी के दर्शन और उन के वचन बाल्मीकि के मन में तीर की भांति पार निकल गये, तो भी उस ने अपनी दुष्ट प्रकृति के वश होकर, उन को छोड़ना न चाहा, अन्त में सोचने के पीछे, उन को एक वृक्ष में बांध करके, अपने सम्बन्धियों के पास जाकर प्रश्न किया, कि तुम मेरे दुष्ट कर्मों के फल भोगने में भागी होंगे वा नहीं? वे समझे, कि बाल्मीकि के पीछे अवश्य दौड़ आरही है

और वह हम को भी पकड़ेगी, इस विचार से बहुत कुदृष्टि के साथ मा बापों ने उत्तर दिया, कि जैसे होसका बाल्यावस्था में हमने तेरा पालन किया, अब तुझ को योग्य है, कि जैसे बने हमारी पालना कर, परन्तु हम तेरे कर्मों के भागी नहीं, बच्चों ने कहा, कि जैसे तेरी पालना तेरे मा बापों ने की है, वैसे ही तू भी हमारी पालना कर, प्रयोजन यह है, कि संपूर्ण सम्बन्धियों ने अपना अधिकार सिद्ध करके, उस के कर्मों के फल से अपने को निस्सम्बन्धी प्रकाश किये। यह बात चीत सुन के और उन की बात चीत के ढङ्ग को देख कर, जैसे राख दूर होने से अग्नि का प्रकाश प्रगट होजाता है, उसी प्रकार वाल्मीकि की आत्मिक शक्ति रूपी अग्नि, जो मोह रूपी राख से ढकी हुई थी, चमक उठी वह ऋषि के समीप आया, उन को हृक्ष से खोल कर, बहुत आदर और नम्रता से अपने दोष की क्षमा मांगी और सच्चे मन से उपदेश की प्रार्थना की, वशिष्ठजी ने उपदेश किया, कि एकान्त सेवन करके राम राम जपो वाल्मीकि राम २ के स्थान में मरा २ कहता रहा सब ओर से मन को हटा कर, बहुत काल तक बारम्बार एक ही शब्द के उच्चारण से उस के संपूर्ण सङ्कल्प रुक कर मन शुद्ध होगया, रामायण जैसी पुस्तक बनाने की सामर्थ्य उत्पन्न होगई, सार यह है कि एक क्षण के सत्सङ्ग ने चाण्डाल से महर्षि के पद को पहुंचा दिया॥

प्रश्न—आज कल जो सैकड़ों मनुष्य सत्सङ्ग करते हैं और राम राम जपते हैं, वे लोग यह पदवी क्यों नहीं पाते?

उत्तर—वे ऐसे महात्माओं को नहीं ढूंढ़ते, जिन का वचन और कर्म एकसा हो। वे लोग केवल दिखावट में मान बड़ाई वा धन इत्यादि के हेतु राम नाम जपते हैं। सच्चे मन, पूर्ण निश्चय और परिश्रम से आत्म शक्ति बढ़ाने के लिये

जाप नहीं करते हैं। वास्तव में यह प्रयोजन है कि कोई एक शब्द जो छोटासा हो इतनी शीघ्रता से, उच्चारण किया जावे कि वह चित्त की संपूर्ण तमोगुणी और रजो गुणी वृत्तियों को चारों ओर से रोक कर सात्विक वृत्ति उत्पन्न करके, उस शब्द में लगावे। उस समय धीरे २ जाप करना चाहिये, वारम्वार ऐसा करने से मन सूक्ष्म दृष्टि होजाता है, और अनुभव खुल जाता है जप की रीति यह है, कि पहिले ५ मिनट से आधे घंटे तक मुंह से जाप किया जावे फिर मुंह बन्द किये हुए जीभ को तालू से मिला कर जपा जावे, जब इस में भी भले प्रकार अभ्यास हो जावे, तब जीभ को काम में न लाकर, मन ही मन में जाप किया जावे, इस रीति से नाम का जाप जो कोई करेगा, उस को वाल्मीकि की भांति अवश्य फल मिलेगा॥

धनुर्दास का संक्षेप इतिहास।

यह मनुष्य नास्तिक, मद्यप, और दुराचारी था। रघुनाथ स्वामी के मेले में अपनी प्रिया कंकानिगा को साथ लेकर गया वहां रामानुज स्वामी ने उस को देखा, कि सहस्रों मनुष्यों के समूह में, उस स्त्री पर छतरी लगाये, दासानुदास की भांति फिर रहा है; और सिवाय उस स्त्री के और किसी ओर चेत नहीं है; और न किसी से उस को लज्जा आती है। स्वामीजी ने उस का मन इतना एकाग्र देख कर, सोचा कि यदि इस का मन उस स्त्री की ओर से हट कर परमात्मा की ओर लगजावे तो बहुत अच्छा हो, निदान उस को उस की प्रिया सहित बुला कर, उचित उपदेश किया। दोनों के मन पर उपदेश का प्रभाव होगया दोनों ने आत्म शक्ति को इतनी

बढ़ाई, कि रामानुज स्वामी ने उन को अपने सब शिष्यों से श्रेष्ठ माना और जब कभी उन की परीक्षा की तो वास्तव में उन को त्यागी साधुओं से कई गुणा अधिक पाया एक कवि ने बहुत सत्य कहा है, कि :—

दोहा ।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हू में आध ।
अति पवित्र सत्सङ्ग से, कटे कोटि अपराध ॥१॥

जैसे किसी पदार्थ को रगड़ने से, अग्नि उत्पन्न होजाती है, इसी प्रकार सत्सङ्ग से आत्म शक्तियां प्रगट होजाती हैं सत्सङ्ग को, आत्म शक्तियां प्रगट करने के लिये, प्रवृत्ति मार्ग समझना चाहिये ॥

(३) तीसरी रीति आत्म उन्नति की एकान्त सेवन है, इस को निवृत्ति मार्ग समझना चाहिये इस की विधि यह है, कि पहिले अपने समय का कुछ भाग एकान्त बैठने में लगाया जावे, और उस समय सांसारिक विचारों को भूल जाने का उद्योग किया जावे यदि किसी रमणीय स्थान में अकेला बैठने का अवसर मिले, तो सांसारिक पदार्थ ध्यान से देखे जावें, यदि किसी घर के कोने में बैठना पड़े तो अपनी व्यवस्था को सोचना उचित है, कि मैं कौन हूं ? कहां से आया हूं ? और फिर इस क्षणमात्र जीवन के पश्चात् कहां जाना होगा ? इत्यादि यदि एकान्त में बैठ के व्यतीत संस्कारों को ही रोक दे तो भी बहुत लाभ होना सम्भव है, नवीन और ऊंचे से ऊंचे विचार उत्पन्न होने लगते हैं, जितने बड़े २ मनुष्य संसार में हो गये हैं वे कुछ न कुछ वरन बहुत कुछ अपना समय एकान्त सेवन में व्यतीत किया करते थे । उदाहरण निमित्त महात्मा बौद्ध का संक्षेप वृत्तान्त लिखना उचित जान पड़ता है, इस महात्मा का वृत्तान्त पूरा तो सामाजिक धर्म में लिखा जावेगा, केवल एक बात यहां पर

कही जाती है। वह यह कि, छः वर्ष तक राज्य त्याग के, बन में तप करने से, इन का अन्तःकरण शुद्ध होगया था और बुद्धि बहुत तीक्ष्ण होगई थी। इन्होंने एक यह भी नियम रक्खा था, कि जो निर्बुद्धि मुझ को गाली देगा, मैं उस को आशीर्वाद दूंगा, जो कोई मुझ से वैर भाव रक्खेगा मैं उससे प्यार करूंगा इस नियम का वृत्तान्त जाने पर एक मूढ़ मति मनुष्य परीक्षा के निमित्त उन के समीप गया और अनेक प्रकार की गालियां देना प्रारम्भ किया, बुद्ध ऋषि चुपचाप सुनते रहे जब वह मूढ मति चुप हुआ, तब बुद्धजी बहुत प्रेम से बोले हे पुत्र ! यदि कोई मनुष्य कोई वस्तु अपने मित्र के भेट करै और वह मित्र उस को न लेवै, तो वह किस के पास रहैगी ? उस मूढ ने उत्तर दिया कि, देने वाले के ही पास रहैगी यह उत्तर सुन के बुद्ध ऋषि हंस के बोले, कि पुत्र ! तुमने इस समय जो कुछ मुझ को भेट दिया है; मैं उस को लेना स्वीकार नहीं करता, तुम अपने पास ही रहने दो। यह सुन करके वह मूढ़ बहुत लज्जित हुआ। उस समय बुद्धजी ने कहा, कि जब कोई मनुष्य किसी शून्य स्थान बन वा बडे मकान वा बुर्ज़ में शब्द निकाले, तो वैसी ही ध्वनि पीछें सुनाई देती है इसी प्रकार हे पुत्र ! इस संसार रूपी बुर्ज़ में भी शब्द के अनुसार शब्द सुना पड़ता है, यदि कोई बुरा मनुष्य किसी भले मनुष्य को बुरा कहता है, तो जैसे चांद पर थूकने से, वह थूक अपने ऊपर ही गिर पड़ता है, वैसे ही बुरा कहने का प्रभाव उसी कहने वाले पर पड जाता है; और जिस प्रकार वायु के विरुद्ध धूल उड़ाने से वह धूल उड़ाने वाले पर ही पड़ती है, इसी रीति से भले मनुष्य को बुरा कहने से बुरा कहने वाले को ही हानि उठानी पड़ती है। यह उपदेश सुन के, वह मूढ बुद्ध ऋषि के चरणों पर गिर पड़ा और नम्रता पूर्वक उन से अपने दोष की क्षमा मांग के उन का शिष्य बन गया॥

जोन बनियन, यूरोप का प्रसिद्ध फिलासफ़र, चौदह वर्ष तक बेडफ़ोर्ड जेल अर्थात् बन्दीगृह में बंधा रहा ; इतने वर्ष तक एकान्त सेवन करने का यह फल हुआ, कि उस को आत्म शक्तियां इतनी प्रगट होगईं, कि "पिलग्रिमज़ प्रोग्रेस" और "होली वॉर" इत्यादि उत्तम पुस्तकें बना सका ॥

(४) चौथी रीति आत्मिक उन्नति को किसी मुख्य एक गुण का आत्मा पर अधिक प्रभाव होजाना है, जैसे किसी एक भले मनुष्य से मिल कर, बहुतसे भले मनुष्यों से सुगमता के साथ जानकारी हो जाती है, और उन के मिलाप से वह पुरुष भी अवश्य भला होजाता है, इसी प्रकार से किसी एक मुख्य गुण का गहरा प्रभाव पड़ने से दूसरे गुण भी स्वयं आजाते हैं और उन्हीं सद्गुणों के द्वारा आत्मिक शक्ति प्राप्त होजाती है, निदान कई एक उदाहरण लिखे जाते हैं संपूर्ण मनुष्यों को उचित है, कि अपने गुणों को मन में तोलें, और जो गुण अधिक जान पड़े, उसी को इतनी वृद्धि का प्रयत्न करें, कि उस का प्रभाव जीवात्मा तक पहुंच करके आत्म शक्ति प्राप्त हो ॥

प्राचीन समय में पंजाब देश के मुल्तान नामी नगर में एक राजा हुआ है, जिस का नाम हिरण्यकश्यप था। उस का एक पुत्र प्रह्लाद नाम बहुत ही छोटी अवस्था का था। एक दिन प्रह्लाद का जाना किसी कुम्हार के आव की ओर हुआ वहां उस ने देखा कि कुम्हार की स्त्री बहुत दया और पश्चात्ताप के साथ कह रही थी, कि उस के आव में बिल्ली ने बच्चे दिये थे, भूल से उस आव में आग लगादी गई प्रह्लाद ने कहा, कि अब पछताये से क्या लाभ होगा ? कुम्हारी के मुख से, कि जो बड़ी दयावान् थी, स्वतः ही यह निकला कि परमात्मा कृपा करे तो अब भी बिल्ली के बच्चे बच सक्ते हैं तब प्रह्लाद ने, कुछ काल पीछे, आव ठण्डा होने पर आश्चर्य से देखा, कि मार्जारी के बच्चे जीते थे, प्रह्लाद के मन पर उस समय में

विश्वास के गुण का प्रभाव इतना होगया, कि जीवात्मा को अनेक शक्तियां प्रगट होगईं जिन के द्वारा ज्योतिःस्वरूप परमात्मा, सब ठौर ज्ञात होने लगा; बुद्धि इतनी तीक्ष्ण होगई, कि जब उस के पिता ने अनेक प्रकार के दुःख देकर भी देखा, कि वह सदैव बचा रहा, तो प्रह्लाद से पूछा, कि क्या कारण है कि बडे २ योद्धा और राजा महाराजा मेरे आधीन होगये, परन्तु तुझ जैसे छोटे बालक को मैं स्वाधीन नहीं कर सका? प्रह्लाद ने हंस करके उत्तर दिया, कि यदि आप अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में करके, और उन के द्वारा आत्मिक शक्तियां प्राप्त करलो, तब इस का भेद पाओगे॥

इसी रीति से ग़ज़नी देश के एक गुलाम अर्थात् दास सुबुक्तगीन नामी के लिये कहते हैं, कि एक दिन वह शिकार खेलने गया था। और एक हिरनी के बच्चे को जीता पकड़ लाया उस की मा, सुबुक्तगीन के पीछें २ बच्चे की ममता के हेतु नगर के द्वार तक चली आई। दैव संयोग से सुबुक्तगीन ने पीछें मुड़ के उस को देखा, उस समय उस को बड़ी करुणा आई, और हिरनी के बच्चे को छोड़ दिया। हिरनी बच्चे को लेके और प्रसन्न होकर बन को भागी, यद्यपि वह मनुष्य के समान बोल नहीं सक्ती थी, परन्तु वारम्वार पीछें मुड़ के संकेत से सुबुक्तगीन को धन्यवाद देती थी। इस दया के गुण का सुबुक्तगीन के हृदय पर इतना प्रभाव हुआ, कि उस को आत्मिक शक्तियां प्रगट होगईं, जिन के द्वारा उस को स्वप्न में दृष्टान्त हुआ कि परमात्मा उस को इस बात से बहुत प्रसन्न हुए; और उस को कहा कि तूने एक हिरनी के बच्चे पर दया की है इस हेतु तुझ को असंख्य मनुष्यों पर बादशाह बना कर, राज्य करने का अवसर दिया जावेगा, उस समय भी इसी प्रकार दया रखना, निदान ऐसा ही हुआ, कि सुबुक्तगीन एक नामी बादशाह हुआ॥

राजपूताने में मेड़ते के राजा की लड़की मीरांबाई का वृत्तान्त है, कि वह बहुत छोटी अवस्था में, अपनी माता के साथ राज्य मन्दिर से एक बरात को निकलते हुए देख कर बर को देखा, तो मीरांबाई ने भोलेपन से अपनी माता से पूछा कि मेरा बर कौन है? माता ने हंस करके उत्तर दिया, कि तेरा बर "मन मोहन गिरिधर नागर" अर्थात् परमेश्वर है मीरांबाई को उसी समय ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ कि संपूर्ण आत्मिक शक्तियां जाग पड़ीं, सोचने की शक्ति बहुत बढ़ गई उस के पति चीतौड़ के राना ने कई बार उस को दुःख देना चाहा परन्तु उस को हानि न होसकी; विष का प्याला उस को न मार सका; काला नाग उस को न डस सका; क्योंकि उस के प्रेम का रंग चढा हुआ था, और आत्मिक बल उस को प्राप्त होगया था ॥

(५) पांचवां उपाय आत्मिक उन्नति का परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना है परमात्मा के गुणों का कीर्त्तन श्रवण और उपदेश को स्तुति कहते हैं, परमात्मा से सहायता की इच्छा को प्रार्थना कहते हैं। परमात्मा की सहायता की इच्छा करने के पहिले अति आवश्यक है, कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार पुरुषार्थ करे, क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का परमात्मा का यही प्रयोजन है, कि मनुष्यों को अपना पुरुषार्थ बर्तना चाहिये, जैसे नेत्र वाले को कोई पदार्थ दिखलाया जासक्ता है अंधे को नहीं, इसी प्रकार ईश्वर ने बुद्धि आदि पदार्थ मनुष्य को दिये हैं, और जो मनुष्य उन पदार्थों से ठीक २ काम लेते हैं, ईश्वर भी उन की सहायता करते हैं ॥

उपासना का अर्थ परमात्मा के समीप होना है, अर्थात् परमात्मा के स्वरूप में मगन होकर, उस के बनाये हुए सृष्टि नियम, सत्य भाषण आदि गुणों का यथावत् पालन करना है ॥

स्तुति, प्रार्थना और उपासना के ये तीन भेद समझने चाहियें:— प्रथम वह जो बोली के द्वारा की जावे, दूसरी वह जो मन में की जावे, तीसरी वह जिस में उस परमात्मा के गुणों का श्रवण, कीर्त्तन वा उपदेश किया जावे उस को स्वयं धारण करने का उद्योग करे और जो प्रार्थना वाणी और मन से की जावे और जिस बात की इच्छा करे, उस के लिये अपने पूर्ण पराक्रम से उद्योग करता रहे ॥

यद्यपि स्तुति, प्रार्थना और उपासना संपूर्ण धार्मिक पुरुषों को यथाशक्ति करना उचित है और ऐसा करने के समय जो शब्द उन के हृदय में सच्चे मन से उत्पन्न हों वे ही लाभदायक और हृदय-ग्राही होते हैं, तो भी कई एक उदाहरण लिखने उचित समझे जाते हैं, जो प्राचीन समय में धार्मिक पुरुष काम में लाते रहे हैं ॥

हे परमेश्वर ! आप प्रकाश रूप हैं, कृपा करके मेरे हृदय में भी विज्ञानरूपी प्रकाश उत्पन्न कीजिये, आप अत्यन्त पराक्रमी हैं, मुझ को भी पूर्ण पराक्रम दीजिये; हे अनन्त बली महेश्वर ! आप अपनी अनुग्रह से मुझ को भी शरीर और आत्मा में पूर्ण बल दीजिये ; हे सर्व शक्तिमान् ! आप सामर्थ्य के निवास स्थान हैं, अपनी करुणा से यथोचित सामर्थ्य का स्थान मुझ को भी कीजिये ; हे दुष्टों पर क्रोध करने वाले ! आप दुष्ट कामों और दुष्ट जीवों पर क्रोध करने का स्वभाव मुझ में भी रखिये ; हे सब के सहन करने वाले ईश्वर ! जैसे आप पृथ्वी आदि लोकों को धारण किये हुए हैं और दुष्ट मनुष्यों के व्यवहारों का सहन करते हैं, वैसे ही सुख, दुःख, हानि, लाभ, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास और युद्ध आदि का सहने वाला मुझ को भी कीजिये, हे उत्तम ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर ! आप कृपा करके श्रोत्रादि उत्तम इन्द्रियां और श्रेष्ठ स्वभाव वाले मन को मुझ में भी स्थिर कीजिये, हे जगदीश्वर ! आप संपूर्ण जगत् अर्थात् जड़ और चैतन्य

वस्तुओं के राजा और पालन करने वाले हैं, आप मनुष्यों को बुद्धि, बल और आनन्द से तृप्त करने वाले हैं, जैसे आपने हम को बुद्धि आदि पदार्थ दिये हैं, उसी रीति से उन की ठीक २ वृद्धि और रक्षा भी करें; आप सदैव काल हम को ऐसी प्रेरणा करते रहें कि हम पक्षपात रहित होकर न्याय और सदाचरण से सत्य धर्म को ग्रहण करें, उससे विपरीत कभी न चलें किन्तु उस की प्राप्ति के लिये विरुद्धता छोड़ के परस्पर सम्मति और प्रीति से रहैं, जिस से हमारा सुख बढ़ता रहै और दुःख प्राप्त न हो आप ऐसी कृपा करें कि हम सब लोग वैर भाव को छोड़ के, आपस में प्रीति के साथ पढ़ना पढ़ाना और प्रश्नोत्तर सहित सम्वाद करें, जिस से सत्य और निष्कपटता बढ़ती रहै॥

हे परम पिता परमेश्वर! आप की सहायता के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उस का पूरा अनुष्ठान नहीं हो सक्ता, इसलिये आप ऐसी कृपा कीजिये, जिस से मैं सत्य धर्म का अनुष्ठान पूरा कर सकूं, आप ऐसी कृपा कीजिये, कि मैं सब असत्य कामों से छूट के सत्य के आचरण करने में सदा दृढ़ रहूं। इस पवित्र व्रत में दिन प्रति दिन मेरी श्रद्धा अधिक होती जावै और उस के कारण मेरे अन्तः करण की शुद्धि और व्यवहार और परमार्थ के सुख प्राप्त होते जावें॥

हे सर्व व्यापक अन्तर्यामी! आप हम को ऐसी सामर्थ्य दीजिये, कि हम सदैव काल ज्ञान और विद्या को बढ़ाते हुए केवल आप की उपासना ही करते रहैं, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक २ परीक्षा करके, जैसा हम अपनी आत्मा में जानते हैं, वैसा ही बोलें और वैसा ही मानें। अपनी आंख आदि इन्द्रियों को अधर्म और आलस्य से छुड़ाके, सदा धर्म में चलाते रहैं, मन और बुद्धि को धर्म सेवन में स्थिर रक्खें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये सदैव

काल पुरुषार्थ करते रहैं, जो संपूर्ण जगत् के उपकार के लिये सत्यवादी, सत्यकारी, विद्वान् और सब का सुख चाहने वाले हों उन सत्पुरुषों के सङ्ग से योग्य व्यवहारों को सदा बढ़ाते रहैं। हे सत्य स्वरूप परमात्मन्! आप की कृपा और आचार्य्य की सहायता से हम ब्रह्मचारियों ने सद्विद्या और शुभ गुणों को धारण किया है, आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये, कि हम आलस्य और प्रमाद से सदा पृथक् रहके, कुशलता अर्थात् चतुराई को सदैव ग्रहण करके विभूति अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य्य को बढ़ावें। माता, पिता, आचार्य्य, अर्थात्, विद्या के देने वाले और अतिथी अर्थात् सत्योपदेशकारी विद्वान् पुरुष इन सब की सेवा उत्तम पदार्थों और प्रसन्न चित्त के साथ करते रहैं, हे परम ऐश्वर्य्य युक्त जगत् मङ्गलमई परमेश्वर! आप की कृपा से मुझ को उपासना और योग प्राप्त हो, तथा उससे मुझ को सुख भी मिले; इसी प्रकार आप की कृपा से दस इन्द्रियां, दस प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल ये अट्ठाईस सब कल्याणों में प्रवृत्त होकर उपासना और योग को सदा सेवन करें; तथा मैं भी उस योग के द्वारा रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहता हूं, इस लिये बारम्बार आप को नमस्कार करता हूं, कि आप प्रज्ञा, वाणी और कर्म इन तीनों के पति हैं, तथा सर्व शक्तिमान् विशेषणों से युक्त हैं, इसलिये आप दुष्ट प्रज्ञा, मिथ्या वाणी और पाप कर्मों को विनाश करने में अत्यन्त समर्थ हैं, तथा आप को सर्व व्यापक और सर्व सामर्थ्य वाला जान करके, मैं आप की उपासना करता हूं, हे परमेश्वर! हम आप की उपासना करते हैं आप कृपा करके अन्न आदि ऐश्वर्य्य सब से उत्तम कीर्त्ति, भय से रहित और सब विद्या से युक्त कीजिये॥

हे भगवन्! आप सब में व्यापक, शान्त स्वरूप और प्राण के भी प्राण हैं तथा ज्ञान स्वरूप और ज्ञान देने वाले हैं, सब के पूज्य, सब

के बड़े और सब के सहन करने वाले हैं इस प्रकार का आप को जानके, हम लोग आप की उपासना करते हैं, कि ये गुण आप हम को भी देवें॥

हे जगदीश्वर! आप की निरन्तर उपासना करने से हम को निश्चय हुआ है, कि मुक्ति का उत्तम साधन उपासना है, इसी लिये संपूर्ण विद्वान् और धार्मिक पुरुष आप को, जो सब जगत् और सर्व पुरुषों के हृदयों में व्यापक हो, उपासना रीति से ही अपनी आत्मा के साथ युक्त करते हैं जिस के कारण उन के हृदय रूपी भूमि में सत्य का प्रकाश होकर वे सब विद्याओं के जान्ने वाले, हिन्सा आदि विषयों से रहित कृपा का समुद्र होजाते हैं, और मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहते हैं इत्यादि॥

आत्मिक धर्म्म के लाभ।

जो मनुष्य इस धर्म को भले प्रकार पालन करते हैं, उन में विश्वास, दया, प्रीति, न्याय, निर्भयता, शूर बीरता, धैर्य्य इत्यादि इतने गुण आजाते हैं कि वे इस दुःख सागर संसार को सुख सागर बना देते हैं वे अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल से अनेक प्रकार की विद्या प्रगट करते हैं॥

आत्मिक धर्म्म के पश्चात् पारलौकिक धर्म्म के ग्रहण करने की रीति।

आत्मिक धर्म को विधि पूर्वक ग्रहण करने के पश्चात्, यदि परमात्मा में अधिक प्रीति होजावे और आत्मिक धर्म रूपी अथाह समुद्र में डुबकी मार के अनेक प्रकार के गोप्य रहस्य जाने और संसार का उपकार करने की इच्छा और सांसारिक सुखों की अधिक चाहना न हो, तो पारलौकिक धर्म का पालन करना चाहिये जिस

का ब्यौरेवार वर्णन दूसरे विभाग में किया जावेगा, परन्तु गृहस्थ धर्म को उल्लंघन करना साधारण मनुष्य की सामर्थ्य नहीं है। जब किसी देश वा जाति के उद्धार का समय आता है, तो ऐसे महात्मा उत्पन्न होते हैं, जैसे कि शङ्कराचार्य्य, ईसामसीह, स्वामी दयानन्द इत्यादि, ऐसे महात्माओं के तेज और यश को देख करके सांसारिक पुरुष ईर्षा और स्वार्थ के कारण अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध डालते हैं और जब देखते हैं, कि कोई प्रतिबन्ध उन को नहीं रोक सक्ता, तो उन के जीव लेने के लिये उपस्थित होजाते हैं, परन्तु वे महात्मा अपनी आत्मिक शक्ति के बल से, ज्ञान की अग्नि को इतनी प्रज्वलित कर देते हैं, कि उन की मृत्यु के पश्चात् जैसे २ द्वेष की वायु चलती है, वैसे ही वह अग्नि अधिक प्रज्वलित होती जाती है॥

प्राचीन ऋषियों के समय का वर्णन ।

ऋषियों के समय में भरतखण्ड में ऊपर वर्णन किये हुए तीनों धर्मों अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्मों को पालन करने की व्यवस्था को ब्रह्मचर्य्य आश्रम कहते थे इस के पश्चात् गृहस्थाश्रम आरम्भ होता था, जिस में प्रवेश होकर, ब्रह्मचारी लोग अपने अति परिश्रम से प्राप्त की हुई शक्तियों के द्वारा, अनेक प्रकार के सुख भोगते थे। जो ब्रह्मचारी जिस ब्योपार को ग्रहण करता था वा जिस की ओर ध्यान देता था, उस में उत्तमोत्तम उन्नति कर दिखलाता था जैसे विश्वामित्र ने नई सृष्टि उत्पन्न की, जिस्से यह प्रयोजन है कि दो २ अन्न मिला करके, कई प्रकार के नये अन्न, ज्वार बाजरा इत्यादि उत्पन्न किये। दो २ पशुओं के मेल से कई प्रकार के उपयोगी जीव उत्पन्न किये, द्रोणाचार्य्य ने कई प्रकार की अग्नि विद्या प्रगट की जिस की सहायता से भरतखण्ड के राजाओं ने दूर २ तक अपना राज्य बढ़ाया, क्योंकि इस संसार में जो राजा

अग्नि विद्या की वृद्धि देता है, वही दूर २ तक राज्य कर सक्ता है, निदान तीनों धर्म पालन करने वाले मनुष्य संपूर्ण व्यवहारों में उन्नति करके, सुख से अवस्था व्यतीत करते थे। सांसारिक धन, व्योपार, विद्या, कारीगरी इत्यादि सब भरतखण्ड में विद्यमान थे। अनेक प्रकार की सांसारिक संपूर्ण इच्छा वाले मनुष्य अर्थात् धर्म के प्यासे, धन के भूखे, विद्या के अभिलाषी, व्योपार के चाहने वाले, सब ऋषियों के चरणों में सीस नवा करके, अपने मन बांच्छित फल प्राप्त करते थे; और यदि ऊपर लिखे तीनों धर्म फिर सच्चे उद्योग और सच्चे विश्वास से पालन करना आरम्भ किये जावें, तो फिर वही समय भरतखण्ड को मिलना और सारे देशों की उन्नति में उलंघन करना सम्भव है, क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है और उस की नीति, जैसी ऋषियों के समय में थी, वही अब भी है और वह गुप्त होकर सब के कर्म देखता है और प्रत्यक्ष होकर फल देता है॥

प्रश्न—इस समय संसार में बहुतसे देश अनेक प्रकार की उन्नतियां कर चुके हैं, उन से बढ़ना कैसे सम्भव है?

उत्तर—उन्नति, चाहे सांसारिक कामों में हो वा धर्म सम्बन्धी कामों में, उन के प्राप्त करने की दो रीतियां हैं, नीति और धर्म इस समय, जो साधारण रीति से देखा जावे, तो दूसरी जातियों ने जो उन्नति की है, उन्होंने नीति को धर्म से अधिक आवश्यक समझ रक्खा है, और भरत-खण्ड में बहुत काल से धर्म चर्चा रहने के कारण, यद्यपि अनेक प्रकार के मतमतान्तरों के झगड़ों ने सच्चे धर्म का अभाव कर दिया है परन्तु फिर भी उस का बीज विद्य-मान है और ऊपर लिखित रीतियों से उन्नति के मैदान में पांव रखने से अवश्य है, कि धर्म प्रधान रहे और

नीति गाना अङ्ग में, अतएव धर्म को अति आवश्यक समझ कर, धर्म और नीति दोनों को साथ २ बर्तते हुये, भरतखण्ड अवश्य दूसरे देशों से बढ़ सका है। जब शारीरिक धर्म पालन करने से, शरीर की संपूर्ण कलें और टुकडे ज्ञात होजावें और उन को ठीक २ चलाना आजावे, तो बाहर की कलें नई बनानी और उन से काम लेना का क्या कठिन है ? जब मानसिक धर्म के पालन करने से मन को दाव पेच करके वश में कर लिया जावे, तो बाहर की सांसारिक नीति के तत्व बर्तने क्या बड़ी बात है ? जब शरीर रूपी नगर मे दया, प्रेम और न्याय द्वारा आत्म बल से सब शक्तियों को नियम में रखने पर बलवान् होजावे, तो इसी भांति बाहर की संसार में भी किया जाना सम्भव है, परन्तु यह बात तब ही होसक्ती है, जब कि सामाजिक उन्नति का पूरा प्रबन्ध हो क्योंकि नवीन कलें बनाने वाले को आदि में संसार उन्मत्त बतलाया करता है, सहस्रों मनुष्य विरुद्धता करते हैं, परन्तु सामाजिक उन्नति का प्रबन्ध हो, तो वे लोग सहायता करते हैं और शनैः २ उस की रचना को संपूर्ण कर देते हैं सामाजिक धर्म का वर्णन पांचवें अध्याय में किया जावेगा ॥

आत्मिक धर्म को पालन करने के पश्चात् गृहस्थ धर्म को धारण करना चाहिये, जिस का संक्षेप वृत्तान्त आगामी अध्याय में किया जावेगा ॥

इति
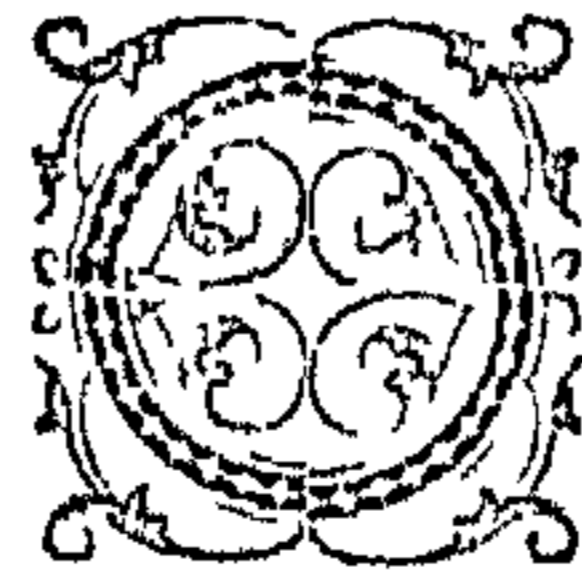
प्रथम भाग।

चौथा अध्याय।

गृहस्थ धर्म्म।

गृहस्थ धर्म्म की व्याख्या।

गृहस्थ धर्म का शब्दार्थ घर में रहने के कर्म हैं। बोलचाल में उन कर्मों से अभिप्राय है, कि जिन के द्वारा, विद्याध्ययन के पश्चात्, जीविका का भले प्रकार उद्योग होकर, कुटुम्ब के लिये सामान इकट्ठे किये जासकें और सुख से निर्वाह किया जावे॥

गृहस्थ धर्म इसी कारण से बहुत ऊंचे पद का समझा गया है, कि इस के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म पालन करने का उपाय होसक्ता है और इसी के सहारे पर संन्यास इत्यादि पारलौकिक धर्म बने रह कर उन्नति कर सक्ते हैं। गृहस्थाश्रम एक छोटेसे राज्य के समान है, जिस में संपूर्ण को राज्य, सभा की भांति एक दूसरे की सहायता और आज्ञा पालन करते हुए, बहुत ही सचाई, परिश्रम और धीरज के साथ अपने २ कर्म करते रहने चाहियें, जिन का संक्षेप वृत्तान्त इस स्थान में किया जाता है॥

जीविका का उद्योग।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म को पालन करते हुए, जब विद्याध्ययन से स्वतंत्रता प्राप्त हो, तो अपनी योग्यता और मन की इच्छा के अनुसार, किसी ऐसे एक व्यापार को ग्रहण करना चाहिये, जिस्से भले प्रकार धर्म के साथ निर्वाह होसके। उस व्यापार में पूर्ण सावधानी के साथ श्रेष्ठ रीतियों से उचित धन प्राप्ति का उद्योग करते रहना चाहिये॥

जिस प्रकार की विद्या सीखी हो और जिस ओर मन की रुचि हो उसी प्रकार का व्यापार ग्रहण करना चाहिये और उस व्यापार में अधिक से अधिक वृद्धि और कीर्त्ति प्राप्त करना अपना मुख्य धर्म समझना चाहिये, निदान अपनी प्रकृति और स्वभाव और रहनगत ऐसी कर लेना उचित है, जिस्से स्वयं उन्नति और यश होता चला जावे, जैसे यदि धर्म का प्रचार करने की इच्छा हो तो परमात्मा से अधिक सम्बन्ध रख के, सदैव संसार को सराय के तुल्य समझना चाहिये, जहां नित्य निवास स्थान के अनुसार सुखदायक सामान कोई भी एकत्र नहीं किया करता, किन्तु सुख वा दुःख से जैसा अवसर मिले समय व्यतीत करके परमावस्था अर्थात् उस स्थान का जहां अन्त में पहुंचना है ध्यान रखना चाहिये। धर्म प्रचारक को जहां तक हो सके, जो कुछ मन में हो, वही प्रसिद्ध करना चाहिये और निर्दोष और निर्भय होकर संसार में बिचरते हुए, अधिक से अधिक मनुष्यों में अपने विचार फैलाने का उद्योग करते रहना चाहिये। संपूर्ण मनुष्यों को स्वजातीय समझ कर, उन के और दूसरे जीवों के सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति के हेतु यत्न करते रहना चाहिये, और यदि कृषिकार बन्ने की इच्छा हो, तो कृषि विद्या से पूरी जानकारी और सर्दी गर्मी का सहन स्वभाव डाल कर, ग्राम वासियों और कृषि कर्म में काम आने वाले पशुओं से एक मुख्य प्रकार का सम्बन्ध उत्पन्न करना चाहिये॥

यदि वाणिज्य वा व्योपार की इच्छा हो तो देश २ की उत्पत्ति और आवश्यकताओं को जान्ना और मन में नर्मी और सचाई का उत्पन्न करना, अपना मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये। युद्ध विद्या के अभिलाषियों को वीरता के ढङ्ग धारण करना उचित है। व्यायाम इत्यादि के द्वारा शरीर को दृढ़ बनाना और आरोग्यता को अधिक

उत्तम रखना आवश्यक है नौकरी करने में यदि मृत्यु का भय हो तो भी चिन्ता न करनी चाहिये ॥

न्यायशाला और नीति सहायकता अर्थात् विकालत का धन्धा करने के लिये, सृष्टि की नीति और मनुष्य की प्रकृति को जहां तक होसके भले प्रकार जांच करके शान्ति, स्वतंत्रता और न्याय फैलाने के लिये तर्क शास्त्र और व्याख्यान देने की शक्ति प्राप्त करने का उद्योग करना उचित है। राज्य सभा की चाकरी करनी हो, तो सर्व प्रिय होने का गुण प्राप्त करके अपने से उच्च राज्याधिकारियों को आज्ञाकारी से प्रसन्न रखना, बराबर वालों और अपने आधीनों के साथ न्याय और प्रीति का बर्ताव करना उचित है ॥

सम्बन्धियों से बर्ताव ।

संपूर्ण गृहस्थियों के अधिक वा न्यून सम्बन्धी अवश्य होते हैं, उन के साथ बहुत शिष्टाचार प्रीति और सचाई के साथ बर्ताव रखना चाहिये, और यथाशक्ति बिना किसी अवसर पर जतलाने के उपकार करने को सदैव कटिबद्ध रहना चाहिये। उन की बुद्धि के द्वारा यह जान कर, कि वे किस प्रकार के मनुष्य हैं, छोटी २ बातों में खैंचा खैंची कदापि नहीं करना चाहिये। उन से बर्ताव करते समय सदैव इस दिव्य नीति को याद रखना उचित है, कि जैसा उन से बर्ताव किया जावै, वैसा ही बर्ताव यदि वे हमारे साथ करें तो हम को अप्रिय न जान पड़े। जिस बात को हम अप्रिय समझें वह उन से भी न बर्ती जावै। कुटुम्ब की एकता और सम्बन्धियों का बल सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिये एक बहुत बड़ा लाभ और पराक्रम समझा गया है। धन्य हैं वे मनुष्य जिन को यह सुख प्राप्त है! परन्तु सम्बन्धियों से अनुचित बर्ताव करने से यह सुख घोर क्लेश में बदल जाता है, भाई जो बाहुबल कहा जाता है, बांह का सर्प

बन जाता है इस के प्रमाण में "घर का भेदी लङ्का ढावे" की कहावत लोक प्रचलित है कहते हैं कि लङ्का के राजा रावण ने अपने भाई विभीषण से उचित बर्ताव नहीं किया, इस हेतु विभीषण महाराजा रामचन्द्र से जामिला। सोच विचार कर देखा जावे तो जितने कुलों, जातियों और देशों में विनाश हुआ है, वह सब आपस की फूट से ही हुआ है और यदि फूट का यथार्थ कारण निर्णय किया जावे, तो संपूर्ण अवसरों पर प्रथम छोटी २ बातों में और फिर बड़ी २ बातों में आपस का अनुचित बर्ताव ही निकलेगा॥

पड़ौसियों के साथ बर्ताव।

पड़ौसियों को भी, सम्बन्धियों के समान जान कर, उन के सुख दुःख को अपना ही सुख दुःख समझना चाहिये, और जहां तक हो सके उन से प्रीति का बर्ताव रखना चाहिये यदि ऐसा सम्भव न हो तो झगड़ा क्लेश करने के विरुद्ध कोई दूसरा अच्छा पड़ौस ढूंढ़ना चाहिये अत्युत्तम यह है, कि अपनी मीठी बातों, नर्मी और सौम्य स्वभाव से झगड़ालू पड़ौसी की चित्त वृत्ति को फेर कर, सुख पूर्वक निर्वाह किया जावे॥

कहते हैं कि एक भले और सुशील मनुष्य के पड़ौस में कोई झगड़ालू और क्रोधी मनुष्य आरहा, और छोटी २ बातों पर नित्य प्रति क्लेश करना आरम्भ किया। एक दिन दैव योग से उस का एक पालतू कबूतर भले पड़ौसी की छत पर जा बैठा और वहां उस को बिल्ली ने पकड़ कर मारडाला। इस पर झगड़ालू पड़ौसी ने कलह करना आरम्भ किया कि मेरे कबूतर को जान बूझ कर मरवा दिया। शान्त स्वभाव पड़ौसी ने यह सुन कर, जैसे को तैसा उत्तर देने के विरुद्ध, बहुत नर्मी और धैर्य के साथ, अपने झगड़ालू पड़ौसी से उस के कबूतर के मरने पर शोक प्रकाश करके, क्षमा मांगी; और

उस कबूतर का मोल देने पर उद्यत हुआ। यह नर्मी देख कर, झगड़ालू की आंखों में क्रोध से लोहू बरसने के स्थान में अकस्मात् आंसू भर आये और वह स्वयं अपने पड़ोसी से उस पर झूठा अपराध लगाने के बदले, बहुत लज्जित होकर, नम्रता से क्षमा मांगने लगा॥

मित्रों से बर्ताव ।

यद्यपि स्वार्थ से पूरित इस संसार में सच्चा मित्र मिलना दुर्लभ है, तौ भी थोड़ेसे मनुष्यों से मित्रता रखनी पड़ती है; और यदि उन से निष्कपटता और सच्ची प्रीति के साथ बर्ताव रक्खा जावे; और जहां तक होसके उन के सत्कार और कार्य्य सिद्धि में परिश्रम किया जावे, तो उन में से अच्छे मित्र भी उत्पन्न होजाते हैं; और आपदा के समय सहायता करने को उद्यत होजाते हैं। जिस प्रकार उन की मित्रता निश्चय होती जावे, उसी प्रकार उन से सम्बन्ध बढ़ाना उचित है, परन्तु संपूर्ण मन के भेद उन को कदापि नहीं देने चाहियें क्योंकि यदि किसी कारण से मित्रता न बनी रहै, तौ उस समय उन से हानि पहुंचने का भय है। संपूर्ण गृहस्थियों को उचित है, कि पहले सोच समझ कर मित्र बनावें, फिर जहां तक होसके जन्म भर मित्रता निभावें। अत्युत्तम यह है, कि थोड़े मित्र हों और उत्तम हों, विरुद्ध इस के, कि बहुतसे मित्र हों, और दिखावटी हों॥

विरोधियों से बर्ताव ।

मनुष्य चाहै जितना सुशील और मिलनसार हो फिर भी एक वा अधिक विरोधी उस के हो ही जाते हैं। विरोधियों से सदैव न्याय, धैर्य्य और सोच विचार के साथ बर्ताव करना चाहिये। अपनी ओर से सदैव यह यत्न होना चाहिये, कि विरोधी मित्र बन जावे। यदि यह किसी प्रकार सम्भव न हो तो जहां तक होसके विरोधियों

से दूर रहने का उपाय किया जावै, परन्तु किसी अवस्था में विरोधियों को दबाने वा दुःख पहुंचाने के लिये, अनुचित बर्ताव न किया जावै, और उन की निष्ठुरता और अत्याचार को परमात्मा के न्याय पर छोड़ दिया जावै ॥

सर्व साधारण के साथ बर्ताव ।

जो मनुष्य संसार में सदाचार से जीवन व्यतीत करते हैं उन से मित्रता रखनी ; सङ्कट में फंसे हुए और दुःखियों के साथ सहानुभूति प्रगट करके यथा शक्ति सहायता करनी ; सदाचारियों के उत्तम कामों को देख कर वा सुन कर प्रसन्न होना और उन की प्रशंसा करनी ; अत्याचारियों से न मित्रता रखनी न शत्रुता किन्तु जहां तक बने दूर रहना उचित है ; और यह भी सदैव याद रखना चाहिये, कि जो बात अपने लिये अच्छी न जान पड़े, वह औरों के लिये भी अच्छी न समझी जावै ॥

अतिथि सत्कार ।

गृहस्थ में अतिथि सत्कार भी एक मुख्य धर्म है । जब कोई मित्र, सम्बन्धी, पथिक वा उपदेशक आवै तो, यथा शक्ति और उस की आवश्यकता का अनुमान करके, हंसमुखता से उस का आदर सत्कार किया जावै । बुद्धिमानों ने कहा है, कि परमेश्वर का धन्यवाद कर, कि तेरा पाहुना तेरे यहां रोटी खाता है । भरतखण्ड और अरब इत्यादि देशों में, अतिथि सत्कार की अच्छी रीति है ; और ऋषियों के समय में इस को अतिथि सेवा कहते थे । जब तक अतिथि सेवा का भले प्रकार प्रचार रहा, उत्तम २ उपदेशक दिन रात भ्रमण करके अमृतरूपी उपदेश से कृतार्थ करते थे ; और अपनी आवश्यकताओं से निश्चिन्त रह कर, शान्त चित्त से, धर्म के अति सूक्ष्म अङ्गों को सोचने और फैलाने में तत्पर रहते थे ॥

दान ।

संसार के संपूर्ण पदार्थों के स्वामी पृथ्वीनाथ परमेश्वर हैं, जो अपनी दयालुता और न्याय से संपूर्ण को अपनी २ योग्यता और परिश्रम के अनुसार, सामग्री अल्पकाल के लिये, दे देते हैं, जिस का उचित बर्ताव करना संपूर्ण धार्मिक पुरुषों का धर्म है; और कुछ विभाग उस सामग्री का दूसरों की आवश्यकता पूरी करने के लिये सदैव दान करना चाहिये। साधारण रीति से अपने वेतन का सौवां विभाग पुन्य करके सामाजिक उन्नति के भार उठाने वाले पुरुषों को देना उचित है और यदि सामाजिक उन्नति का यथा योग्य प्रबन्ध न हो, तो अपनी मति के अनुसार वा कई बुद्धिमान् पुरुषों की सम्मति से वह सौवां विभाग व्यय करना चाहिये। मनुष्य चाहे कैसा ही पक्षपात से रहित हो, फिर भी कुछ न कुछ ममता रहती ही है, इसलिये उचित है, कि दान के समय अपनी बुद्धि से दूसरे बुद्धिमानों की समझ को श्रेष्ठतर समझे॥

सौवें विभाग से उपरान्त मुख्य २ अवसरों पर भी यथा शक्ति दान करना उचित है। एक रीति छिपा कर दान करने की है जिस को गुप्त दान कहते हैं। आपदा में फंसे हुए, स्वेत वस्त्र वालों की सहायता, निर्धन विद्यार्थियों की सहायता, योग्य ग्रन्थकारों की सहायता, नवीन कल्पना करने वाले कारीगरों की सहायता, इस रीति से करना, कि दूसरा न जान सके, गुप्त दान समझना चाहिये, जिस का फल महाकल्याण है। जो मनुष्य इस प्रकार का दान करते हैं, उन के घर में सदैव लक्ष्मी का बास रहता है और उन की जाति और देश भी सुलभता के साथ उन्नति के मैदान में जमे रहते हैं, निदान जैसा दान का करना आवश्यक है, वैसे ही पात्र को दान का पहुंचाना भी अति आवश्यक है॥

आपद्धर्म ।

गृहस्थ धर्म में यह भी स्वभाव डालना चाहिये, कि जब कोई काम, मुख्य करके नवीन काम, किया जावे, तो उस समय यह सोच लिया जावे, कि वह काम किसी प्रकार शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म के विरुद्ध तो नहीं है। ऐसा स्वभाव होजाने पर, किसी बुरे काम का करना असम्भव के लगभग होजाता है, यदि मन उपरान्त कोई विरुद्ध काम करना पड़े तो जहां तक होसके यह उद्योग किया जावे, कि उस काम के बुरे फल का प्रभाव कम हो, इसी को ऋषियों की बोल चाल में आपद्धर्म अर्थात् आपदा के समय का धर्म कहते हैं॥

आपद् धर्म्म का उदाहरण ।

भाड़े का वाहन रेल, नाव इत्यादि में वा समर्थवान् प्रजा पीड़क के पंजे में फंस जाने के समय, आपद् धर्म समझ कर जैसे बन पड़े निर्वाह कर लेना उचित है, परन्तु बारम्बार वा बहुत काल तक आपद् धर्म नहीं वर्तना चाहिये नहीं तो स्वभाव होजाने का भय है स्वभाव के वश होकर, बिना सोचे समझे, किसी कर्म का करना अधर्म समझना चाहिये॥

टाइम टेबिल अर्थात् समय का उचित विभाग ।

गृहस्थ में असंख्य कर्म करने पड़ते हैं, इस हेतु उन को भले प्रकार करने के लिये, समय का विचार पूर्वक विभाग करना, अर्थात् टाइम टेबिल बनाना बहुत लाभदायक है, निदान बानगी की रीति पर एक साधारण टाइम टेबिल लिखा जाता है संपूर्ण मनुष्य अपनी रहनगत वा दशा के अनुसार, इस के क्रम में परिवर्तन वा आवश्यकता हो, तो समय के विभाग में अधिकता वा न्यूनता करलें॥

प्रातःकाल सूर्य उदय से पहिले उठ कर और परमात्मा का ध्यान करके, फिर जो २ काम उस दिन करने हों उन को सोच लेना चाहिये:—

शङ्काओं से रहित होना … …	आध घन्टा।
स्नान और व्यायाम … …	आध घन्टा।
नित्य नियम अर्थात् आत्मिक उन्नति के साधन…	आध घन्टा।
कलेवा … … …	पाव घन्टा।
घरू काम काज … …	आध घन्टा।
सामाजिक काम … …	पाव घन्टा।
अपना उद्यम … … …	दो घन्टा।
भोजन और आराम … …	एक घन्टा।
अपना उद्यम … … …	पांच घन्टा।
जलपान वा दोपहरी करना … …	पाव घन्टा।
बाहर घूमने को जाना … …	एक घन्टा।
घरू काम काज … …	एक घन्टा।
शङ्काओं से रहित होना … …	आध घन्टा।
ब्यालू अर्थात् सायङ्काल का भोजन …	आध घन्टा।
मित्रों इत्यादि से मिलना, समाचार पत्र इत्यादि पढ़ना परोपकार करना …	दो घन्टा।

थोड़े समय के लिये, परमात्मा का ध्यान और दिन भर के कामों के सोच विचार के पश्चात्, आराम करना अर्थात् शयन करना॥

विवाह।

जब कमाई का भले प्रकार प्रबन्ध होजावे, तो विवाह का सोच विचार होना चाहिये। उस समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि स्त्री की अवस्था पुरुष से न्यून से न्यून (३) तीन और

अधिक से अधिक (१५) पन्द्रह वर्ष कम हो, यह एक ऐसा नियम है, जिस पर चलने से बचपन और वृद्धावस्था का विवाह स्वयं रुक-जाना सम्भव है; और दोनों के गुण कर्म और स्वभाव की भले प्रकार छान बीन होजानी उचित है। गुण से प्रयोजन योग्यता, कर्म से प्रयोजन चाल चलन, और स्वभाव से प्रयोजन प्रकृति है॥

वैद्यक शास्त्र के अनुसार एक ही प्रकृति के स्त्री पुरुष से, जो सन्तति उत्पन्न होती है, वह निर्बल और रोगी होती है यदि पित्त और कफ़ प्रकृति वालों का विवाह हो तो सन्तति की वृद्धि और आरोग्यता के लिये, बहुत लाभदायक है। इस नियम के अनुसार यह भी उचित है, कि पति और पत्नी, जहां तक सम्भव हो, सम्बन्ध और निवास स्थान में बहुत समीप न हों अर्थात् दूर हों॥

विवाह के समय की प्रतिज्ञायें और उन के लाभ।

विवाह के समय, जो २ प्रतिज्ञायें स्त्री और पुरुष में होती हैं, वे दोनों को भले प्रकार समझ लेना चाहिये; और उन को नित्य प्रति स्मरण रखते हुए सदैव सचाई के साथ उन पर चलना चाहिये, जैसे पाणिग्रहण के समय, एक बड़ी प्रतिज्ञा यह होती है, कि स्त्री अपना तन, मन और धन पुरुष के, और पुरुष स्त्री के, अर्पण कर देते हैं जिस के हेतु, संपूर्ण आपस के बचनों पर बने रहने का यह भी एक बडा धर्म है, कि मन, बचन और काया से, पुरुष अपनी स्त्री पर, और स्त्री अपने पुरुष पर, सन्तोष रक्खे; और दोनों में परस्पर बहुत सचाई न्याय और प्रीति के साथ बर्ताव रहना चाहिये। पुरुष स्त्री को अपनी अर्द्धाङ्गी समझे, और स्त्री पतिव्रता धर्म में तत्पर रहै दोनों के मन आरसी की भांति स्वच्छ रहने चाहियें, किसी प्रकार की मलीनता मनों में नहीं आनी चाहिये। यदि दैव योग से किसी प्रकार की भूल किसी से होजावे, तो आंख चुराना उचित है यदि

ताड़ना करना आवश्यक ही समझा जावे तो वह ताड़ना बिना तिरस्कार और कडवे वचनों के प्रीति के साथ हो जिस घर में स्त्री और पुरुष का मन मिला हुआ होता है, और दोनों अपने २ धर्म को समझ कर उस पर चलते हैं वह घर स्वर्ग का नमूना बन जाता है ॥

उत्तम सन्तति उत्पन्न करने की रीति।

जिस प्रकार विद्या और धन इत्यादि पदार्थों के प्राप्त करने के उपाय हैं उसी प्रकार उत्तम सन्तति उत्पन्न की जासक्ती है। वात्-सायन आदि भरतखण्ड के ऋषियों ने ऐसी २ रीतियां निकाली हैं, जिन के जान्ने और वर्ताव करने से, मनुष्य जिस प्रकार की सन्तति उत्पन्न करना चाहे, कर सक्ता है ॥

रघुकुल अर्थात् महाराजा रामचन्द्रजी के वंश के राजा उत्तम सन्तति उत्पन्न करने के अभिप्राय से, ऋषियों की बतलाई हुई सारी रीतियां ठीक २ काम में लाते थे, जिस के कारण उन की सन्तति बहुत बलवान् और शूरवीर उत्पन्न होती थी ; सदैव आरोग्य रह कर संपूर्ण सुख प्राप्त करती हुई, पूरी आयुर्दा को पहुंचती थी ॥

धार्मिक पुरुषों के हितार्थ, थोड़ीसी रीतियों का संक्षेप वर्णन इस स्थान में करना उचित जान पड़ता है ॥

(१) विषय भोग में अत्यन्त लम्पट होकर, वीर्य को वृथा खोने के बदले, इस अमोल्य वस्तु को बड़ी सावचेती के साथ ठीक अवसर पर व्यय करना चाहिये। जितनी सावचेती कीजावेगी, उतना ही वीर्य अति प्रभाविक होगा। उचित है, कि जब स्त्री रजस्वला धर्म से निश्चिन्त हो, उस के पांचवें दिन से पन्द्रहवें दिन तक भोग किया जावे, परन्तु एक रात्रि में एक बार से

अधिक भोग संपूर्ण अवस्थाओं में वर्जित है, जिस दिन ऐसा विचार किया जावे, स्त्री को कई घन्टों पहिलें चिता दिया जावे। ऐसा करने से, स्त्री को उस विचार का बारम्बार स्मरण होकर, उस ओर पूर्ण रुचि होजावेगी। यदि लज्जा वा और किसी कारण से ऐसा न होसके, तो कोई मुख्य संकेत मान लिया जावे, जैसे फूलों का हार वा सुगन्ध का फूल दे दिया जावे। परन्तु ऐसा विचार वा संकेत रजस्वला धर्म के पीछें ही, काम में आना चाहिये ॥

प्रश्न—गर्म देशों में, स्त्री छोटी अवस्था में ही, रजस्वला होजाती है; भरतखण्ड में बहुधा ११ वा १२ वर्ष की अवस्था में यह चिन्ह प्रगट होजाता है, तो क्या उस समय में भोग करना अवश्य चाहिये, और उस्से उत्तम सन्तति होना सम्भव है ?

उत्तर—यदि उष्ण देशों में सर्द देशों की अपेक्षा यह चिन्ह शीघ्र उत्पन्न होता है, तो भी अधिक कारण इस का यह होता है कि कन्याओं को भोग सम्बन्धी बातें करने, सुने और देखने का अवसर मिलने से, उन में अधूरा वेग उत्पन्न होजाता है; और जिन को ऐसा अवसर नहीं मिलता है, वे चाहे कैसे हो उष्ण देश निवासी हों, १४, १५ वर्ष की अवस्था तक यह चिन्ह और इच्छा नहीं होती है, निदान अत्यन्त उष्ण देश में बाहर के गांवों की कन्यायें वा वे कन्यायें जिन को शिक्षा वा सत्सङ्ग उत्तम मिली है, १४, १५ वर्ष की अवस्था तक न तो रजस्वला होती हैं, और न उन को यह इच्छा होती है, इस कारण बनावटी रीति से उभारे हुए अधूरे वेग के चिन्ह-

प्रगट होने पर, उत्तम सन्तति उत्पन्न करने के लिये, भोग का उत्तम समय न समझना चाहिये ॥

(२) भोग के समय चित्त प्रसन्न, और सारा शरीर स्वच्छ और सुथरा होना चाहिये। उस दिन, ऋतु का निरूपण करके, शरीर को किञ्चित् अधिक समय तक वस्त्र से रगड़ कर स्नान करना उचित है, क्योंकि वीर्य का सम्बन्ध जल से अधिक है। उत्तम बलवर्द्धन और पाचक भोजन करना चाहिये, अवश्य करके सायङ्काल को दूध वा खीर जिस में बादाम, छुहारे, इलायची इत्यादि बल बढ़ाने वाली और पाचन दीपन वस्तुयें डाली जावें; और ऋतु फल, जो तुरन्त के तोडे हुए हों और खट्टे न हों, काम में लाए जावें। शयन शाला को पुष्पों और दूसरी सुगन्धित वस्तुओं से शुद्ध और रमणीय किया जावे। रात्रि के भोजन के एक प्रहर पश्चात्, भोग करने का विचार किया जावे। उस समय किसी प्रकार का भय, दुःख, लज्जा वा क्रोध इत्यादि दोष मन में न हों। एकाग्र चित्त होकर, और परमात्मा का ध्यान करके, जिस प्रकार की सन्तति की चाहना हो, अर्थात्, धर्मात्मा, विद्वान्, वीर वा बुद्धिमान्, उसी प्रकार का पुरुष और स्त्री दोनों को अपनी प्रकृति वा स्वभाव बना लेना चाहिये ॥

(३) भोग के समय पुरुष का दाहना और स्त्री का बायां स्वर चलना, और पुरुष का कभी २ स्वास का रोकना ऋषियों ने अच्छा माना है। बाईं करवट लेटने से, पुरुष का दाहना स्वर चलने लगता है; बिपरीत आसन बहुत हानिकारक समझा गया है। इसी रीति से उत्तम सन्तति के लिये, दोनों और पूर्ण वेग उत्पन्न होजाने के पहिले, भोग करना उचित

नहीं समझा गया है; और वात्सायन आदि ऋषियों ने पूर्ण वेग उत्पन्न करने के हेतु, स्तन, जंघा इत्यादि मुख्य स्थानों को मर्दन करना अच्छा बतलाया है। पूर्ण वेग की व्यवस्था के चिन्ह ये हैं, उद्वेग और चंचलता का होना, पसीना आना, वा शरीर का धूजना इत्यादि, और उन का वचन है कि इस व्यवस्था में पूर्ण सुख और उत्तम गर्भ स्थिति होसक्ती है, और इसी व्यवस्था के प्राप्त होने से स्त्री और पुरुष में सच्चा प्रेम और प्रीति उत्पन्न होना और बढ़ते रहना सम्भव है॥

(४) भोग के पश्चात्, शुद्ध होकर और दुग्ध इत्यादि पाचन दीपन वस्तुओं को काम में लाकर, स्त्री और पुरुष पृथक् २ सोरहैं, इसी को ऋषियों की बोल चाल में गर्भाधान संस्कार कहते हैं॥

प्रश्न—यदि ऐसी बलबर्द्धक और पाचन दीपन वस्तुयें न मिलसकें तो क्या करना चाहिये?

उत्तर—कम से कम केवल दूध ही पीलिया जावै, इस के विरुद्ध, कोई मादक वस्तु, अमल, मदिरा आदि कदापि नहीं काम में लाना चाहिये। गर्भाधान की रीति से गर्भ की स्थिति अवश्य ही होजाती है। गर्भ स्थिति के पीछें, जब तक बालक जन्म कर, एक वर्ष का न होजावै, स्त्री पुरुष का व्योहार उचित नहीं है। इस समय में स्त्री और बालक के खाने पीने और पहन्ने और रहवास का उत्तम प्रबन्ध करना उचित है इस हेतु से, कि किसी प्रकार के दुःख वा किसी और दोष का प्रभाव स्त्री के चित्त पर होकर, बालक को कोई हानि पहुंचने का कारण न होजावै॥

इस रीति और सावधानी से जो बालक उत्पन्न होते हैं, वे संसार में संपूर्ण सुख और बल प्राप्त करने के योग्य होते हैं। इसी रीति से महाराजा दशरथ के पुत्र महाराजा रामचन्द्रजी, राजा गाधि के पुत्र राज ऋषि विश्वामित्रजी, पराशर ऋषि के पुत्र बादरायण, जिन का प्रसिद्ध नाम वेदव्यासजी है, और व्यासजी के पुत्र शुकदेव मुनि इत्यादि महात्माओं का इस भरतखण्ड में जन्म हुआ, और जो २ काम उन्होंने किये, वे भारत वासियों से छिपे हुए नहीं हैं॥

निदान संपूर्ण गृहस्थियों का, अवश्य करके उन का जो अपने आप को धार्मिक समझते हैं वा धार्मिक बना चाहते हैं, यह धर्म है, कि ऊपर लिखी रीति से उत्तम से उत्तम सन्तति उत्पन्न करें, कि वे अपने तेज, प्रताप, बुद्धि और पराक्रम के बल से इस संसार के दुःखों का कम करें और सुखों को बढ़ावें॥

प्रथम शङ्का ।

इन दिनों में मनुष्य विषय भोग की ओर अधिक प्रवृत्त हैं, बहुधा विवाह होने से पहिले ही वीर्य को नाश करते रहते हैं, फिर विवाह के पश्चात् बहुत काल तक नित्य प्रति दो २ बार वा इससे भी अधिक बार भोग करते रहते हैं, गर्भ के दिनों में बहुधा प्रसव तक नहीं चूकते, और बालक के जन्म के पीछे भी बहुधा तत्काल इसी में तत्पर होजाते हैं, ऐसे मनुष्यों से रजस्वला धर्म की बाट देखते हुए सदा एक २ महीने के लिये रुकना, और फिर नौ महीनों तक गर्भ स्थिति के समय रुकना, और एक वर्ष तक प्रसव के पीछे रुकना, बहुत कठिन है, इस हेतु ऋषियों के समय की इस रीति के विरुद्ध, कोई वर्त्तमान समय के अनुकूल, सुलभ और निभने योग्य रीति बतलाना चाहिये॥

समाधान।

जब से यह सृष्टि रची गई है और जब तक रची रहैगी, धर्म के स्वाभाविक नियम एक ही रीति पर रहैंगे, सृष्टि के नियम, चन्द्र और सूर्य का घूमना, ऋतुओं के अपने २ समय पर आना, इत्यादि जैसे ऋषियों के समय में थे, वैसे ही अब भी हैं। इसी प्रकार जो धर्म प्राचीन समय में था वह अब भी बर्त्तने में आसक्ता है और आना चाहिये ॥

जो कोई सच्चे मन से धर्म को ग्रहण करने का यत्न करता है, उस को स्वयं धीरे २ सुगमता होती जाती है; और धर्म का फल सुख प्राप्त होने के कारण रुचि और साहस अधिक होता जाता है, परन्तु जो कोई असावधानता और उदासीन वृत्ति से धर्म का पालन नहीं करता, तो धर्म उस से अधिक दूर होता जाता है; और उस के ग्रहण करने में अधिक कठिनाइयां दीख पड़ती हैं, निदान जैसे धर्म पर चलने वाले को धर्म का तोड़ना अप्रिय लगता है, उसी प्रकार धर्म को उल्लंघन करने वाले को धर्म पर चलना कठिन दीख पड़ता है। इसी नियम के अनुसार धर्म के मुख्य अङ्ग ब्रह्मचर्य्य सेवन करने वालों के विचार शुद्ध और वीर्य पुष्ट होकर, उन में रुकावट की शक्ति इतनी अधिक होजाती है, कि जब तक उचित समझें भोग से रुके रहैं और जिन्होंने ब्रह्मचर्य्य सेवन नहीं किया हो, उन के विचार अशुद्ध और वीर्य पतला और निर्बल होकर, जैसे अग्नि में घृत डालने से अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है, वैसे ही विषय भोग में सुख की इच्छा करके, वे जितने लम्पट होते हैं, उतनी ही झूठी और अधूरी इच्छा विषय भोग की उन में अधिक वेग से उत्पन्न होती है, दिन प्रति दिन आनन्द कम होता जाता है, आरोग्यता बिगड़ती जाती है, और अन्त में नपुंसक होजाते हैं ऐसे विषई पुरुषों के प्रथम तो

सन्तान होती ही नहीं यदि होती है तो मृत वा बहुत निर्बल अङ्ग और जन्म रोगी होती है। ये हानियां तो धर्म से विरुद्ध विषय भोग की साधारण व्यवस्था में होती हैं, किन्तु गर्भ स्थिति में इस से भी अधिक हानियों का भय है जैसे गर्भ पातन, बालक के चोट आने का वा स्त्री की आरोग्यता बिगड़ जाने का भय है, और बच्चे का आहार बिगड़ जाता है, और पोषण के विभाग कम रहजाते हैं। इसी प्रकार बालक के जन्म के पीछें, यदि भोग शीघ्र किया जावे, तो स्त्री का दूध बिगड़ जाता है, जिस के कारण बालक को बहुत हानि पहुंचती है निदान अपनी आरोग्यता, स्त्री की आरोग्यता और बालक की आरोग्यता का ध्यान रख कर धर्म पर चलने वालों और धर्म को ढूंढ़ने वालों को और उत्तम सन्तति के अभिलाषियों को, अति आवश्यक है, कि मिथ्या सुखदायक भोग से बचें। सोच विचार कर देखा जावे तो यह ऋषियों का मत उन सब मतों से अत्युत्तम है। जो आज कल के भक्त संसार के दूरदर्शी लोग संसार की प्रजा को दिन २ बढते देख कर, उस को कम करने के विचार काम में लारहे हैं, परन्तु बस्ती और अत्याचार दोनों बढ़ते ही चले जाते हैं॥

दूसरी शङ्का।

प्राचीन ऋषियों का धर्म सांसारिक नियम और वैद्यक विद्या के अनुकूल है वा नहीं? और यदि है तो बू अली सेना इत्यादि हकीमों का वचन है, कि जब विषयों के विचार के बिना यह वेग उत्पन्न हो, तो उस को सच्चा वेग समझ कर पूरा कर लेना उचित है, और इस में यह विचार न किया जावे कि वेग कितने समय पीछें उत्पन्न हुआ निदान यदि साधारण व्यवस्था में महीने के भीतर वा गर्भ स्थिति में और बालक के जन्म होजाने से आप की अवधि के पहिले, भोग की सच्ची इच्छा उत्पन्न हो तो क्या करना चाहिये॥

समाधान ।

ऋषियों ने असंख्य प्रयोग और मन की शक्तियों के जगाने के पश्चात्, सृष्टि के नियमों की सहायता से धर्म को प्रगट किया था और आयुर्विद्या उन के धर्म का एक अङ्ग समझा गया है, निदान ऋषियों का धर्म इन दोनों के अनुकूल है, परन्तु जिन पुरुषों का वर्णन तुमने प्रथम शङ्का में किया है अर्थात् जिन्होंने बाल्यावस्था में वीर्य को नष्ट किया हो, वा विवाह के पश्चात् विषय भोग में अत्यन्त लम्पट रहे हों, उन को वा उन की निर्बल सन्तति को विषय भोग की सच्ची इच्छा उत्पन्न होनी असम्भव है, जैसे वृक्ष पर पके हुए आंव में एक मुख्य प्रकार का स्वाद और उत्तम रस होता है, परन्तु कच्चे आव में न वैसा रस होता है न स्वाद, यदि देखने और कहने में दोनों आंव ही हैं; इसी प्रकार विषई और धार्मिक पुरुष में अन्तर समझना चाहिये, यदि दिखावट में दोनों एकसे हैं। विषई पुरुषों को कम से कम एक वर्ष तक, ऐसे महात्माओं का, जिन का बचन और कर्म एकसा है, सत्सङ्ग करके और उन की शिक्षा के अनुसार बहुत धैर्य और हिम्मत के साथ चलना चाहिये, तब उन को विषय की सच्ची इच्छा का अनुभव होकर, ज्ञात होगा, कि वीर्य की नियमानुसार जितनी रक्षा की जाती है, उतनी ही देर में विषय की सच्ची इच्छा उत्पन्न होती है, परन्तु थोड़े २ समय में अधूरा वेग उत्पन्न होकर जो मनुष्य को अधीर करता है, वह भोग की सच्ची इच्छा कदापि नहीं समझना चाहिये॥

तीसरी शङ्का ।

यद्यपि सिद्धान्त मत से ऊपर लिखी रीति कुछ एक अच्छी जान पड़ती है, परन्तु व्यवहार में प्रत्यक्ष जान पड़ता है, कि जिस प्रकार वायु जल और अन्न बिना प्राण नहीं रहसके, उसी प्रकार इन तीनों

के पीछे भोग का होना आवश्यक है, निदान कोई ऐसा उपाय अर्थात् साधारण उपचार बतलाना चाहिये जिस के द्वारा निर्बल वीर्य वाले भी, अधूरे वेग को रोक कर, नियत काल तक बचसकें॥

समाधान।

साधारण उपाय नीचे लिखे जाते हैं। मुख्य २ दशाओं में किसी अभ्यासी महात्माओं से सम्मति लैना चाहिये॥

(१) जहां तक होसके एकान्त में और विपरीत काल में स्त्री पुरुष आपस में न मिलें॥

(२) जैसे दुर्गन्ध इत्यादि पर दृष्टि पड़जावे, तो चलती आंख से उस को देख कर, उस के प्रभाव से बचने का उद्योग किया जाता है, इसी प्रकार से यदि दैव योग करके, विषयों का वर्णन कान में पड़जावे, वा किसी पुस्तक में लिखा दिखलाई देजावे, वा स्त्री पुरुष का एकान्त मे मिलाप होजावे, वा एक दूसरे के शरीर के अवयवों पर दृष्टि पड़जावे, तो उस ओर रुचि के साथ अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये; जिस्से उस का चिन्ह मन पर अधिक न जम सके। कुदृष्टि से देखना भी धार्मिक पुरुषों की मति के अनुसार एक प्रकार का भोग है॥

(३) सङ्कल्प अर्थात् विचार को भी यथा शक्ति विषयों की ओर न जाने देना चाहिये। इन्द्रियों और मन को उत्तम मनोहर और पवित्र बातों में इतना लगायें रखना चाहिये, कि उन को दूसरी ओर जाने का अवकाश ही न मिलसके। सूक्ष्म दृष्टि वाले महात्मा विषय के सङ्कल्प को भी एक प्रकार का भोग कहते हैं॥

(४) व्यायाम नित्य प्रति इतना किया जावे कि शरीर अवश्य करके दोनों बाहु भले प्रकार थक जावें॥

(५) अपनी प्रकृति का ध्यान रख कर, अधिक गर्मी करने वाली और खट्टी वस्तुयें न खाई जावें और अधिक गर्म दूध भी न पिया जावे ॥

(६) साधारण आहार शाक, दाल इत्यादि का स्वभाव डालना चाहिये, बलबर्धक और चिकनी चुपड़ी वस्तुयें बहुधा बहुत काल तक नहीं खाना चाहिये ॥

(७) अपनी श्रद्धा के अनुसार आठवें वा पन्द्रहवें दिन वा महीने पीछें ब्रत करने का स्वभाव डालना चाहिये, इस से वीर्य की चंचलता दबी रहती है ॥

(८) अभ्यासिक महात्माओं को ढूंढ़ कर उन का सत्सङ्ग करे, और जितना अधिक समय सत्सङ्ग में लगाया जासके, अच्छा है। २४ घन्टों में से कम से कम एक घन्टा अवश्य सत्सङ्ग में लगाना चाहिये, जिस्से उस का प्रभाव बाकी २३ घन्टों तक बना रहै। यदि उत्तम सत्सङ्ग न मिलसके तो सच्चे महात्माओं के बनाये हुए धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ वा विद्याओं के प्रकरण की पुस्तकें, जिन में नेष्ट बातें वा अपवित्र विचार न हों, पढ़ने में कम से कम एक घन्टा लगाना चाहिये; और जो २ उपदेश अपने अनुसार मिलें, उन पर सच्चे मन से चलना आरम्भ कर देना चाहिये ॥

(९) यदि रहनगत वा उद्यम इत्यादि के कारण से ऊपर लिखे उपाय काम में न लाये जासकें, तो उस रहनगत को उचित रीति से बदलना चाहिये ॥

(१०) सब से बड़ा उपाय यह है, कि सन्तोष का स्वभाव डालना और उस को बढ़ाते रहना चाहिये, निदान एक साधारण दृष्टान्त इस बात का लिखा जाता है, अफ़ीमची मनुष्य जब

बन्दीगृह में डाला जाता है, तो उचित और अनुचित उपाय काम में लाकर, उद्योग करता है, कि किसी प्रकार से आफू मिले और निष्फलता की दशा में बहुत अप्रसन्न और बहुधा रोगी भी होजाता है, परन्तु अन्त में परवश होजाने पर, सन्तोष और सहन करता है, जिस के कारण कुछ काल में उस का आफू खाने का स्वभाव छूट जाता है, इसी प्रकार जब कोई मनुष्य विना कैद इत्यादि की आधीनता के केवल अपने दृढ़ विचार के ही बल से किसी अवगुण को छोड़ने और गुण को ग्रहण करने के लिये सन्तोष और सहन का स्वभाव डालता है, तो थोड़े ही समय में सफलता प्राप्त कर लेता है। धार्मिक पुरुष को भी इसी प्रकार विषय रूपी कोट में बन्दी रखना चाहिये, थोड़े दिनों में सफलता प्राप्त होजावैगी केवल सच्चा और पक्का विचार होना चाहिये॥

चौथी शङ्का।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य्य की अवस्थायें नियत कीगई हैं, इसी प्रकार विषई पुरुषों के स्वभाव को बदलने के लिये भी इस नियम में पद नियत किये जासक्ते हैं वा नहीं ?

समाधान।

उत्तम अधिकारी को तो ऊपर लिखे नियम और उस के सम्बन्धी रीतियों पर चलना चाहिये, और संपूर्ण मनुष्यों को उत्तम अधिकारी ही बना चाहिये। जिन को बचपन से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक धर्म पालन करने का अवसर मिलेगा वे सुगमता से इस रीति पर चल कर लाभ उठासकेंगे, और वर्त्तमान समय के

लोग जिन्होंने इस नियम को अनजाने तोड़ कर, स्वभाव डाल लिया हो उन को क्रम से सुधार करना चाहिये। उन के लिये नीचे लिखे अनुसार तीन पद नियत किये जासक्ते हैं ॥

(१) मध्यम अधिकारी को उद्योग करना चाहिये, कि महीने में दो बार से अधिक भोग न करे। गर्भ स्थिति के चार महीने पीछें सर्वथा अलग रहे और उस समय तक अलग रहे जब तक बालक छः महीने का न होजावे ॥

(२) कनिष्ठ अधिकारी को उचित है, कि महीने में तीन बार से अधिक भोग न करे। गर्भ स्थिति के पांच महीने पीछें सर्वथा अलग रहे और बालक चार महीने का होजावे जब तक रुका रहे ॥

(३) अत्यन्त कनिष्ठ अधिकारी को महीने में चार बार से अधिक भोग न करना चाहिये। गर्भ स्थिति के छः महीने पीछें सर्वथा अलग रहे और बालक तीन महीने का होजावे तहां तक अवश्य रुका रहना चाहिये। इससे अधिक नियम तोड़ने को अधर्म समझना चाहिये, और उस रीति से जो सन्तति उत्पन्न होती है वह बहुधा शूद्र पद और चाकरी के लायक़ होती है और ऐसे ही काम करती है ॥

पांचवीं शङ्का।

इस प्रकार का निर्णय वर्त्तमान समय की धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में से किसी मुख्य पुस्तक में कम पाया जाता है ॥

समाधान ।

जब शान्ति और स्वतंत्रता, विद्या का प्रचार और उत्तम उपदेशकों का प्रागट्य होता है, तो अविद्या रूपी शत्रु और उस को

दुष्ट मर्यादा रूपी सेना को नष्ट करने के लिये इस प्रकार का निर्णय करना आवश्यक होता है, क्योंकि ऐसे निर्णय से धर्म की उन्नति होकर, मनुष्य मात्र को लाभ पहुंचता है। दीर्घ दृष्टि वाले महात्मा सदैव वर्त्तमान कुरीतियों पर बात चीत करना और उन के दूर करने का उपाय बतलाना सच्चा परोपकार समझते रहे हैं, क्योंकि बुराई को छिपाने और उस्से आंख चुराने से, वह जड़ पकड़ती है और प्रगट करने और उस पर बात चीत करने से, वह निर्बल होकर नष्ट होजाती है। प्राचीन समय के महात्मा इस प्रकार का उपदेश यथा योग्य बहुधा मुख द्वारा ही किया करते थे, और संकेत से पुस्तकों में भी लिखते थे, वैसे महात्मा रहे नहीं और उन की पुस्तकें पढ़ने का प्रचार नहीं रहा, जिस का फल यह है, कि बहुधा बड़े मनुष्यों के बालक दुराचारी और अज्ञान नौकरों के द्वारा और कङ्गालों के बालक दूसरे अपने बराबरी वाले दुराचारी बालकों के द्वारा। बहुत ही छोटी अवस्था में ब्रह्मचर्य्य की महिमा न जानते हुए, वीर्य को नष्ट करने लगते हैं, और फिर जन्म भर अपमान से खिसयाने होकर पछताते रहते हैं ॥

बालक का उत्पन्न होना ।

पूर्ण गर्भाधान रीति से जो सन्तति उत्पन्न होती है, उस के प्रसव के समय जच्चा को बहुत कम कष्ट होता है, और पीछे से पालने में भी बहुत सुगमता होती है, क्योंकि वह सन्तान आदि से ही आरोग्य, बुद्धिमान् और बलवान् होती है ॥

गर्भाधान रीति को उल्लंघन करने से, जो सन्तति होती है, उस के प्रसव के समय बड़ा कष्ट और पालने में अति क्लेश होता है क्योंकि वह सन्तान आदि से ही जन्म रोगी और निर्बुद्धि होती है, और उस रीति के विरुद्ध जितने कर्म किये जाते हैं उतना ही कष्ट और क्लेश अधिक होता है ॥

बालक का जन्म शुद्ध स्थान में होना चाहिये, जो अधिक हवादार ठण्डा वा गीला न हो, परन्तु ऐसा बन्द भी न हो, कि जिस में कोई भी छिद्र न हों जिन में होकर प्रकाश वा निर्मल हवा आसके, और धुवां वा ख़राब वायु निकल सके, तङ्ग और अंधेरे मकान में कोयलों के बहुत जलाने और उस में भीड़ और शोर का होना और फिर बहुत काल तक उस को मैला रखना जच्चा और बच्चे दोनों को आरोग्यता को हानिकारक है। ऐसे समय में, यदि जच्चा वा बच्चे को कोई मस्तक का रोग वा क्षोभ होजावे, जैसा कि बहुधा होजाता है, तो समझदार वैद्य के द्वारा उपाय कराना उचित है। जंत्र मंत्र में वृथा समय व्यतीत न करना चाहिये॥

पुत्र और पुत्री दोनों को एक दृष्टि से देखना चाहिये।

जब बालक का जन्म हो, तो चाहे वह पुत्र हो वा पुत्री, दोनों को एकसा प्यार और एकसा लालन पालन करना उचित है। यह नहीं चाहिये, कि पुत्र हो तो अत्यन्त प्रसन्नता प्रगट कीजावे, और पुत्री हो तो शोक; और उस निरपराध बच्ची और उस की माता को तिरस्कार और तुच्छ दृष्टि से देखना आरम्भ किया जावे॥

कन्याओं की बढ़ाई और उन की अवस्था।

एक महात्मा का वाक्य है, कि जिस देश जाति और कुल में, जो कन्याओं को प्रीति और आदर पूर्वक देखते हैं, और उन के विद्याभ्यास और पोषण में पूरा परिश्रम उठाया करते हैं, उन को ही संसार के संपूर्ण सुख प्राप्त होते हैं यह महात्मा कन्याओं की अवस्था के चार विभाग करके, उन के नाम कन्या धर्म, स्त्री धर्म, मातृ धर्म और बिधवा धर्म रखते हैं, जिन का वर्णन इस स्थान में करना उचित जान पड़ता है॥

(१) कन्या धर्म, जन्म से विवाह तक कन्या धर्म रहता है। इस अवस्था में कन्या को देवी रूप समझ कर, अति प्रीति और सत्कार से उस का पालन करना चाहिये, और समय की चाल ढाल के अनुसार; अत्यन्त परिश्रम और उद्योग से उस को विद्या पढाना चाहिये। कन्या को भी इस अवस्था में माता पिता और अध्यापका की इच्छानुसार चल कर, उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य्य सेवन करना चाहिये॥

(२) स्त्री धर्म, विवाह होने से मृत्यु पर्यन्त यह धर्म रहता है, इसी के अन्तर्गत मातृ धर्म और विधवा धर्म भी उत्पन्न होजाते हैं। इस अवस्था में स्त्री को माता, पिता और अध्यापका के स्थान में अपने पति को अपना सच्चा स्वामी समझ कर, उस की आज्ञा पालन करते हुए, अपने पतिव्रत धर्म को पालन करना चाहिये, और अति उत्तम, सूर्मा और बलवान्, धर्मात्मा और बुद्धिमान् सन्तान उत्पन्न करने चाहियें॥

(३) मातृ धर्म, इस अवस्था में स्त्री धर्म के अतिरिक्त बालकों को उत्तम शिक्षा देना भी, माता का मुख्य धर्म है, क्योंकि जैसे आदि में ही वृक्ष की शाखा जिस ओर झुकादी जावे, झुक जाती है इसी प्रकार बाल्यावस्था में ही, उत्तम धर्म शिक्षा देने से बच्चे, सच्चे और पूरे धार्मिक बन सक्ते हैं और इसी हेतु माता को एक सौ (१००) अध्यापकों के तुल्य कहा गया है; जितने धार्मिक पुरुष और बड़े नामी मनुष्य हुए हैं उन्होंने बहुधा अपनी माता से ही उत्तम शिक्षा पाई थी॥

(४) विधवा धर्म, जब पति मर जाता है, तो यह धर्म प्रारम्भ होता है; इस अवस्था में छोटे बच्चे हों तो, उन को पालना मुख्य धर्म समझना चाहिये, और नहीं तो, अपने जन्म को धर्म के

जावे, पालन करने, और प्रचार करने के लिये, बलिप्रदान कर देना चाहिये॥

बालकों की शिक्षा।

पुत्र और पुत्रियों को सम दृष्टि से देखते हुए, माता, पिता को उन के नाम सुखोच्चार्य, उत्तम और अर्थ सहित रखना चाहिये, क्योंकि जैसा नाम होता है, उस का प्रभाव भी थोड़ा वा बहुत मनुष्य के चाल चलन पर, अवश्य पड़ता है। उन को हठ करना सिखलाना वा अनुचित लाड़ और बुरी गालियां देना सिखलाना वा बारम्बार धमकाना और डराना, कदापि नहीं चाहिये॥

बालकों के सन्मुख माता, पिता और दूसरे सम्बन्धियों को, अपना चाल चलन उत्तम रखना चाहिये, क्योंकि उन में अनुकरणता अर्थात् दूसरों को करते हुए देख कर, वैसा ही करने की शक्ति अधिक होती है। वे जैसा औरों को करते देखते हैं वैसा ही करने का उद्योग करते हैं और करने लगते हैं॥

गाली गिलोच, अयोग्य पुनरुक्ति, बुरी प्रकृति, जैसे मक्खी इत्यादि जीवों को पकड़ना और मारना, नाक में उंगली डाल कर मैल निकालना, शरीर के मुख्य २ स्थानों गर्दन इत्यादि को हिलाना वा खुजाते रहना, जहां बैठना वहां तृण तोड़ कर वा पत्तों को फाड़ कर कचरा फैलाना, पृथ्वी पर रेखा इत्यादि खेंचते रहना, केशों को रूखा और उलझा हुआ रखना, दांतों को कुरेदते रहना वा कानों का मैल निकालते रहना, थूकते वा डकारते रहना, उंगलियों को कटकाना इत्यादि कर्मों से स्वयं भी बचना और बालकों को भी बचाना चाहिये। जब बच्चों से कोई काम करने को कहाजावे, तो विचार कर लेना चाहिये, कि वे उस काम को करने की योग्यता

और शक्ति रखते हैं वा नहीं। जिस को वे न कर सक्ते हों, उस काम के करने के लिये उन को कदापि नहीं कहना चाहिये। जब ऐसा काम जिस को वे कर सक्ते हों, कराया जावे और वे उस को न करें, अथवा उत्तमता से न करें, तो उचित ताड़ना करके वह काम करा लेना चाहिये इस्से आज्ञाकारी होने का स्वभाव सीखेंगे, और आज्ञा उल्लंघन करने की बुरी प्रकृति से बचे रहैंगे। यदि अजान कोई भूल बच्चे से होजावे, तो मार पीट नहीं करना चाहिये॥

यदि बालक किसी अनुचित बात पर हठ करे, तो धमका कर वा धोका देकर, उस को भुलाना और हठ न करने दैने के स्थान में उस को नर्मी और प्रीति के साथ स्पष्ट और उचित रीति से कारण बतला कर, उस को हठ नहीं करने दैना चाहिये॥

सब से उत्तम शिक्षा जो बालकों को दैनी चाहिये वह यह है, कि वे संपूर्ण अवसरों पर सच बोलने का उद्योग करें, और झूठ बोलने को महापाप समझ कर, उस्से डरें। उन से सत्यव्रत धारण करने का स्वभाव डलवावें, अर्थात् आठवें वा पन्द्रहवें दिन एक दिन और रात में पक्का प्रण करके वे सच ही बोलें। परीक्षा के समय सच बोलने वाले बालकों का उत्साह बढ़ाना चाहिये। जब बालक पांच वर्ष की अवस्था से बड़ा होजावे, तो धीरे २ संपूर्ण धर्मों, शारीरिक, मानसिक आदि की शिक्षा दैनी चाहिये॥

प्रश्न—बालकों को परमात्मा का नाम जपना और उस की प्रार्थना करने की शिक्षा नहीं बतलाई गई, क्या उन को बचपन से ही प्रार्थना इत्यादि में लगाना, उन की आगामी अवस्था में धार्मिक बनाने के लिये, लाभदायक नहीं है?

उत्तर—बालकों के लिये, शारीरिक और मानसिक धर्म का पालन करना ही अति आवश्यक समझना चाहिये। जैसे २ वे शारीरिक धर्म के मुख्य साधन व्यायाम के द्वारा, उत्तम विद्या सीखते जावेंगे, वैसे ही उन की आत्मिक शक्तियां स्वयं भले प्रकार जागनी आरम्भ होंगी और उस समय वे परमात्मा की अत्यन्त सूक्ष्म और निराकार शक्ति को जानने और आदर करने के योग्य होवेंगे। यदि आत्मिक शक्तियों के जागने से पहिले तोते की भांति उन को परमात्मा का नाम और प्रार्थना बतलाये जावेंगे और वे उन का अनुभव किये बिना रटेंगे, तो उन को सत्य प्रेम नहीं आसकेगा वा स्वाभाविक समय से पहिले आत्मिक शक्तियां बहुत दुर्बलता के साथ उत्पन्न होनी आरम्भ होंगी और शीघ्र ही कुम्हला जावेंगी॥

माता पिता के साथ बालकों का धर्म्म।

जैसे बालकों को उत्तम शिक्षा देना माता पिता और अध्यापक का धर्म है, इसी प्रकार बालकों के धर्म भी हैं, जो उन को माता पिता के साथ बर्त्तने चाहियें। जिन में से मुख्य ये हैं, कि बालक सदैव उन के साथ सच्ची प्रीति और पूर्ण आदर के साथ बर्ताव करें और वृद्धावस्था में उन का पोषण और आज्ञा पालन करते रहें। कन्याओं को अपने माता पिता की भांति सास खसुर इत्यादि का भी आदर और सेवा करना, अपना धर्म समझना चाहिये और सास इत्यादि को भी उचित है, कि अपनी बहुओं को बेटियों के समान प्रीति और सहानुभवता का बर्ताव करना चाहिये॥

प्रेम गृहस्थ धर्म का मुख्य अङ्ग है ।

यह संक्षेप के साथ गृहस्थ धर्म के कर्म लिखे गये हैं, इन सब को प्रेम की चाशनी के साथ काम में लाना चाहिये । जैसे शारीरिक धर्म में व्यायाम, मानसिक धर्म में ब्रह्मचर्य और आत्मिक धर्म में उपासना, मुख्य साधन हैं, इसी प्रकार गृहस्थ धर्म में, प्रेम को समझना चाहिये । प्रेम से प्रयोजन सच्ची प्रीति से है जहां सच्चा प्रेम होता है, वहां किसी प्रकार की खेंचाखेंची और राग द्वेष नहीं होता है यदि दैवाधीन हो भी जावे, तो प्रेम की रज्जु ऐसी दृढ़ है, कि उस को कोई विपरीत वायु, चाहै कैसे ही बेग से चलती हो, कदापि नहीं तोड़ सकी । जैसे छोटे २ परमाणु के मिलने से पृथ्वी बनी है और संपूर्ण काम नियम पूर्वक कर रही है, इसी प्रकार से कई मनुष्यों का मेल होकर गृहस्थ बनता है और प्रेम के आकर्षण से सारे सुख प्राप्त होते हैं एक कवि का वाक्य है :—

जहं है प्रेम सत्य अरु न्याय ।
वहां विघ्न कोई नहिं आय ॥

प्रथम विभाग।

पांचवां अध्याय।

सामाजिक धर्म्म।

सामाजिक धर्म्म की व्याख्या।

गृहस्थ धर्म की संपूर्ण जातियों के योग्य और बहुदर्शी मनुष्यों का एकत्र होकर, अपने सब के स्वार्थ और लाभ पर सोच विचार करके जो २ नियम ठहराते हैं उस को सामाजिक धर्म कहते हैं॥

शारीरिक धर्म पालन करने से शरीर की आरोग्यता उत्तम होती है परन्तु उस्से अधिक आवश्यक मानसिक धर्म है जिस के द्वारा मन और इन्द्रियां नियम में रहती हैं। मानसिक धर्म से अधिक आवश्यक आत्मिक धर्म है उस्से आत्मा की जो शरीर का स्वामी है, असंख्य शक्तियां यथा योग्य प्रगट होती हैं। इन तीनों धर्मों का प्रत्येक मनुष्य की व्यक्ति से सम्बन्ध है और इन तीनों धर्मों को गृहस्थ धर्म से सहारा मिलता है, जिस में ऊपर लिखे तीनों धर्मों को पालन करने वाले कई मनुष्य होते हैं और इसी हेतु गृहस्थ धर्म पहिले तीनों धर्मों से अधिक आवश्यक है और गृहस्थ धर्म की उन्नति सामाजिक धर्म के द्वारा भले प्रकार होसकती है, इस कारण सामाजिक धर्म सांसारिक संपूर्ण धर्मों से अधिक श्रेष्ठ और आवश्यक समझ कर प्रत्येक मनुष्य को इस धर्म की उन्नति में सच्चे मन से उद्योग करना चाहिये। जिस जाति में सामाजिक धर्म भले प्रकार पालन किया जाता है

उस जाति में यदि कोई २ मनुष्य विपरीत भी चलता है तो विशेष हानि नहीं होती और जिस जाति में सामाजिक धर्म पालन करने का उत्तम प्रबन्ध नहीं होता है उस जाति में प्रत्येक चाहै कितने ही योग्य और भले मनुष्य हों वे अपने तईं और अपनी जाति को जैसा चाहिये वैसा लाभ नहीं पहुंचा सक्ते ॥

जिस प्रकार सामाजिक धर्म संपूर्ण लौकिक धर्मों में अत्यावश्यक है उसी प्रकार उस की वृद्धि के लिये अति धार्मिक, विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुषों की आवश्यकता है उन बुद्धिमान् पुरुषों को उचित है कि सोच विचार के साथ निष्पक्ष और स्वार्थ रहित होकर अहर्निश जाति उन्नति की साधारण रीतियां सोचते रहैं, यह नहीं कि थोड़ेसे अनभिज्ञ युवा अवस्था वाले लौकिक लालसाओं से भरे हुए किसी समय में एकत्र होकर व्याख्यान देलें वा नेत्र मूंद कर तोते की भांति याद की हुई प्रार्थना करलें और समझलें कि यही सामाजिक उन्नति है ॥

सामाजिक उन्नति के लिये देश के संपूर्ण धार्मिक, विद्वान्, बुद्धिमान्, विचक्षण, धनाढ्य, कुलप्रसूत, प्रतिष्ठित, वृद्ध सज्जनों और प्रत्येक प्रकार के गुणवान् पुरुषों में से एक पूर्ण संख्या छांट लैनी उचित है और यह छांट प्रत्येक वर्ष वा तीसरे वर्ष वा पांचवें वर्ष फिर से होनी चाहिये ॥

सामाजिक उन्नति की सफलता और वृद्धि की रीतियां ।

सामाजिक उन्नति के लिये जितने साधन सहित विद्वान् सच्चे उत्साही और पूर्ण पराक्रमी अधिक एकत्र होते हैं उतनी ही अधिक सफलता होती जाती है ॥

सामाजिक उन्नति की सफलता के हेतु यह भी आवश्यक समझना चाहिये कि एक पब्लिक् ओपीनियन् अर्थात् सर्व जनिक लोक मत स्थापित किया जावे। पब्लिक् ओपीनियन् जितनी बलवान् की जावेगी और उस का जितना आदर किया जावेगा उतनी ही भले प्रकार से सामाजिक उन्नति होसकेगी और इस के द्वारा असंख्य लाभ प्राप्त होंगे॥

पब्लिक् ओपीनियन् को दृढ़ करने की साधारण रीति यह है कि जब कोई मनुष्य वह चाहे कैसे ही छोटे पद का क्यों न हो, कोई उत्तम काम करे तो उस का पूरा सन्मान किया जावे। इस से औरों को भी वैसे ही कार्य करने की बांच्छा होगी और जब कोई मनुष्य वह चाहे कैसा ही बड़ा क्यों न हो, कोई अनुचित काम करे तो तुरन्त उस के लिये कोई ऐसा प्रबन्ध सोचा जावे कि जो उस के धन, अधिकार, पहुंच इत्यादि के प्रभाव पर भी उस को लज्जित करने वाला हो, परन्तु वह प्रबन्ध ऐसा भी न हो जिस्से वह पुरुष सदैव के लिये निर्लज्ज होजावे। इस प्रकार प्रारम्भ में ही पकड़ होने से प्रत्येक प्रतिष्ठित मनुष्य को भी भय रहैगा और वह चाहै जितने बड़े पद वाला क्यों न हो सामाजिक उन्नति के नियमों के विरुद्ध काम करने का साहस न करसकेगा और सारी जाति में कोई बुराई न फैल सकेगी॥

यदि प्रारम्भ में बड़े मनुष्यों के अनुचित कामों से यह समझ कर आंख चुराई जाती है कि सर्व लोगों के सामने उन की बुराई होगी वा वे बड़े मनुष्य अलग होजावेंगे तो सामाजिक उन्नति की हानि होगी और छोटे पद वालों की उत्तम सेवाओं से यह विचार कर आंख फेरली जाती है कि उन का अधिक नाम होने से वे प्रतिष्ठित पुरुषों से बढ़ जावेंगे जिस्से वे प्रतिष्ठित पुरुष अप्रसन्न होंगे तो उत्तम

सेवा करने वालों का मन मुरझा जाता है और उन का निरादर देख कर दूसरे मनुष्य भी निरुत्साही होजाते हैं, वृद्धि नहीं होने पाती, सत्पराक्रम नष्ट होजाता है और पब्लिक् ओपीनियन् निर्बल और निकम्मी होजाती है ॥

सामाजिक उन्नति में अत्यन्त गुणवान् और दीर्घ दृष्टि मनुष्य होने चाहियें और प्रत्येक व्यवहार में उन को सत्यता, न्याय और निष्पक्षता के साथ वाद विवाद करना चाहिये, परन्तु जब बहु सम्मति से कोई बात स्थापित होजावे तो उस को, चाहे वह व्यवस्था उन के मत के विरुद्ध भी हो, तो भी मान लेना उचित है, निदान अपनी सम्मति निर्भयता से देना, औरों की सम्मति को सोच विचार और धीरज से सुनना, पंचायत की व्यवस्था को मान लेना पब्लिक् ओपीनियन् के नाम को बढ़ाते रहना, उस को सदैव दृढ़ करना और उस का आदर करते रहना, यह सब बातें सामाजिक उन्नति की सफलता और वृद्धि की रीतें हैं ॥

जैसे शरीर रूपी नगर में आत्मा रूपी राजा वीर्य के द्वारा भले प्रकार राज्य कर सक्ता है इसी प्रकार से सामाजिक उन्नति रूपी वृक्ष को धन रूपी जल से जितना अधिक सींचा जाता है उतना ही दृढ़ और हरा भरा होकर अधिक फलदायक होता है ॥

जाति व्यवहार को धर्म के अनुसार नियत करना ।

उन मनुष्यों का जिन के सिर पर सामाजिक उन्नति का भार है, यह धर्म है कि जाति की संपूर्ण प्रचलित रीतियों का सोच विचार करते रहें और जो आवश्यक हो तो उन में उचित अदला बदली भी करें यदि किसी पुष्प वाटिका में सदैव काट छांट न होती रहै तो वह भयानक बन की भांति होजाती है इसी प्रकार जाति सम्बन्धी

रीतियों में भी समय २ पर अदला बदली न होती रहैं तो वे लाभ के स्थान में हानिकारक होजाती हैं। जब से धर्म का मुख्य अङ्ग राज्य नीति प्रचलित हुई है, उस में बराबर अदला बदली होती रहती है और तभी वह माननीय रहसकी है तो धर्म के दूसरे अङ्गों में भी जो रीतियों के स्वरूप में हैं परिवर्तन होना आवश्यक है॥

जन्म, विवाह और मृत्यु सम्बन्धी नियम बनाना।

ये रीतियां भी यद्यपि देशाचार के अन्तर्गत हैं तो भी अति आवश्यक होने के कारण इन का पृथक् वर्णन करना उचित समझा गया है। इन नियमों में यह एक बात ध्यान में रखना चाहिये कि रुपया इतना कम व्यय हो कि धनाढ्य और कङ्गाल संपूर्ण बराबरी और सहज से देसकें, हां धनाढ्यों को उत्साह दिलाना चाहिये कि जाति सम्बन्धी कार्यों में सहायता देवें। जन्म के समय की रीतियां ऐसी न हों जिन के अनुसार चलने में बच्चे वा जच्चा की आरोग्यता बिगड़ने का भय हो, विरुद्ध इस के उन से लाभ होने की आशा कीजासके। विवाह की रीतियां ऐसी होनी चाहियें जिन से स्त्री, पुरुष और उन के संपूर्ण सम्बन्धियों में प्रेम और प्रीति बढ़े और उन को करते समय सच्चा आनन्द प्राप्त हो। मृत्यु के समय की रीतियां भी सीधी और सुगम होनी चाहिये जिन से मृतक शरीर के तत्व अपने २ भण्डार में शीघ्र मिलजावें और मृतक शरीर के सम्बन्धियों को उन रीतियों पर चलने में ऐसी तितीक्षा भी न उठानी पड़े जिस से वे रोगी होजावें॥

मेलों की वृद्धि और सुख का सामान एकत्र करना।

बड़े २ महात्मा और सत्पुरुषों के स्मरण में जिन्होंने धर्म और सुख के फैलाने का प्रयत्न किया हो, स्मारक की रीति पर, मेले

स्थापित करने चाहियें और विद्यमान मेलों को उपयोगी करने का उद्योग करना चाहिये ॥

विद्या के प्रचार का उपाय करना ।

परा और अपरा अर्थात् सांसारिक और आत्मिक विद्याओं की साथ २ वृद्धि होने का प्रयत्न भी उन मनुष्यों को करना उचित है जिन के कन्धों पर सामाजिक उन्नति का भार है। सांसारिक विद्याओं की वृद्धि के लिये देशी ग्रन्थ करना, देशी गीत, देशी पाठ-शालायें और देशी यूनीवर्सिटी अर्थात् विश्वविद्यालय स्थापन करना और आत्मिक विद्या की उन्नति के लिये उत्तम उपदेशक और उप-देशिका एकत्र करना आवश्यक है और धर्म की महिमा, उस के मुख्य २ अङ्गों के प्रचार की रीतियां और लाभ, सर्व साधारण बोली में छोटी २ पुस्तकों के रूप में छपवाना चाहिये ॥

भक्ति की सहज और लाभदायक रीतियां प्रचलित करना ।

प्रत्येक मनुष्य की योग्यता, बुद्धि और विचार पृथक् २ होते हैं और संपूर्ण अपनी रुचि और योग्यता के अनुसार परमात्मा की भक्ति करना चाहते हैं, निदान उन मनुष्यों की व्यवस्था और मानसिक उन्नति का ध्यान रख कर स्थूल से सूक्ष्म तक क्रम से भक्ति की रीतियां नियत करनी चाहियें। वास्तव में परमात्मा की भक्ति के लिये सच्ची प्रीति और शुद्ध अन्तःकरण की आवश्यकता है और इन दोनों बातों को न्यून और अधिक बुद्धि वाले विद्वान् और अपठित संपूर्ण मनुष्य उद्योग से प्राप्त कर सक्ते हैं, परन्तु मनुष्य में एक ऐसी प्रकृति भी है कि वह अपनी ही भक्ति की रीति को उत्तम समझता

है और दूसरों की रीतियों को बुरी, इसी कारण से हठवादी और फूट उत्पन्न होते हैं और यथार्थ बातों का आदर करने वाले और मिलाप चाहने वाले उस हठवादी और फूट को अग्नि से परे रहने के हेतु बहुधा धर्म की ओर से अरुचि प्रकाश कर देते हैं, निदान सामाजिक उन्नति के ज़िम्मेदार मनुष्यों का उद्योग होना चाहिये कि पृथक् २ भक्ति की रीतियां स्थापित करें और संपूर्ण मनुष्यों को नियमों पर चलावें, जैसे कि असंख्य ब्रह्माण्ड पृथ्वी, सूर्य और तारागण इत्यादि अपनी २ कक्षाओं में घूमते हुए एक दूसरे से नहीं टकराते इसी प्रकार से नाना भांति के मत मतान्तर वाले मनुष्यों को अपनी २ उन्नति में लगे रख कर दूसरों से झगड़ा और क्लेश करने से पृथक् रखना सामाजिक उन्नति के उत्तर दाता पुरुषों का काम है, निदान जैसे सामाजिक धर्म सब संसार के धर्मों में श्रेष्ठ है उसी प्रकार उस के कर्म भी अनेक हैं, जैसे संपूर्ण व्यापारों की क्रम से उन्नति का प्रबन्ध, आरोग्यता बनी रखने के हेतु प्रबन्ध, देश के बचाव और न्याय के प्रबन्ध इत्यादि और ये कर्म प्रजा में से केवल योग्य और उत्कृष्ट पुरुषों के हाथ में रहने चाहियें और उन योग्य पुरुषों को उचित है कि आवश्यकता के अनुसार यथा शक्ति इन कर्मों का उत्तम प्रबन्ध करें और उन प्रबन्धों के अनुसार आप भी चलें। भारतवर्ष में सामाजिक उन्नति समय २ में किस प्रकार से होती रही और इस समय उस की क्या दशा है इस का संक्षेप वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है ॥

संक्षेप वृत्तान्त सामाजिक उन्नति वेदोक्त मत।

भरतखण्ड के प्राचीन समय में ऊपर वर्णन किये हुए धर्म की रक्षा और उन्नति और देशाचार के लिये सोच विचार करने के हेतु अनेक ब्राह्मण तत्पर थे मनुष्यों की अलग २ व्यवस्था और मानसिक

उन्नति का ध्यान रख कर उन के लिये कर्म काण्ड, उपासना, ज्ञान और विज्ञान नाम से स्थूल से सूक्ष्म तक क्रम से वृद्धि के हेतु रीतियां स्थापित की गई थीं; वर्ण और आश्रम बनाये गये थे, षोड्श संस्कार और पंच महायज्ञ का प्रचार किया गया था ॥

जब तक यह काम ऐसे आचारियों के हाथ में रहा जो अपने सदुपदेश के अनुसार आप भी चलते थे तब तक बहुत सफलता के साथ उत्तम उन्नति होती रही। इस सुख के समय में मुख्य २ स्थानों पर, जो धर्म के केन्द्र समझे जाते थे, मेले स्थापित किये गये थे, जिन में विद्वान् ब्राह्मण एकत्र होकर सामाजिक उन्नति की आवश्यकताओं का विचार किया करते थे। प्रत्येक विद्वान् अपना २ गुण प्रकाश किया करता था। शारीरिक व्यायाम की दङ्गल और आत्मिक मल्ल युद्धों के अखाड़ों में शरीर और आत्मा की संपूर्ण आवश्यकताओं के लिये साधारण रीतियां बतलाई जाती थीं। सब स्थानों के निपजे हुए और हाथ के बनाये हुए पदार्थों की लैन देन होती थी। प्रत्येक मनुष्य इन पवित्र मेलों में अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार लाभ उठाता था ॥

बड़े २ मेलों कुम्भ इत्यादि पर और कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, काशी आदि स्थानों में हिन्दुस्थान मात्र के विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्री और राजा लोग एकत्र होते थे। संपूर्ण की सम्मति से एक महात्मा को व्यास पदवी देकर सभापति करते थे और जिन २ बातों का वहां निर्णय होजाता था उन का एकसा प्रचार सारे हिन्दुस्थान में किया जाता था जिस के हेतु राजा महाराजा, सेठ और साहूकार बहुत दान दिया करते थे ॥

इन सब बातों के कारण ही भरतखण्ड के मनुष्यों को परम पद सामर्थ्य और सुख के पदार्थ बहुत काल तक मिलते रहे। बड़े २

विद्वान् और योद्धा पुरुष उत्पन्न हुए, जिन का प्रताप संपूर्ण पृथ्वी पर फैला बादरायण ऋषि जिन का प्रसिद्ध नाम वेदव्यासजी है और उन के पुत्र शुकदेवजी जैसे महात्मा पाताल देश और हरिवर्ष देश अर्थात् ऐमेरीका और यूरोप तक धर्म्म का उपदेश करने के लिये गये। महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ के समय अर्जुन भी पाताल को पधारे थे॥

आयुर्वेद के जानने वाले धन्वन्तरी, अश्विनीकुमार, सुश्रुत और चरकने धातुओं में अनेक विष और पत्थरों के गुण निश्चय किये। वनस्पति में प्रत्येक जड़ी बूटी का गुण जानने का उद्योग किया गया। जानवरों के मल का गुण जान कर उस्से लाभ उठाया। गउ के गोबर और कबूतर की बीट इत्यादि के गुण वर्णन करने से प्रमाण होता है कि आयुर्वेद की उन्नति के लिये पशुओं के मल के गुण निश्चय करने में और उस्से लाभ उठाने में किसी प्रकार की हठधर्मी का घृणा नहीं की जाती थी। उस समय में आयुर्वेद की शिक्षा की, आवश्यकता समझ कर, ऐसा प्रचलित किया गया था कि प्रत्येक मनुष्य मुख्य करके कुलपति आयुर्वेद के साधारण तत्व और अत्यावश्यक औषधियों का बनाना और उन को काम में लाना जानता था, जिस का चिन्ह बहुतसे कुलों में मुख्य करके ग्राम निवासी कुलों में अब भी दिखाई देता है॥

धनुर्विद्या भी उस समय में बहुत उन्नति पर थी। महाराजा रामचन्द्रजी का वृत्तान्त जो रामायण में लिखा है और जो स्मरण के हेतु प्रति वर्ष रामलीला नामी मेले में हिन्दुस्थान के बहुत स्थानों में इस समय तक भी दिखलाया जाता है और श्रीकृष्णजी और उन के योद्धा भक्त अर्जुन और भीष्म पितामह आदि के युद्ध का वर्णन द्रोण आदि आचार्यों के युद्ध सम्बन्धी शिक्षा देने की रीतियां, जिन का वृत्तान्त बहुधा महाभारत में आता है, प्रमाण करते हैं कि

भरतखण्ड के ऋषियों और वीर पुरुषों ने धनुर्विद्या और उस की शाखा व्यूह रचना, अग्नि विद्या और बाण विद्या आदि के भेद को भले प्रकार समझ कर उस्से अत्यन्त लाभ उठाया था। उस समय बाण इत्यादि ऐसे २ शस्त्र युद्ध के काम में लाये जाते थे जो शत्रु की सेना के चारों ओर विष वाली वायु इत्यादि फैला कर संपूर्ण सेना को अचेत कर देते थे और इस व्यवस्था में उन को अपने वश में कर लेते थे। ऐसा करने से मारकूट बिना ही काम निकल जाता था। कृषि विद्या अर्थात् खेती की विद्या में भी बहुत उन्नति के चिन्ह दीख पड़ते हैं, जैसे संपूर्ण पशुओं में से बैल को खेती के लिये अत्युत्तम और उपयोगी समझ कर छांटना जो अपने परिश्रम से उत्पन्न किये हुए पदार्थों की बचत अर्थात् भूसे इत्यादि से ही अपना पेट भर लेता है और इस के वंश की वृद्धि के हेतु धर्मानुसार अच्छे अच्छे वृषभ को सांड़ बनाने की रीति प्रचलित कर देना इस समय तक दिखलाई देते हैं॥

कविता में वाल्मीकजी और उन की बनाई हुई प्रसिद्ध पुस्तक रामायण अभी तक विख्यात है। ज्योतिष विद्या में आर्य सिद्धान्त और गान विद्या में नारद सङ्गीत उस समय की उन्नति का प्रमाण दे रही हैं। ब्रह्म विद्या में अनेक उपनिषद् और गीता जैसी पवित्र पुस्तक और योग विद्या में पातञ्जल सूत्र इत्यादि पुस्तकें और असंख्य इतिहास उस समय की उन्नति को भले प्रकार प्रकाश कर रही हैं महाभारत के युद्ध के समय व्यासजी का संजय को दिव्य दृष्टि की विद्या सिखला देना जिस के द्वारा अपने नेत्रों से देखा हुआ कुरुक्षेत्र के युद्ध का जैसा का तैसा वृत्तान्त कौरवों के प्रत्येक सेनापति के मारे जाने पर हस्तिनापुर में, जो दिल्ली के पास है आकर धृतराष्ट्र को सुनाया जिस का वर्णन कई पुस्तकों में है॥

राजनीति की उन्नति के प्रमाण भी मिलते हैं, महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उस के आधीन राजाओं का दूर २ से आना; उस के राज्य की वृद्धि का चिन्ह है। राजनीति के नियम भी अति उत्तम नियत किये हुए थे, जिस के कारण प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्रता से अपनी और अपने देश की उन्नति में लगा हुआ था प्रत्येक गांव; पुर और नगर में उसी बस्ती के योग्य पुरुषों में से उन्हीं की इच्छानुसार पूर्ण संख्या छांट कर पंच बनाया जाता था, जो संपूर्ण भांति से अपने स्थान की रक्षा और उन्नति के ज़िम्मेवार समझे जाते थे। पञ्चों के और उन के द्वारा प्रजा के मत का ऐसा मान किया जाता था और वे ऐसे आदर की दृष्टि से देखे जाते थे कि इस समय तक लौकिक में "पञ्चों में परमेश्वर" की कहावत चली आती है॥

ऊपर लिखी उन्नतियां केवल इसी कारण से ही रही थीं कि संपूर्ण मनुष्यों को नियम में रखने और शान्ति को बने रखने के हेतु ऐसे प्रबल पुरुषों का समूह कि जो नियत नियमों पर आप भी चलते थे, रात दिन सामाजिक उन्नति के काम को अति उत्साह और निष्पक्षता से किया करता था; जिन पर सर्व साधारण को इतना विश्वास और भरोसा था कि वे धर्म भाव से उन के सदुपदेश को माननीय समझते थे। साथ ही इस के सच्चाई का बीज प्रत्येक मनुष्य के मन में ऐसा बोया गया था कि वे स्वाभाविक ही सच बोला करते थे और झूठ को महापाप समझ कर कभी स्वप्न में भी उस का चिन्तवन नहीं करते थे। यदि किसी मनुष्य का झूठ बोलना परस्पर के बर्ताव में वा सामाजिक बर्ताव में वा राज सभा अर्थात् कचहरी इत्यादि में जाना जाता था तो वह महापापी समझा जाता था। माता पिता उस को कुपुत्र कहते थे, स्त्री उस का साथ छोड़ने को उद्यत होजाती थी, संपूर्ण सम्बन्धी और समाज की दृष्टि में वह तुच्छ होजाता था। ऐसे ही कारणों से प्रत्येक मनुष्य मन वचन और

कर्म से सत्य का पालन करता था और सत्य के द्वारा ही सारी वृद्धि के काम चल रहे थे ॥

जब तक पब्लिक ओपीनियन् अर्थात् सर्व साधारण की सम्मति दृढ़ रही और सामाजिक उन्नति का काम ऐसे ब्राह्मणों के हाथ में रहा जो कर्म भ्रष्ट न थे तब तक काम ठीक चलता रहा, परन्तु धीरे २ यह अधिकार बापौती होगया तब साधारण रीति से उन की विद्या और उत्साह कम होते गये और जैसे २ वे धर्म के अगुआ पीढ़ी दर पीढ़ी अयोग्य होते गये वैसे ही वे लोग अपनी प्रतिष्ठा बनी रखने को समय २ पर ऐसे उपाय रचते रहे कि जिस से सर्व साधारण मनुष्य अपठित और मत मतान्तर के फन्दे में फंसे हुए उन के बश में रहैं ॥

कुम्भ इत्यादि मेलों के अवसर पर सामाजिक व्यवहारों पर ध्यान देने और उन की उन्नति करने के स्थान में केवल अंधा धुन्ध रीति से दान देने लेने की चर्चा रहगई, धर्म का अभाव होने लगा और ऊपरी दिखावटों की ओर अधिक ध्यान होगया सत्य का बीज जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में बोया जाता था उस के बोने वाले मनुष्य स्वयं असत्य में फंस गये। धर्म के नाम से अनेक प्रकार के धोखे, ठगाई और प्रजा पीड़ा होने लगी, इस समय बुद्धावतार और उन का मत प्रगट हुआ ॥

संक्षेप वृत्तान्त सामाजिक उन्नति बौद्ध मत ।

नैपाल की राजधानी कपिलवस्तु[१] में जो प्रसिद्ध नगर काशी से सौ (१००) मील पर है, शुद्धोधन नाम राजा के एक पुत्र का जन्म हुआ,

१ गौतम का जन्म स्थान कपिलवस्तु अब तक मगध देश अर्थात् बिहार में समझा जाता था, परन्तु अब उस के खंडर मिलजाने से निश्चय हो गया है कि वह नैपाल देश में है, (देखो टाइम्स आफ़ इन्डिया २ अक्तूबर सन् १८९७ ई०) ॥

जिस का नाम गौतम रक्खा गया। राजकुमार गौतम का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में राजा कोली की पुत्री यशोधरा नाम वाली से हुआ उन्तीस वर्ष की अवस्था तक गौतमजी सांसारिक सुख में अति लाड़ चाव के साथ जन्म व्यतीत करते रहे एक दिवस दैवाधीन जब गौतमजी हवा खाने को जाते थे, तब एक वृद्ध मनुष्य को देख कर, जिस का शरीर बहुत दुर्बल और इन्द्रियां बहुत शिथिल होगई थीं और जो अपनी वृद्धावस्था को घोर कष्ट से काट रहा था, उन के चित्त पर बड़ा प्रभाव हुआ इसी प्रकार दूसरी बार एक रोगी को देखने से, जिस को रोग के कारण बहुत कष्ट था, गौतमजी के कोमल हृदय पर पहिले से अधिक प्रभाव हुआ तीसरी बार गौतमजी ने एक मुर्दे को देखा, तब उन के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आरोग्यता रोग से और युवावस्था वृद्धावस्था से बदल कर दुःखदाई होती हैं और इन अदला बदली और दुःखों को सहते हुए जीवन मृत्यु से बदल जाता है, निदान ऐसा क्षणभंगुर; परिवर्तनी और दुःखदाई जीवन मुख्य करके इस की युवावस्था में सांसारिक सुखों में लिप्यमान होजाना प्रत्यक्ष असावधानता है। यह विचार गौतमजी के चित्त में खटक ही रहा था। कि चौथी बार एक महात्मा साधु को देखा जो वृद्ध होने पर भी बहुत बलवान् और अरोगी था। इस का मुख गुलाब के पुष्प की भांति लाल और खिला हुआ देख कर, जिस्से शान्ति और आनन्द के चिन्ह दिखलाई देते थे, गौतमजी को निश्चय हुआ कि जन्म के दुःखों से बचना और जीवन मुक्त होजाना केवल साधुवस्था अर्थात् सन्तों के ही वेश में सम्भव है। जिस दिन ये विचार गौतमजी के मन में उठ रहे थे उसी दिन उन की कुंवरानी यशोधरा के पुत्र उत्पन्न हुआ, महलों में आनन्द मनाया गया था, गौतमजी को धन्यवाद दिया जाता था, परन्तु इन के चित्त में तो कुछ और ही उधेड़ बुन लगी हुई थी, अन्त में उसी दिन रात

के समय गौतमजी ने संसार को त्यागने का दृढ़ विचार कर लिया, इस हेतु कि इस के द्वारा सच्चे धर्म को प्रगट करके, अपने और दूसरे सत्य के ढूंढने वालों के लिये शान्ति उत्पन्न करे॥

गौतमजी ने अपनी परिपूर्ण तरुणाई अर्थात् उन्तीस वर्ष की अवस्था में राज्य के सुख से मुंह मोड़ कर, अपनी प्यारी स्त्री और नन्हेसे बच्चे और दूसरे सम्बन्धियों की प्रीति के नाते को तोड़ कर, आधी रात को वन का रास्ता लिया। रातों रात बहुतसा रास्ता काट कर प्रातःकाल के समय अपने सेवक को अश्व सहित पीछे भेज दिया और सेवक से कहा कि तुम मेरे माता, पिता, स्त्री और दूसरे मनुष्यों को समाचार देदेना कि गौतम साधु होगया। अपने केश कृपाण से काट कर और वस्त्र एक ग्रामवासी से बदल कर, गौतमजी एक ब्राह्मण के पास गये और शास्त्रों का पढना आरम्भ किया। वहां तृप्ति न होने पर दूसर ब्राह्मणों के पास गये, परन्तु वहां भी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, तब छ वर्ष तक बहुत दृढ़ तपस्या की और ऐसे निर्बल होगए कि एक दिन चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पडे। इस समय इन को विचार आया कि केवल तप से ही सच्ची शान्ति नहीं मिल सक्ती है॥

कहते हैं कि इस अवसर पर उन्होंने एक सितार का शब्द सुना, पहली बार एक तार अधिक खिंचा हुआ था और दो ढीले थे वह शब्द अच्छा न जान पडा दूसरी बार तीनों तार एकसे थे, उस समय शब्द बहुत सुहावना जान पड़ा गौतमजी, जिन का अन्तःकरण तप करने से शुद्ध होगया था, तुरन्त समझ गये कि यह इन को आकाश वाणी हुई है कि जैसे सितार के तीनों तारों के एकसे होने से उत्तम राग निकलता है, इसी प्रकार से शरीर रूपी सितार के तीनों तारों अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के एकसे होने से सच्ची शान्ति

मिलनी सम्भव है, निदान इन्होंने अपने शुद्ध अन्त:करण के परिमाण के अनुसार संयम और धीरज के साथ जन्म व्यतीत करते हुए अपने अन्तर में सच्ची विद्या के खोजने का आरम्भ करके उस को प्राप्त किया। उस समय उन्होंने यह विचार किया कि सच्चे धर्म का उपदेश प्रारम्भ करें, परन्तु साथ ही यह चिन्ता हुई कि धनवान् धन के मद में विद्यावान् विद्या के अभिमान में और राजा लोग राज्य के घमण्ड में उन के उपदेश को किस प्रकार सुनेंगे और जिन के पास यह तीनों शक्तियां नहीं हैं, वे अविद्या और दरिद्रता के दु:ख में फंसे हुए इतनी बुद्धि और अवकाश नहीं रखते कि उन का उपदेश सुन कर समझ सकें और उस के अनुसार चल सकें। उसी समय उन के अन्त:करण में यह प्रेरणा हुई कि उपदेश करना चाहिये, ऊपर लिखे मनुष्यों की श्रेणियों मे कई ऐसे अवश्य ही निकल आवेंगे जो उन के उपदेश को सुनेंगे, आदर करेंगे और उन के अनुसार चल कर सच्ची शान्ति प्राप्त करेंगे॥

गौतमजी का उपदेश बहुत सीधा सादा होता था वे प्रत्येक मनुष्य से कहा करते थे कि संस्कार और कर्म को उत्तम बनाओ और साधारण रीतियां उन को उत्तम बनाने की बतलाया करते थे। ब्राह्मण इत्यादि बहुधा उन से झगड़ा और क्लेश करने को यह प्रश्न किया करते थे कि आप वेदों को और ईश्वर को मानते हो वा नहीं? गौतमजी का बहुधा संक्षेप से यही उत्तर हुआ करता था कि मैंने वेदों को पढ़ा नहीं और ईश्वर को देखा नहीं इस कारण से उन के लिये कुछ नहीं कह सक्ता॥

गौतमजी ने पहिले उन ब्राह्मणों को, जो तपस्या के समय उन के साथ थे, उपदेश किया, फिर काशी की ओर चले, वहां एक धनवान् पुरुष जिस का पुत्र जासक पहिले ही से इन का शिष्य था उस

का साथी हुआ फिर जासक की माता और स्त्री भी इन में आन मिलीं, निदान पांच महीने के अन्तर में गौतमजी के उपदेश का प्रभाव बहुत फैल गया और साठ मनुष्यों के लग भग उन के शिष्य होगये ॥

गौतमजी ने उपदेश करने वाले शिष्यों के लिये तपस्या अर्थात् काया को कष्ट देने का प्रमाण बहुत दृढ़ रक्खा था उन को कहा गया था कि भिक्षा से निर्बाह करते हुए, एक दूसरे से न मिलते हुए, नित्य प्रति देशाटन करते हुये, उपदेश करें। गौतमजी स्वयं आठ महीने तक बराबर देशाटन करते हुए उपदेश करते रहते थे केवल वर्षा ऋतु के चार महीने एक स्थान में ठहरा करते थे। निवास की व्यवस्था में रात्रि के समय अपनी बनाई हुई धर्म्म पुस्तकें सर्व साधारण जनों को सुनाया करते थे और प्रत्येक वर्ण और आश्रम के मनुष्यों को अपना शिष्य बनाते थे। जब गौतमजी के शिष्य बहुत होगये तब सामाजिक उन्नति का उचित प्रबन्ध आरम्भ किया गया, चार मुख्य शिष्यों:—१—आनन्द, २—देवदत्त, ३—उपाली और ४—अनिरुद्ध में सब काम बांटा गया ॥

एक बार गौतमजी के पिता ने उन को संदेशा भेजा कि आप मुझ को दर्शन देवें, निदान वे उन के पास गये उस समय उन की स्त्री रानी यशोधरा ने उन के पुत्र को भी उन के पास भेजा, विचार यह था कि कदाचित् उस की प्रीति के हेतु गौतमजी वहां पर अधिक निवास करें। गौतमजी ने यह कह कर कि धर्म्म के उपदेश के लिये होनहार पुरुषों की बहुत आवश्यकता है अपने पुत्र को भी साधु बना कर अपनी मण्डली में मिला लिया ॥

गौतमजी ४७ वर्ष तक उपदेश करते रहे। एक दिन अपने प्रतिष्ठित शिष्य आनन्द से कहा कि अब मैं ८० वर्ष का होगया हूं

और अधिक सावधानी रखने से कुछ काल और जी सकूं तो भी तुम स्वयं काम करने पर उद्यत रहो। फिर संपूर्ण शिष्यों को एक मुख्य स्थान बिसाली पर एकत्र करके कहा कि "तत गाथा" अर्थात् गौतमजी का शीघ्र अन्त होने वाला है, निदान तुम को आनन्द और दूसरे प्रतिष्ठित शिष्यों के उपदेश के अनुसार चलना चाहिये॥

गौतमजी की मृत्यु के पश्चात् सामाजिक उन्नति पर विचार करने के लिये उन के शिष्यों की पहली सभा पहली वर्षा ऋतु में राजघाट नामी स्थान में हुई, जिस में पांचसौ (५००) योग्य शिष्य एकत्र हुए। गौतमजी का एक प्रतिष्ठित शिष्य महाक्षेप प्रधान अर्थात् प्रेसीडैन्ट सभा चुना गया और सभा का सारा प्रबन्ध मगध देश के राजा ने किया॥

दूसरी सभा लग भग १०० वर्ष के पीछें (जूबीली की भांति) एकत्र हुई उस में सातसौ (७००) योग्य पुरुष एकत्र हुए। सामाजिक उन्नति के सम्बन्धी मुख्य २ बातों पर विचार करके उन सत्पुरुषों ने कई आवश्यक अदला बदली को स्वीकार किया जिन को कई शिष्यों नें ग्रहण करने से निषेध किया जिस के कारण से धीरे २ बौद्ध मत के अठारह भेद होगये। इन सब भेदों को एक करने और दूसरी आवश्यक बातों के हेतु तीसरी सभा राजा अशोक ने पटने में एकत्र की जिस में एक सहस्र मनुष्य एकत्र हुए। राजा अशोक बौद्ध मत का एक अति उत्साही सभासद चमकता हुआ चांद हुआ है। उसने धर्म के प्रचार की आवश्यकता और योग्य उपदेशकों की कमी को जान करके अपने एक पुत्र और एक पुत्री को धर्म के अर्पण कर दिया, निदान उस का पुत्र राजकुमार महेन्द्र साधु बन कर गेरू से रंगे हुए वस्त्र धारण किये, छः और साधुओं को साथ लेकर, सर्दी, गर्मी सहता हुआ, लङ्का पहुंचा और वहां के राजा टस्सा को

उपदेश किया। राजा महेन्द्र की तितीक्षा और धर्म भाव को देख कर और उस के उपदेश को सुन कर टस्सा ऐसा मोहित हुआ कि उसने तुरन्त ४० सहस्र मनुष्यों सहित बौद्ध मत को ग्रहण किया। उन सब नवीन धर्म ग्राहियों के विश्वास को दृढ करने के हेतु महेन्द्र की बहिन बाई संघमिता लङ्का गई और उन्हें दृढ़ निश्चय करा देने के उपरान्त संपूर्ण टापू में अपना मत फैला दिया। इस के पश्चात् दोनों बहिन भाई साधुओं के वेश में एक दृढ़ मण्डली बना कर चीन, जापान, ब्रह्मा इत्यादि देशों में गये और स्वधर्म के फैलाने में अत्यन्त सफलता प्राप्त की, निदान राजा अशोक का अपने पुत्र और पुत्री को अर्पण कर देने और दूसरे सच्चे उपायों के कारण बौद्ध मत बहुत उच्च पद को प्राप्त हुआ परन्तु उस के पीछें सामाजिक धर्म की उन्नति का प्रबन्ध उत्तम न रहसका। धर्म के उपदेश करने वाले विद्वान् नियमानुसार चलने वाले न रहे, उस समय बौद्ध मत लग भग संपूर्ण आर्यावर्त्त में फैल गया था और राज धर्म की भांति समझा जाता था। उस को सुधारने के लिये काश्मीर के राजा ने एक चौथी सभा फिर एकत्र की बहुतसे विद्वानों को एकत्र करके बौद्ध मत की पुस्तकें संस्कृत और पाली बोली में लिखवाईं और सामाजिक उन्नति के मुख्य काम अर्थात् उत्तम उपदेशकों को उत्पन्न करने का उद्योग किया परन्तु सफलता नहीं हुई और वेदोक्त मत वेदान्त के रूप में फिर प्रचलित हुआ॥

संक्षेप वृत्तान्त वेदान्त मत।

उस बौद्ध मत की अवनति के समय, दक्षिण देश में, महात्मा शङ्कराचार्य्य प्रगट हुए, जिन्होंने बहुत छोटी अवस्था से ही संसार को त्याग कर अपनी शक्तियों को बढ़ाया और फिर धर्म का उपदेश अपने जन्म स्थान मालाबार से प्रारम्भ किया प्रायः संपूर्ण आर्यावर्त्त

में घूम कर बौद्ध मत का खंडन[1] करके वेदान्त मत को उस के स्थान में स्थापित किया । विद्वान् मंडन मिश्र और उस की योग्य पत्नी से काश्मीर में बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ जिस में शङ्कराचार्य्यजी की जय हुई । शङ्कराचार्य्यजी में बादविवाद करने की बहुत उत्तम शक्ति थी और उन की बाणी का प्रभाव ऐसा था कि जो कोई उन की बात चीत सुनता मोहित होजाता था । जैसी भाषण शक्ति उन को प्रदत्त हुई थी उतनी ही नहीं किन्तु कुछेक अधिक उन की लेखनी में भी शक्ति थी ॥

यद्यपि शङ्कर स्वामी ईश्वर में अद्वैत भावना रखते थे और ऐसा ही उन्होंने अपने अधिकारी शिष्यों को उपदेश भी किया, तो भी सर्व साधारण मनुष्यों के लिये मूर्त्ति पूजन को अनुचित नहीं कहा । उन का सिद्धान्त था कि यदि निराकार ईश्वर का अनुभव नहीं होसके तो आदि में किसी स्थूल पदार्थ मूर्त्ति इत्यादि के द्वारा ध्यान जमाना उचित है ॥

शङ्कराचार्य्यजी ने सामाजिक उन्नति के लिये ब्राह्मणों के अतिरिक्त एक मण्डली संन्यासियों की भी स्थापित की और उस के गिरी, पुरी, भारती, सरस्वती इत्यादि दस भेद नियत किये कई मठ अर्थात् बड़े २ स्थान बनवाये जहां धर्म सम्बन्धी बातों पर सदैव चर्चा होती रहती थी जिस का प्रभाव भरतखण्ड के स्त्री और पुरुष दोनों के चित्तों पर और उन की रीति भांति में भी बहुत कुछ अब तक पाया जाता है ॥

१ इस में संदेह नहीं है कि शंकराचार्यजी ने बौद्ध मत की जड़ भरतखण्ड से उखाड़ी तथापि यह भी निश्चय होचुका है कि बौद्ध मत का खंडन प्रथम भट्ट कुमारिल ने आरम्भ किया जो शंकर स्वामी के समकालीन थे ॥

शङ्कराचार्य्य के पीछें बहुत काल के पश्चात् जब सामाजिक उन्नति का काम ढीला होने लगा तब एक महात्मा रामानुज नामी वैष्णव मत वाले प्रसिद्ध हुए। उन के मत में विष्णु भगवान् और उन की स्त्री लक्ष्मीजो की पूजा मानी गई है, वेदान्त मत अर्थात् अद्वैत ईश्वर का खंडन[१] किया गया है। उन का यह सिद्धान्त है कि विष्णु (ईश्वर) निराकार भी हैं और रामचन्द्र सीता, कृष्ण राधिका इत्यादि के रूप में आकार सहित अवतार भी लेते हैं। रामानुजजीने सातसौ (७००) मठ स्थापन किये और अपने अधिकारी शिष्यों में से सत्तरह (१७) मनुष्यों को छांट कर और उन को आचार्य्य पदवी देकर सामाजिक उन्नति का प्रबन्ध उन के हाथ में दिया, जिन के नाम से एक २ शाखा वा संप्रदाय स्थापित हुई॥

रामानुज संप्रदाय वा श्रीवैष्णव संप्रदाय का एक योग्य पुरुष रामानन्दजी नामी खाने पीने की छूत छात और दृढ़ प्रति बन्धनों के हेतु अपनी संप्रदाय से अप्रसन्न होकर एक नया मत चलाने के लिये उपस्थित हुआ जिस का नाम रामानन्दी मत रक्खा गया इस मत में खाने पीने का कोई बन्धन वा जाति इत्यादि का कुछ ध्यान नहीं था इसी कारण से सच्चे धर्म के ढूंढ़ने वाले बिना भेद भाव वर्णाश्रम जैसे कबीर जुलाहा, रैदास चमार, धन्ना जाट, सैन नाई इत्यादि आशामिल हुए धर्म पुस्तकें भी संस्कृत के स्थान में मामूली बोल चाल और सर्व साधारण के समझ में आने वाली भाषा में लिखी गईं॥

१ रामानुज का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है क्योंकि उन्हों ने अद्वैत का खंडन नहीं किया परन्तु एक विशेष और जोड़ कर, रामचन्द्र सीता, कृष्ण राधिका के स्वरूप में जगद्रूप विशेष दिखलाय कर परमेश्वर के स्वरूप का सविशेष ब्रह्मरूप से प्रतिपादित किया है॥

रामानन्दजी ने सामाजिक उन्नति के लिये एक मुख्य मण्डली थोड़ेसे योग्य शिष्यों की नियत की थी जिन के नाम ये हैं॥

रैदासजी।

तुलसीदासजी।

जैदेवजी।

नाभाजी।

रामानन्दजी के देह छोड़ने के पश्चात् कबीरजी उन के उत्तराधिकारी नियत हुए। कबीरजी ने बहुत काल तक काशी में कबीर चौरा नामी स्थान में योगाभ्यास किया था, उस के प्रताप से और सत्यग्राही और सर्व प्रिय होने के हेतु अनेक गृहस्थी और साधु उन को मस्तक झुकाने लगे कबीरजी ने मूर्त्ति पूजन को सर्वथा अनुचित बतलाया हिन्दू और मुसलमानों के धर्मोपदेश के समय उन के मत के दोष दिखला कर निडरता से आक्षेप किये। ये हिन्दुओं की संपूर्ण जातियों और मुसल्मानों को भी अपने मत में मिला लिया करते थे साधु सेवा को बहुत बड़ा कारण धर्म प्राप्ति का जानते थे और मुख्य २ शिष्यों को योगाभ्यास का भी उपदेश दिया करते थे उन के समय में एक धनाढ्य पुरुष धर्मदास नामी ने बहुतसा द्रव्य उन के भेट किया जिस्से सामाजिक उन्नति को बहुत सहायता मिली॥

पंजाब में गुरू नानक ने बहुत काल तक रोड़ी साहिब (गुजरान वाला) में योगाभ्यास करके धर्म का उपदेश और सामाजिक उन्नति का काम प्रारम्भ किया उन का उपदेश विग्रह रहित और सर्व प्रिय था। हिन्दू मुसल्मान सब उन से लाभ उठाते थे। उन्होंने भक्ति को मुख्य साधन कहा है। उन के सिद्धान्त को संक्षेप से तीन शब्दों में

इस रीति से वर्णन किया जाता है कि "मुख भक्ति मुख भक्ति, वर्तन वैराग्य, वर्तन वैराग्य और हृदय ज्ञान" गुरू नानक साहिब ने अपने जीते जी अपने एक योग्य शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियत किया और ऐसा ही उस के उत्तराधिकारी दस पीढ़ी तक करते रहे, जिस के हेतु असंख्य मनुष्यों को मुख्य करके पंजाब वालों को बहुत लाभ हुआ॥

जिस प्रकार पंजाब में गुरू नानक साहिब ने काम प्रारम्भ किया उसी प्रकार से बङ्गदेश अर्थात् बङ्गाले में महात्मा चैतन्यजी ने भक्ति का प्रचार आरम्भ किया। हिन्दू मुसल्मान दोनों को उन के उपदेश से लाभ पहुंचता था। एक बार चैतन्यजी उपदेश कर रहे थे उसी समय दो पूज्य मुसलमान दबीर और कशाश नामी जो मीर सय्यद हुसैन बङ्गाले के सूबेदार के सम्बन्धियों में से थे ऐसे मोहित हुए कि आधी रात को चैतन्यजी की सेवा में आ उपस्थित हुए और उन के मत में होजाने की इच्छा प्रगट की। चैतन्यजी ने उन को अपना शिष्य बना लिया और उन का नाम रूप और सनातन रक्खा। इसी प्रकार से चैतन्यजी ने पांच पठानों को, जो मथुरा के पास लूट मार किया करते थे और चैतन्यजी को भी लूटना चाहते थे, अपने पवित्र उपदेश से धर्मात्मा बना दिया, जिन्होंने उसी समय लूट मार करने से पश्चात्ताप करके चैतन्यजी का मत अङ्गीकार किया॥

छः वर्ष देशाटन करते हुए उपदेश करने के पश्चात् चैतन्यजी ने सामाजिक उन्नति के प्रबन्ध के हेतु अद्वैताचार्य और नित्यानन्दजी को बङ्गाल में वैष्णव समाज का अधिकारी नियत किया। रूप और सनातन को वृन्दाबन समाज का प्रबन्ध कर्ता नियत किया और आप नील चोले में रहे जहां उन को आत्मा की चमत्कार रूप शक्ति से शुद्ध हृदय में आज्ञा हुई कि संसार का सम्बन्ध छोड़ कर संन्यासी

होजा । चैतन्यजी की अपनी माता से बहुत प्रीति थी, फिर भी किसी प्रकार का हठ न करके उस आत्मा के पवित्र प्रकाश की आज्ञा पालने योग्य और आवश्यक समझ कर और अपनी माता और दूसरे सम्बन्धियों की प्रीति और गृहस्थ के सुखों से मुंह मोड़ कर संन्यास धारण कर लिया जब उन की माता आदि सम्बन्धियों का कुछ भी मोह नहीं रहा और सांसारिक क्लेशों से हलके होगये, तब वह अपना संपूर्ण समय धर्म के सूक्ष्म भाव और उत्तम धर्म के तत्वों को जाने और फैलाने में लगा सके, जिस के कारण असंख्य पापी मनुष्य धार्मिक बन गये। इसी प्रकार से राजपूताने में दादूजी ने और दक्षिण में तुकाराम[१] महात्मा ने धर्म का प्रचार फैलाया यह एक

---

१ महाराष्ट्र देश में पूना शहर से ८ कोस पर देहू करके छोटासा गांव है उस में शालिवाहन शके १५३० (सन् १६०८ ई०) में महात्मा तुकाराम प्रकट हुए। वे जात के वैश्य थे उन का पिता भी भगवद्भक्त था साधु तुकाराम का चित्त बाल्यावस्था से ही ईश्वर भजन में मग्न हुआ। उन की स्त्री जिजाबाई बड़ी कलहकारिणी और तामसी थी उस के अनुचित व दुःखकारक सहवास से साधु तुकाराम के वैराग्य को बहुत पुष्टता मिल गई ॥

तुकाराम अहर्निश ईश्वर नाम स्मरण किया करते थे; उन्होंने वैराग्य पर हज़ारों अभङ्ग (एक मराठी छन्द) बनाये हैं समाज में वे हरि कथा करते थे; और भक्तिमार्ग का लोगों को उपदेश करते थे। साधु तुकाराम का देहान्त उन के ४१ वर्ष की उमर में शके १५७१ फाल्गुन बदी १२ (सन् १६४१) को हुआ। कहते हैं कि वे इसी मनुष्य देह से दिव्य लोक को पधारे ॥

साधु तुकाराम के अनुयाई हज़ारों लोक हैं, उन के मत में ज्ञान युक्त वैराग्य सहित भक्ति का प्राधान्य वर्णन किया है। ईश्वर नाम स्मरण प्रधान माना है और साकार ईश्वर का पूजन उन को असंमत नहीं है; तथापि एक श्री विठ्ठलनाथ का पूजन करना उचित समझा है यदि साधु तुकाराम के मत को एक प्रकार का साकार एकेश्वरी कहलावे तो कुछ विरुद्धता न होगी ॥

अनोखा समय था कि न केवल हिन्दुस्थान में ही धर्म का चर्चा और धर्म का परिवर्त्तन हुआ परन्तु इसी समय में यूरोप देश में भी मार्टिन लूथर जैसे महात्माओं के द्वारा ईसाई मत में भी बहुत कुछ शोधन हुआ ॥

शहनशाह औरङ्गज़ेब की पालिसी अर्थात् राजनीति ने जब मत की स्वाधीनता में रुकावट डालनी आरम्भ की तो स्वाधीन प्रकृति वाले हिन्दू और मुसल्मान दोनों बड़ बड़ाने लगे जिन में से बहुतों को घोर कष्ट सहना पड़ा और गुरू नानक साहिब के मिलाप सिखलाने वाली भक्ति के उपदेश को उन के दसवें उत्तराधिकारी गुरू गोविन्दसिंहजी को क्षत्रीय धर्म के प्रचार में बदलना पड़ा जिस का संक्षेप वृत्तान्त करने से पहिले मुसल्मानी मत और उस की सामाजिक उन्नति का संक्षेप वृत्तान्त लिखना उचित जान पड़ता है ॥

संक्षेप वृत्तान्त हज़रत मुहम्मद साहिब, उन के मत और सामाजिक उन्नति का ।

जब अरब देश के मक्का नामी नगर में मूर्त्ति पूजा का बहुत प्रचार हुआ और कई प्रकार के दुराचार उस देश और देश के लोकों में फैल गये तब ऐसे २ मनुष्य वहां पर जन्म लेने लगे जो मूर्त्ति पूजन से घृणा और देशी दुराचारों पर शोक करते थे। उस समय में हज़रत मुहम्मद साहिब का जन्म मक्का के कुरेशी नामी वंश में हुआ उन में बहुतसे गुण ऐसे दीख पड़े जिन के द्वारा धर्म परिवर्तन जैसा भारी काम किया जासके ॥

बाल्यावस्था से ही उन में बहुतसी उत्कृष्ट भलाइयां और अलौकिक बातें दिखाई देती थीं। वे प्रत्येक वर्ष रमज़ान के महीने में हारा नामी पर्वत की गुफाओं में जागरण किया करते थे और

बहुत विश्वास और इन्द्रियों के दमन के द्वारा सत्य के निर्णय करने का उद्योग किया करते थे॥

४० वर्ष की अवस्था में उन्होंने एक दिन अपनी स्त्री ख़दीजा से कहा कि मुझ को एक शब्द सुनाई देता है और एक प्रकाश भी दीख पड़ता है। ख़दीजा ने कहा कि ये चिन्ह आप के पैग़म्बर अर्थात् अवतार होने के हैं ख़दीजा के भाई वरक़ा और एक योगी अवास नामी ने भी ऐसा ही कहा॥

सब से पहिले मुहम्मद साहिब की स्त्री ख़दीजा, चचेरा भाई अली और दत्तक पुत्र (जो पहिले अनुचर था) ज़ैद उन पर विश्वास लाये॥

जब मक्के के प्रबल कुरेशी नामी वंश ने देखा कि मुहम्मद साहिब धर्म्म परिवर्तन का विचार करते हैं तो हिन्दुस्थान की रीति के विरुद्ध, कि प्रत्येक धर्म्म प्रचारक को स्वाधीनता के साथ धर्म्मोपदेश करने का अवसर मिला है, मुहम्मद साहिब को अनेक प्रकार के कष्ट देने और उन के काम में अनुचित रुकावटें डालनी आरम्भ कीं॥

मुहम्मद साहिब ने अनेक प्रकार से उन को समझाया कि उन के कहने पर चलने से कुरेशी लोग एक बलवान् कुल बन जावेंगे और ऐसी सामर्थ्य प्राप्त करेंगे कि संपूर्ण संसार में उन का प्रभाव फैल कर उन का एक प्रबल राज्य स्थापित होजावेगा और अन्त में स्वर्ग प्राप्त होगा परन्तु कुरेशियों को उन के कहने पर विश्वास नहीं आया॥

जो कोई कुलीन मनुष्य उन का साथी होता था, उस का ठट्ठा किया जाता था, कि उसने अपने पुरखाओं का मत छोड़ कर अपने कुल को बट्टा लगाया। व्योपारी के व्योपार में हानि पहुंचाने का

उद्योग किया जाता था और कङ्गाल और चाकरों को मार पीट की जाती थी और बहुतों के प्राण भी लेलिये जाते थे, जैसे बांदी सोबिया को अबुजहल ने केवल इसी कारण अपने हाथ से मार डाला कि वह मुहम्मद साहिब की चेली होगई थी, जिस की मौत मुसल्मानी मत में पहला बलिदान समझा जाता है ॥

एक बार एक मान्यवर युवा पुरुष उमर नामी मुहम्मद साहिब को मारने के लिये खड्ग लेकर चला, मार्ग में यह सुन्ने पर कि उस की बहिन और बहनेऊ भी मुहम्मद साहिब के शिष्य होगये, उसने पहिले उन को मारने का विचार किया। जिस समय उन के घर पर पहुंचा तो देखा कि वे कुरान शरीफ़ का सूरा पढ़ रहे हैं, परन्तु उमर को देख कर वे चुप होगये॥ उमर ने क्रोध में आकर पूछा कि क्या तुमने नवीन मत ग्रहण किया है ? उस पर उस के बहनेऊ ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया कि यदि कोई नया मत उत्तम हो तो उस को अङ्गीकार करने में क्या अवगुण है। यह उचित उत्तर सुन्ने से कुपित होकर अपने बहनेऊ पर खड्ग प्रहार किया, उस समय उस की बहिन बीच में आगई और उस के अत्यन्त घाव लगने पर भी रोती हुई बोली कि हज़रत मुहम्मद साहिब का मत उत्तम है और इसी कारण हमने उस को ग्रहण किया है। बहिन के घायल होने पर भी उस के दृढ़ निश्चय को देख कर उमर पर बड़ा प्रभाव हुआ। उसने उन के साथ मुहम्मद साहिब की सेवा में पहुंच कर उन को मारने के बदले उन के चरणों में गिर कर इसलाम के मत को स्वीकार किया, जिस के कारण इसलाम मत को बहुत प्रबलता प्राप्त हुई ॥

इस सफलता को देख कर कुरेशियों ने मुहम्मद साहिब को मारना चाहा किन्तु मनोरथ पूरा न होने पर उन के दरिद्री और

किङ्कर साथियों को दुःख देना आरम्भ किया, जिस के कारण एक सौ एक (१०१) इसलाम के अनुगामियों को स्वदेश छोड़ कर हब्श के देश को जाना पड़ा॥

कुरेशियों ने हब्श के बादशाह नज्जाशी के पास जो ईसाई मत का था बहुतसी भेट और उस के कारबारियों को रिशवत अर्थात् घूस देकर अपने एलची अर्थात् दूत के द्वारा यह इच्छा प्रकट की कि उन मनुष्यों को कुरेशियों के हाथ सौंप दिया जावे। बादशाहने उन मनुष्यों से उन की दशा का वृत्तान्त पूछना चाहा। उन में से जाफ़र ने जो मुहम्मद साहिब का चचेरा भाई था और बोल चाल में एक मुख्य प्रकार की शक्ति रखता था, अपनी विपत्ति का वृत्तान्त इस रीति से किया कि हम लोग शहर मक्का में बहुत अविद्या की दशा में अपना जन्म व्यतीत कर रहे थे, मृत पशुओं का मांस खाते थे, बलवान् निर्बलों को सताया करते थे, कुलीन जन भोग विलास के रोग में फंस गये थे, बिना बिवाह सत्तर २ स्त्रियां घर में डाल लेते थे, ऐसे कुमार्ग चलने की व्यवस्था में हम में से एक मनुष्य ने जिस की बुद्धिमानी, दूर दर्शिता और ऐसे उत्तम आचरण हैं, जिन की हम को आवश्यकता है, हम को सुमार्ग पर लाने का उद्योग किया। उसने अतिथि सत्कार और स्त्रियों के आदर की शिक्षा की, सत्य ईश्वर का आराधन करने, व्रत करने और दान देने का उपदेश किया। हम उस पर विश्वास लाये इस पर हमारे देश वालों ने हम को अनेक प्रकार के दुःख देना आरम्भ किया, निदान हमने अपने देश को त्याग कर आप की शरण ली है, साथ ही कुरान का १८ वां सूरा भी पढ़ा जिस में हज़रत ईसा और सेन्टजोन का उत्तम रीति से वर्णन था। बादशाह के चित्त पर जाफ़र की बात चीत और कुरान के सूरा के सुन्ने से ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्होंने एलची अर्थात् दूत को आज्ञा की कि हम इन लोगों को इन के मन उपरान्त नहीं

भेजना चाहते। इस पर कई कारबारियों ने एलची की पक्ष करके बादशाह को जाफ़र से यह प्रश्न करने के लिये उद्यत किया कि तुम लोग हज़रत ईसा को ईश्वर का बेटा समझते हो वा नहीं ? जाफ़र ने उत्तर दिया कि हम लोग हज़रत ईसा को ईश्वर का एक उत्तम दास, ईसाइयों का पैग़म्बर और मरियम का बेटा समझते हैं। इस पर ईसाई अप्रसन्न हुए और उद्योग किया कि जाफ़र हज़रत ईसा को ईश्वर का पुत्र कहै परन्तु बीर जाफ़र ने कहा कि हज़रत मुहम्मद साहिब ने आज्ञा की है कि चाहै कैसा ही भय हो, चाहै कितनी ही हानि होजाय प्रत्येक व्यवस्था में सत्य ही बोलना चाहिये और इस कारण से जिस बात के लिये मेरा मन साक्षी देता है वही कहना चाहता हूं और वह यह है कि हज़रत ईसा मरियम के बेटे थे। अन्त में गुणग्राही बादशाह ने जाफ़र की शूर बीरता और सत्यवक्ता होने की सराहना करके उस के सत्य उत्तर को स्वीकार किया और ईसाई कारबारियों ने चुप लगाई। कुरेशियों ने अपनी इस निष्फलता से मन में सकुच कर और प्रकट में रोष दिखला कर एक सभा एकत्र करके मुहम्मद साहिब और उन के सम्बन्धियों को जाति से पृथक् करने का उद्योग किया परन्तु यथोचित सफलता नहीं हुई। और मुहम्मद साहिब का सम्बन्ध मदीने वालों से होगया इस्से कुरेशियों के दुःख से बचाव होगया और उन की मिशन अर्थात् धर्म प्रचार में सफलता होनी प्रारम्भ होगई॥

वास्तव में मुहम्मद साहिब के मन की दृढ़ता और उन्नति उसी समय से आरम्भ होगई थी, जब से हज़रत उमर उन के साथी हुए और अधिक दृढ़ता और उन्नति का समय वहां से समझना चाहिये जहां से दूरदर्शी अबूबकर उन के अनुगामी हुए। हज़रत अबूबकर एक धनवान्, अधिकार वाले और समझदार मनुष्य थे। इसलाम मत को ग्रहण करते समय उन्होंने अपने धन माल का सातवां भाग

जिस की संख्या ४० सहस्र दीनार थी इसलाम की सामाजिक उन्नति के हेतु दान कर दिया था और पीछे भी समय २ पर द्रव्य से सहायता करते रहे और दूसरे मनुष्यों को भी जो मुहम्मद साहिब के प्रकट होने के पहिले ही अबूबकर के सहमत थे उत्साह दिला कर द्रव्य की पूरी सहायता कराते रहे मुहम्मद साहिब उन से इतने प्रसन्न थे कि उन को "सिद्दीक" अर्थात् परम मित्र की पदवी प्रदान की थी ॥

हज़रत अबूबकर ने उस्मान जो मुहम्मद साहिब का भतीजा था, ज़ुबेर जो ख़दीजा का भतीजा था, अब्दुल रहमान क़ौम ज़ोहरा जो एक धनाढ्य व्योपारी था, स्आद जो मुहम्मद साहिब का नाती और केवल १६ वर्ष की अवस्था का था परन्तु होनहार था, तलहा वा ख़ालिद इत्यादि १२ मनुष्यों की एक सभा बनाई थी जो प्रत्येक सामाजिक उन्नति के लिये सम्मति दिया करते थे ॥

इस दूरदर्शी, बलवान्, साहसी और तेजस्वी सभा के द्वारा वास्तव में एक ऐसा दृढ़ राज्य स्थापित हुआ जो संसार के सारे राज्यों से बढ़ गया और जब तक उन योग्य पुरुषों के समान मनुष्य प्रकट होते रहे और सामाजिक उन्नति का काम उन के हाथ में रहा तब तक इसलाम मत की दिन दुगुनी और रात चौगुनी उन्नति होती रही, परन्तु जैसे २ सामाजिक प्रबन्ध में असावधानी और निर्बलता हुई तैसे ही उन्नति भी नष्ट होती गई और नवीन मत प्रकट होने लगे ॥

ऊपर लिखे वृत्तान्त और मुसल्मानी मत को प्रकट करने और फैलाने वाले के दुःखों को जानते हुए भी, जो उन को कुरैशी क़ौम के उपद्रव और निष्ठुरता के हेतु सहने पड़े थे परन्तु अन्त में सफलता प्राप्त हुई थी, हिन्दुस्थान के शहनशाह औरङ्गज़ेब ने धर्म प्रचारकों

को राजकीय कारणों से निर्बल करना चाहा, परन्तु स्वयं निर्बल होगया जिस का संक्षेप वृत्तान्त इसी प्रकार से है ॥

संक्षेप वृत्तान्त सामाजिक उन्नति सिंह मत ।

जब शहनशाह औरङ्गज़ेब ने जिस ने राजकीय कारणों से अपने पिता और भाइयों इत्यादि पर भी हाथ चलाने में शङ्का नहीं की थी। सिक्खों में राजकीय शक्ति बढ़ते हुए देखी, तब गुरू नानक साहिब से नवें उत्तराधिकारी सिक्खों के अग्रगण्य गुरू तेग़ बहादुर को उन का बल कम करने के हेतु मारडाला तो उन के शूर वीर बेटे गुरू गोविन्द सिंहजी ने, जो गुरू नानक साहिब से दसवें उत्तराधिकारी थे अपने धर्म की रक्षा के लिये शान्त स्वभाव हिन्दुओं को अपने बचाव के हेतु एक युद्धाभिलाषी वर्ग बना दिया ॥

एक बार गुरू गोविन्द सिंहने अपने शिष्यों से कहा कि वे धर्म युद्ध करके जो धर्म के शत्रु हैं उन्हें नष्ट करेंगे। यह सुन कर सारे शिष्य भयभीत होगये और कहने लगे कि हे गुरू महाराज! हम लोग निर्बल हिन्दू शूर वीर पठानों और अफ़ग़ानों की इस्फहानी कृपाण का किस प्रकार सामना कर सक्ते हैं। उन लोगों की लम्बी लम्बी डाढ़ी और बलदार मूंछें, मोटी गर्दन, बड़ा डौलडौल और डरावने चहरे को देखते ही हम लोग भय के मारे अचेत होजाते हैं ॥

यह कायरता का उत्तर सुन कर वीर गुरू गोविन्द सिंहजी ने जिस प्रकार से महाभारत के युद्ध के समय श्री कृष्णजी ने घबराये हुए अर्जुन को क्षत्रीय धर्म का उपदेश किया था जिस में दुर्योधन और उस के सेनापति भीष्मपितामह द्रोणाचार्य्य इत्यादि के मस्तक कटे हुए अपना मुख खोल कर दिखाये थे अर्थात् अपने मुख द्वारा उपदेश से निर्माण कर दिया था कि संयोग और वियोग वा जन्मना

और मरना संसार का एक नियम है अर्थात् जिसने जन्म धारण किया वह अवश्य मरेगा परन्तु जो लोग धर्म से विरुद्ध अर्थात् सच्चे मत के प्रतिकूल चल कर अन्याय के साथ जन्म व्यतीत करते हैं उन का अन्याय उन को शीघ्र नष्ट कर देता है और वे थोड़े ही काल में मर जाते हैं, परन्तु जन्म लेना और मरना स्थूल शरीर अर्थात् पृथ्वी तत्व से बनी हुई काया का होता है, आत्मा जन्म मरण से रहित है, निदान इस स्थूल शरीर के लिये जो अवश्य नाश को प्राप्त होगा तुम (अर्जुन) को अपना क्षत्रीय धर्म कदापि नहीं त्याग करना चाहिये। इसी प्रकार गुरू साहिब ने बादशाही अत्याचारों का वर्णन करके अपने शिष्यों से कहा कि उन का अन्याय ही उन को नष्ट कर देगा, साथ ही उस के व्यायाम और ब्रह्मचर्य्य अर्थात् शारीरिक कसरत और वीर्य्य की रक्षा इत्यादि मुख्य २ धर्म के अङ्गों के लाभ बतला कर, उन से कहा कि इन साधनों को करते हुए तुम भी डाढ़ी इत्यादि पूरी वीरता का भयानक भेष उन से अधिक धारण करलो। सिक्खों की पदवी सिंह रक्खी और सिक्खों ने उन को सच्चा बादशाह समझा और शहनशाह औरङ्गज़ेब का नाम नौरङ्गा रक्खा। योग्य सिंहों की एक कौन्सिल अर्थात् सभा बनाई जिस का नाम गुरुमता रक्खा धर्म उपदेश के साथ २ ही व्यतीत धार्मिक पुरुषों और शूर वीरों, मुख्य करके वीर स्त्रियों के वृत्तान्त सुना कर गुरू साहिब सिंहों को उत्साह दिलाया करते थे कि जब तुम्हारे देश में ऐसी २ स्त्रियें होगई हैं तो तुम तो पुरुष हो फिर शूर वीरों की भांति रहन-गत धारण करके धर्म की रक्षा क्यों नहीं करते॥

उस आपत्तिकाल में भी जो अधिकारी शिष्य आत्म धर्म के अभिलाषी थे उन को उसी का उपदेश करके साधन कराये जाते थे और प्रातःकाल का प्रथम प्रहर बहुधा आत्मिक धर्म के उपदेश और चर्चा में ही व्यतीत होता था, निदान एक दिन भोर होते ही गुरु के

विषय में विचार करने के लिये गुरुमता अर्थात् सभा एकत्र करने की आवश्यकता हुई, जब संपूर्ण सिंहों को एकत्र किये तो ज्ञात हुआ कि दो प्रसिद्ध सिंह नहीं आये हैं। ढूंढ़ने पर जान पड़ा कि वे एक रमणीय स्थान में वृक्ष के तले बैठे, नेत्र मूंदे हुए ज्योति निरञ्जन के ध्यान में लगे हुए हैं बहुत बार पुकारा परन्तु उन्होंने कुछ न सुना तब शरीर पकड़ कर हिलाया गया उस समय वे कृपाण हाथ में लेकर उठ खड़े हुए॥

निदान इस प्रकार से धीरे २ शारीरिक और आत्मिक धर्म की उन्नति कराते हुए गुरू साहिब ने अपने सिंहों में क्षत्री धर्म को भले प्रकार दृढ़ कर दिया, क्योंकि सच्चे आचार्य जिस धर्म के अङ्ग को, जिस समय में जितनी अधिक आवश्यकता समझते हैं, उस का किञ्चित् अधिक प्रचार किया करते हैं॥

एक दिवस परीक्षा के लिये गुरू साहिब ने सङ्गत से कहा कि धर्म युद्ध में जीतने के निमित्त आवश्यक है कि एक मनुष्य अपना मस्तक यज्ञ में हवन करै। ऐसी कड़ी परीक्षा को सुन कर एक वीर पुरुष भाई दयासिंह नामी जाति का खत्री लाहौर निवासी सामने आया। गुरू साहिब उस को तम्बू के भीतर लेगये और सुख से बिठा कर एक बकरे को झटका कर दिया और रुधिर से भरी खड्ग हाथ में लिये हुए बाहर आन कर फिर कहने लगे कि एक मस्तक की और आवश्यकता है इस प्रकार परीक्षा करते हुए पांच सच्चे धार्मिक और वीर सिक्खों (१ दयासिंह, २ धर्मसिंह, ३ मोखमसिंह, ४ हिम्मतसिंह, ५ साहबसिंह) के द्वारा एक रण वीरों का पन्थ बना कर दिल्ली के बादशाह और उस के सेनापतियों से ४५ बार युद्ध किया जिन में से दृष्टान्त रूपी एक युद्ध का संक्षिप्त वृत्तान्त सुनाया जाता है॥

एक बार गुरु साहिब थोड़ेसे सिंहों की सेना सहित चमकौर ज़िला लुधियाना के दुर्ग में घेरे गये, उस समय उन्होंने जब कि बहुतसे सिंह मर चुके तो अपने ज्येष्ठ पुत्र को असंख्य बादशाही सेना से लड़ने को भेज दिया और उस के मारे जाने पर कुछ भी पश्चात्ताप न करके दूसरे पुत्र को फिर आज्ञा दी कि तू जाकर युद्ध कर। वह तुरन्त शस्त्र बांध कर जाने को उपस्थित हुआ। जाने के समय उसने प्यास के कारण किसी सिंह से थोड़ासा जल मांगा, परन्तु गुरु साहिब ने आज्ञा की कि तुम्हारा जल वहां ही धरा है जहां कि तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता गया है, हे प्यारे पुत्र! तुम शीघ्र दुर्ग से बाहर जाकर अथवा शत्रुओं के रुधिर से अपनी प्यास बुझाओ वा अपने ज्येष्ठ भ्राता के समीप जाकर स्वर्ग के अमृत से अपनी तृषा को बुझाना। इस तरह से आज्ञा करते हुए अपने कलेजे की कोर को मौत के मुंह में ढकेल दिया। दो बड़े पुत्र तो इस प्रकार धर्म युद्ध में उन के नेत्रों के सन्मुख काम आये और दो कनिष्ट पुत्र सरहिन्द के सूबे के बन्धन में फंस गये। उसने पहिले तो लालच दिया और कहा कि मुसल्मान होजावो परन्तु स्वीकार न करने पर दोनों बालकों को गले तक भीत में चुनवा दिया और कहा कि अब भी मुसल्मान होना अङ्गीकार करो तो छोड़ दूं, किन्तु उस समय भी उन्होंने हांमी नहीं भरी और निर्भयता से बोले कि हे पापी! हम को शीघ्र मार डाल कि तेरा तेज और अत्याचार करने का बल भी शीघ्र नष्ट होजावे, निदान दोनों छोटे पुत्र भीत में चुने जाकर धर्म के बलिदान हुए और उन के पीछें कई वीर पुरुषों ने भी ऐसा ही किया॥

अन्त में परिश्रम, शूर वीरता और धैर्य से धर्म प्रचार और उत्तम पुरुषों के बलिदान होजाने का यह परिणाम हुआ और होना चाहिये था कि सिक्खों की जाति पूर्ण धार्मिक और योद्धा बन गई।

इसी जाति से पंजाब का सिंह महाराजा रणजीतसिंह और उन के अधिकारी योधा हरिसिंह ललवा इत्यादि प्रगट हुए, परन्तु शोक है कि सामाजिक उन्नति का योग्य प्रबन्ध न होने के कारण जितना परिश्रम और दुःख उन्होंने धर्म की रक्षा में उठाया था उतना सुख उन को प्राप्त न हुआ ॥

मुसल्मानी बादशाहत के निर्बल होने पर सम्भव था कि योधा सिक्ख धीरे २ अपनी सामाजिक उन्नति का प्रबन्ध करके अधिक बल और सुख प्राप्त कर लेते, परन्तु उस समय विद्या से परिपूर्ण पाश्चात्य अङ्गरेज़ों का आगमन आरम्भ हुआ जिस के कारण विद्या स्वाधीनता और अनेक प्रकार की सांसारिक उन्नतियें हिन्दुस्थान के विभाग में आईं। अङ्गरेज़ी राज्य के साथ ईसाई मत का भी प्रचार आरम्भ हुआ, जिस का संक्षेप वृत्तान्त भी सुन लीजिये ॥

संक्षेप वृत्तान्त हज़रत ईसा, उन के मत और सामाजिक उन्नति का ॥

जब रूमियों और यहूदियों में धर्म का अभाव हुआ और धर्म की निरी दिखावट रहगई तब ईरान के पश्चिम में जुडिया नामी नगर के पास बैथलिम नामी ग्राम में हज़रत ईसा प्रगट हुए। उन में जन्म से ही ऐसे २ चिन्ह दिखलाई देते थे जिन के कारण बहुधा बुद्धिमान् पुरुष उन के लिये यह विचार करते थे कि कोई बड़ा काम करने के निमित्त उन्होंने संसार में जन्म धारण किया है। जुडिया के बादशाह ने जब इस प्रकार के वृत्तान्त सुने तो जैसे राजा कन्सने श्री कृष्णजी को मारना चाहा था उन को मार डालने का विचार किया और इसी कारण से माता मरियम हज़रत ईसा को लेकर मिश्र देश को चली गई और बादशाह के देहान्त के पश्चात् पीछे स्वदेश को आगई ॥

जब हज़रत ईसा की अवस्था १२ वर्ष के लग भग हुई तो वह अपनी माता के सङ्ग यहूदियों के पवित्र नगर जैरूसलम के वार्षिक मेले पर गये और बाल्यावस्था होने पर भी अपनी माता से पृथक् होकर माइकल में बड़े २ पण्डितों और विद्वानों के समीप जाकर धर्म के सूक्ष्म अङ्गों पर उन से प्रश्न किये और उन की विद्वत्ता की बात चीत को चित्त लगा के सुना और जब उन की माताने उन से पूछा कि तू मुझ से अलग क्यों होगया था तो उत्तर दिया कि मैं अपने परम पिता परमेश्वर का काम करने के लिये पृथक् हुआ था ॥

हज़रत ईसा से कुछ समय पहिले एक महात्मा सेन्ट जोन नामी प्रगट होचुके थे। वे बहुधा जारडन नदी के आस पास रहा करते थे। इस महात्मा ने तीस वर्ष की अवस्था में धर्मोपदेश प्रारम्भ किया। उन की बात चीत का ऐसा प्रबल प्रभाव था कि असंख्य मनुष्य उन का उपदेश सुन्ने के लिये एकत्र होजाते थे। उन का उपदेश बहुधा यह हुआ करता था कि पापों से तोबा करो अर्थात् पाप न करने का सच्चे मन के साथ दृढ़ विचार करो और फिर परमेश्वर की ओर ध्यान दो। वे कहा करते थे कि पापियों के आयु रूपी वृक्ष की जड़ को पाप रूपी कुल्हाड़ी ढीला कर रही है इस कारण या तो कुल्हाड़ी रूपी पापों से बच कर उत्तम संस्कार रूपी पुष्पों से वृक्ष को सुगन्धित करो और नहीं तो बहुत शीघ्र वृक्ष खोखला होकर जड़ से गिर पड़ेगा ॥

जो कोई सेन्ट जोन के ऊपर लिखे उपदेश को सुन कर पापों से तोबा करता था उस को सेन्ट साहिब जार्डन नदी के जल से अपने विचार के अनुसार शुद्ध किया करते थे और अपनी बोल चाल में उस को बपतिस्मा कहते थे इसी कारण उन का नाम—

जोन दी बेपटिस्ट प्रख्यात होगया ।

जब सेन्ट जोन ने बहुतसे मनुष्यों को पाप कर्म से तोबा करा कर बपतिस्मा दिया तो उन का नाम प्रसिद्ध होना आरम्भ हुआ और हज़रत ईसा भी उन के पास गये और उन से बपतिस्मा लिया ॥

सेन्ट जोन से बपतिस्मा लेने के पश्चात् हज़रत ईसा[१] एक निर्जन बन में गये और वहां ४० दिन तक चित्त को स्थिर करके सोचते रहे कि किस प्रकार से धर्म के उपदेश को प्रारम्भ किया जावे ॥

४० दिन के पश्चात् बन से पीछें आकर हज़रत ईसाने उपदेश करना आरम्भ किया उन की बाणी में सेन्ट जोन से भी किंचित् अधिक प्रभाव था और बहुत मनुष्य उन का उपदेश सुन्ने के लिये एकत्र होजाते थे। कुछ काल तक उपदेश करने के पीछें हज़रत ईसाने विचार किया कि कुछ मनुष्यों को अपने पास रख कर और

१ अब यह बात निश्चय होचुकी है कि जीसस क्राइस्ट एक तिब्बत निवासी बौद्ध, योगी के शिष्य थे। उन्होंने ३० वर्ष के लगभग तिब्बत में रह कर बौद्ध मत के सिद्धान्तों को पढ़ा रूस देश के एक पथिक ने कुछ समय हुआ कि उन के विद्याध्ययन की अवस्था का पूर्ण वर्णन लिखा है और सारे पण्डित लोग इस बात में सहमत हैं कि ईसाई मत एक प्रकार का बौद्ध मत ही है, विद्याध्ययन के पीछे जब ईसा मसीह स्वदेश को जाने लगे तो उन्होंने अपने गुरू से कहदिया था कि मैं पशु हिन्सा और मांस आहार के अतिरिक्त और सम्पूर्ण तत्व आप के मत के प्रचलित करूंगा ॥

ईसा मसीह के पुरुषार्थ को देखना चाहिये कि उन्होंने उस समय में जब न रेल थी न आगबोट, केवल धर्म के तत्व जान्ने के अभिप्राय से कितने दूर देश का देशाटन किया और इस देशाटन में कितना परिश्रम उन को उठाना पड़ा होगा ॥

उन को उचित उपदेश और ज्ञान की शिक्षा देकर धर्म प्रचार के लिये अन्य स्थानों में भेजना चाहिये पहिले उच्च जाति के पुरुषों को ढूंढ़ा, उन के न मिलने पर कई मछुओं को शिष्य बनाया और उन से कहा कि यदि तुम मछली पकड़ना छोड़ कर मेरे साथ रहो तो मछलियों के स्थान में मनुष्यों का अहेर करने के योग्य होजाओगे इसी रीति से १२ मनुष्यों को अपना शिष्य बना कर हज़रत ईसाने उन को अपोसल अर्थात् "ईश्वर प्रेषित" की पदवी दी थी परन्तु शोक का स्थान है कि उन में से ही एकने थोडे द्रव्य के लालच में आकर हज़रत ईसा को उन के शत्रुओं के हाथ बेच डाला जिस का संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार से है। जब हज़रत ईसा के अनुगामी अधिक होगये तब उन्होंने यहूदियों के पवित्र स्थान जेरूसलम नामी नगर में धूम धाम के साथ जाना चाहा हज़रत ईसाने दो चेलों से कहा कि एक खर अर्थात् गधा किराये करके ले आओ, जेरूसलम में गधे की सवारी बहुधा बादशाह और बडे २ मनुष्य काम में लाते हैं, गधे पर सवार होकर हज़रत ईसाने जेरूसलम में प्रवेश किया उन के शिष्यों ने अपने वस्त्र और वृक्षों के हरे पत्ते इत्यादि मार्ग में बिछा दिये थे और सहस्रों मनुष्यों की भीड़ भाड़ साथ होगई थी उस भीड़ में यह बोली दीजाती थी कि "भला हो यहूदियों के बादशाह हज़रत ईसा का" इन बातों से जेरूसलम के मन्दिर के पादरी ईर्षा से और अध्यक्ष पोलिटिकेल कारणों से अप्रसन्न हुए। उन्होंने हज़रत ईसा को कहा कि तुम अपने साथियों को इन बातों के करने से रोको, परन्तु हज़रत ईसाने रोकना अस्वीकार किया इस पर बड़े पादरी ने तीस रुपया घूंस अर्थात् रिश्वत देकर ईसा के एक शिष्य जूडाज़ नामी के द्वारा उन को पकड़वाया उस समय संपूर्ण शिष्य भाग गये हज़रत ईसा जुडिया के न्यायाधीश पाइलेट नामी के सन्मुख लाये गये जहां से उन को सूली चढ़ाने को आज्ञा हुई ॥

हज़रत ईसाने तीन वर्ष के लगभग उपदेश करने के पश्चात् सूली पाई, उन का उपदेश बहुधा मुख के द्वारा हुआ करता था जिस को सेन्ट मैथ्यूज़, सेन्ट पोल इत्यादि ने लिख कर इंजील के नाम से प्रसिद्ध किया है। उस में बहुधा यह लिखा है कि जो २ बातें हज़रत ईसा से पहिले वाले पैग़म्बरों ने कही थीं वे संपूर्ण हज़रत ईसाने पूरी कीं और इन बातों को मोजिज़ा अर्थात् चमत्कार कहा गया है इन में से बहुतसी बातें साधारण और तुच्छ भी हैं। बपतिस्मे की रीति वा त्रिमूर्तिवाद पर और मुक्ति के हेतु हज़रत ईसा पर विश्वास लाने का पूर्ण उपदेश किया जाता है॥

ईसाई मत की त्रिमूर्तिवाद पर बहुधा मनुष्य बहुत सोच विचार और वाद बिवाद किया करते हैं और उसी मत के बहुतसे मनुष्य सर विटस इत्यादि ने आदि से ही न मानने योग्य समझा है इन ईसाई महाशयों को यूनिटेरियन के नाम से पुकारते हैं॥

हज़रत ईसा की मृत्यु के पीछे सेन्ट पोल इत्यादि के परिश्रम से उन के मत की बहुत उन्नति हुई परन्तु हज़रत पोप के बलवान होने पर धीरे २ बहुतसे अत्याचार फैल गये जिन के दूर करने के लिये जर्मनी के रहने वाले मार्टिन लूथर ने अनेक परिश्रम उठा कर और पोप जैसे बलवान को, जिस के आधीन संपूर्ण ईसाई बादशाह थे नीचा दिखला कर, ईसाई मत को सुधारने योग्य बुराइयों को दूर करना चाहा। यद्यपि प्राचीन विचार वालों ने जिन को रोमैन कैथोलिक कहते हैं इस की बात को नहीं सुना और उस्से विरुद्धता की तो भी समझदार मनुष्यों का एक बहुत बड़ा समूह जिस को प्रोटैस्टैन्ट कहते हैं लूथर का सहायक होगया, जिन की सहायता से उसने रीति अनुसार सामाजिक उन्नति के नियम स्थापित किये। लाखों रुपया और सहस्रों मनुष्य इस काम में एकत्र हुए, धर्म के साथ संपूर्ण सांसारिक उन्नतियां भी प्राप्त हो ही जाया करती हैं,

निदान लूथर के धर्म परिवर्तन के पश्चात् ईसाई बादशाहों के राज्य भी फैलने प्रारम्भ हुए हिन्दुस्थान में भी पुर्त्तगालियों, फ्रांसीसियों और अङ्गरेज़ों का आना हुआ और व्यौपार करते २ यहां अङ्गरेज़ों का राज्य होगया। राज्य के साथ उन का ईसाई मत भी आया और जिस प्रकार मुसल्मानी राज्य में कबीरजी, गुरू नानक साहिब, चैतन्यजी इत्यादि प्रगट हुए, उसी प्रकार से अङ्गरेज़ी राज्य में ब्रह्म समाज, आर्य समाज इत्यादि धर्म समाजें स्थापित हुईं॥

ब्रह्म समाज।

राजा राममोहनराय साहिब का सन् १७७४ ई० में बङ्गाले में ब्राह्मणों के एक पवित्र कुल में जन्म हुआ। आदि से ही मत मतांतर में उन को बहुत अनुराग था और छोटी ही अवस्था में उन्होंने फ़ारसी, अर्बी, संस्कृत और अङ्गरेज़ी का बोध कर लिया था और उसी व्यवस्था में उन्होंने अपने मत के विचार एक छोटीसी पुस्तक के रूप में छपवाये थे, जिस पर उन के माता पिता इतने अप्रसन्न हुए कि उसी छोटी अवस्था में उन को अपने घर से निकाल कर देशाटन करना पड़ा, जिस के हेतु उन को शारीरिक दुःख तो हुए परन्तु मत का बोध और भी अधिक होगया इस देशाटन के पश्चात् उन्होंने सर्कारी चाकरी ग्रहण करली और उस में अपने प्रबन्ध की योग्यता और सचाई इत्यादि से बहुत प्रशंसा और नाम प्राप्त किया। इस समय में वे मत के सुधार में भी पूरे लगे रहे जिस का फल यह हुआ कि सन् १८३० ई० में राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज स्थापित की। उन को सचाई को सच्चे मन से खोज थी जिस के हेतु उन्होंने बाईबिल कुरान और वेदों को पढ़ा और यह निश्चय किया कि परमेश्वर की एकता का वृत्तान्त और जीव की उन्नति की रीतियां उन में लिखी हैं। उन्होंने मिस्टर आदम और कई दूसरे

यूरोपियन और देशी महाशयों को अपने सहमत बना लिया था। ये सब महाशय प्रत्येक रविवार को एकत्र होकर धर्म चर्चा किया करते थे॥

बहुत काल तक ब्रह्म समाज में वेद बहुत सन्मान और आदर की दृष्टि से देखे जाते रहे सन् १८३८ ई० में बाबू देवेन्द्र नाथ ठाकुर का चित्त धर्म की ओर लगा और उन्होंने राजा राममोहनराय के उद्योगों में हाथ बटाना चाहा उन्होंने एक तत्व बोधनी सभा स्थापित की एक छापाखाना बना कर एक समाचार पत्र प्रकाशित किया और चार ब्राह्मणों को काशी में वेदों के तत्व को भले प्रकार जान्ने के लिये भेजा परन्तु जब ब्राह्मण काशीजी से लौटे तो उन्होंने वेदों के लिये सम्मति अच्छी नहीं दी। बाबू देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने स्वयं भी भले प्रकार से खोज की और ब्राह्मणों के सहमत हुए, इस समय से ब्रह्म समाज में वेदों का पहिले जैसा आदर नहीं रहा। इस के पीछे कई कारणों से ब्रह्म समाज में आदि ब्रह्म समाज, साधारण ब्रह्म समाज और नव विधान के नाम से तीन शाखा हो गईं। बाबू केशवचन्द्र सेन ने अपने उत्तम व्याख्यानों और पुस्तकों के द्वारा हिन्दुस्थान और इङ्गलिस्तान में ब्रह्म समाज को दृढ़ और प्रसिद्ध किया। आदि में राजा राममोहनराय ने एक आत्म सभा स्थापित की थी परन्तु यह सभा विरुद्धता के कारण शीघ्र नष्ट हो गई। इस के पश्चात् उन्होंने इस समाज की नींव डाली, जिस के हेतु इन का नाम आज तक प्रसिद्ध है॥

राजा राममोहनराय ने माघ शुक्ला ११ सम्वत् १८३० में एक विशाल मन्दिर बनवाया और मन्दिर में पूजा के जो नियम रक्खे गये थे, वे ब्रह्म समाज के स्थापित करने वाले के मत के सिद्धान्तों का पूरा और सच्चा फ़ोटो अर्थात् चित्र हैं इस ब्रह्म मन्दिर को धर्म

स्मृति में से थोड़ेसे नियमों का भाषा अनुवाद करके पाठकों को भेट करते हैं ॥

१—इस मन्दिर में केवल एक पारब्रह्म परमेश्वर की जो सत्य, सार और स्थिर है उपासना की जावेगी जिस में बिना किसी प्रकार की रोक टोक के प्रत्येक मनुष्य को धर्म भाव से प्रीति पूर्वक शामिल होने का अधिकार होगा ॥

२—इस में कोई चित्र वा मूर्ति वा कोई पदार्थ ऐसा नहीं रक्खा जावेगा जिस को किसी समय ईश्वर के स्थान में माने जाने का भय होसके ॥

३—इस में किसी जीव की हत्या नहीं कीजा सकेगी और न इस के भीतर अति आवश्यकता बिना खाने पीने की आज्ञा दीजा सकेगी ॥

४—किसी ऐसे जीव वा जड़ पदार्थ के लिये जिस को दूसरे मत के लोग पूजा करते हों घृणा और द्वेष युक्त शब्द काम में न लाये जावेंगे और न उन का ऐसे शब्दों के साथ वर्णन किया जावेगा ॥

५—मन्दिर में केवल ऐसे उपदेश दिये जावेंगे जिस्से सृष्टि कर्त्ता का ध्यान करने की ओर अधिक रुचि हो शुभाचरण और मित्र भाव बढ़े और अनेक प्रकार के मत मतांतर वाले मनुष्यों में प्रीति और मेल दृढ़ हो इत्यादि ॥

आज कल की ब्रह्म समाज के नियम निम्न लिखित हैं ॥

ब्रह्म धर्म के नियम।

१—संपूर्ण सृष्टि का कर्त्ता एक है जो सर्वान्तर्यामी, नित्य और द्विविध भाव से रहित है ॥

२—वह सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, न्याई, पवित्र, दयालु, सर्व व्यापक और सर्व दर्शी है ॥

३—मनुष्य का जीव अमर है और अपार उन्नति करने की योग्यता रखता है ॥

४—जगदीश्वर सब का पिता है और संपूर्ण स्त्री और पुरुष भाई बहिन के समान हैं ॥

५—अपने जन्म भर सम भाव वर्तना और प्राणी मात्र में प्रीति रखना जीव का अन्तिम कारण है ॥

६—इस अन्तिम कारण के अनुसार बर्ताव करके जीव अपने और औरों के हेतु लाभ वा हानि कारक बनता है ॥

७—कोई पुस्तक वा मनुष्य भूल से रहित और पापों से पीछा छुड़ाने के पूर्ण योग्य नहीं है ॥

८—मानसिक ध्यान और ईश्वरेच्छानुसार मन बचन और कर्म से बर्त्ताव करना सच्ची प्रार्थना है ॥

बम्बई अहाते में बहुतसे विद्वानों ने ब्रह्म समाज के स्थान में प्रार्थना समाज के नाम से सभायें बनाईं, जिन में नियम ब्रह्म समाज के नियमों के अनुसार ही हैं परन्तु जाति के बन्धन को नहीं तोड़ा गया है ॥

संक्षेप वृत्तान्त आर्य समाज ।

सन् १८७० ई० के लगभग स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने गुरु स्वामी विरजानन्दजी सरस्वती मथुरा वृन्दावन निवासी से विद्या ध्ययन करने के पश्चात् मौन वृत्ति धारण करके केवल एक कौपीन अर्थात् लंगोटी लगा कर गङ्गाजी के तट पर विचरते थे। इन के

वैराग्य और संस्कृत विद्या का वृत्तान्त सुन कर राजा जयकृष्ण दास साहिब चंदोसी मुरादाबाद के रहने वालों ने बहुत उद्योग करके अपने पास बुलाया और कईसौ रुपये की पुस्तकें केवल इसी लिये मोल लीगईं कि धर्मोन्नति के अभिप्राय से उन का भाषा में उलथा छपवाया जावे बहुत काल पश्चात् स्वामीजी ने कानपुर, फ़र्रुखाबाद इत्यादि स्थानों में गमन करके वहां के धनाढ्य पुरुषों के द्वारा कई संस्कृत पाठशालायें स्थापित कीं जहां विद्यार्थियों को मत सम्बन्धी पुस्तकें संस्कृत में पढ़ाई गईं उस में उचित सफ़लता न देख कर स्वामीजी ने समय के प्रभाव पर ध्यान देकर भ्रमण करते हुए व्याख्यान देना आरम्भ किया और चांदापुर इत्यादि स्थानों पर कई मतों के पुरुषों से बाद बिवाद भी किये जिन में उन को भले प्रकार सफलता हुई ॥

स्वामीजी मूर्ति पूजन का खण्डन बहुत किया करते थे और वेदों को ईश्वर कृत मान कर उन की व्याख्या अष्टाध्याई, महाभाष्य, निरुक्त, निघन्टु आदि की साधनों से शास्त्रानुरोधित नियमों पर करके कहते थे कि संपूर्ण विद्याओं के बीज वेदों में विद्यमान हैं। स्वामीजी ने ऋग्वेद का प्रायः तीन चतुर्थांश भाषा अनुवाद कर लिया था और उन की बनाई हुई तीन पुस्तकें आर्य समाज और दूसरे मतों के खोजने वालों में अच्छी तरह प्रचलित हैं ॥

१ **गोकरुणा निधि**—जिस में गौ आदि पशुओं की रक्षा पर बहुत कुछ कहा है ॥

२ **सत्यार्थ प्रकाश**—जिस में वेदोक्त नियम और आज्ञाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त, स्वामीजी का सिद्धान्त और अनेक प्रकार के मत मतांतरों का खण्डन मण्डन का वर्णन किया गया है॥

३ वेद भाष्य भूमिका—अर्थात् वेदों के अनुवाद की भूमिका॥

स्वामीजी का नाम सुन कर ब्रह्म समाज लाहौर ने उन को निमंत्रण दिया और अपने प्रबन्ध से उन के व्याख्यान कराये जब इन के कई व्याख्यान ब्रह्म समाज में हो चुके जिन से संपूर्ण लाहौर में एक प्रकार की हल चल मच गई तब बहुतसे महाशय इन के सहायक और सहमत होगये उन्होंने अपने प्रबन्ध से स्वामीजी को ठहरा करके व्याख्यान कराये जिस का फल यह हुआ कि दश नियम बनाये जाकर लाहौर में प्रबल आर्य समाज स्थापित हुई और इसी प्रकार से सूबे पंजाब, पश्चिमोत्तर देश, राजपूताना इत्यादि में इन्हीं नियमों के अनुसार समाजें स्थापित होनी प्रारम्भ हुईं आर्य समाज के दश नियम यह हैं:—

१—सब सत्य विद्या और सत्य विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

३—वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुन्ना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें ॥

६—संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

७—सब से प्रीति पूर्वक, धर्मानुसार, यथा योग्य वर्तना चाहिये ॥

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में तत्पर रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सर्व स्वतंत्र रहैं ॥

कुछ काल तक समाज अच्छी तरह चलता रहा और पीछे से सभासदों में कई प्रकार की विरुद्धता के कारण झगड़ा होने से पंजाब में कई २ स्थानों में दो २ समाज होगईं ॥

थियोसोफ़िकैल सोसाइटी।

अर्थात्

तत्व विवेचक समाज।

कर्नल औलकाट साहिब और मैडम ब्लेवेड्स्की के उद्योग से तत्व विवेचक समाज की जड़ हिन्दुस्थान में जमी जो संस्कृत प्राचीन पोथियों का अनुवाद इत्यादि करके साधारण धर्म की ओर ध्यान दिलाने का उद्योग करते हैं उन के तीन नियम नीचे लिखे अनुसार हैं:—

१—एक ऐसे केन्द्र का स्थापित करना जिस में संपूर्ण सृष्टि के मनुष्य जाति, मत और समाज का पक्षपात छोड़ कर भाइयों के अनुसार एकत्र हों और एक दूसरे को आत्मा के स्थान में एक समझें ॥

२—आर्य और दूसरी पूर्वी विद्यायें मत और शास्त्रों की सोच विचार और जिज्ञासा के साथ पढ़ना और ऐसे पठन की आवश्यकता वा लाभ को निश्चय करना और प्रकाश करना ॥

३—विश्व और मनुष्य जाति की गुप्त शक्तियों का निरूपण करना ॥

सन् १८८५ ई० से धर्म के अङ्ग राजनीति सम्बन्धी बातों पर विचार करने के लिये एक सभा "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" अर्थात् (भारतीयराष्ट्रीय सभा) के नाम से स्थापित हुई जो प्रत्येक वर्ष हिन्दुस्थान के विविध स्थानों में एकत्र हुआ करती है, उसी समय पर हो सन् १८८७ ई० से एक सभा "इण्डियन ऐसोशैल कांफ्रेन्स" (भारतीय सामाजिक मेला) के नाम से आरम्भ हुई है जिस में बहुधा रीति भांति के सुधार पर विचार किया जाता है। उस सभा के अनुसार कई जातियों में रीति भांति और विद्या सम्बन्धी विचार करने को प्रति वर्ष सभायें होने लगी हैं, जिन को बहुधा कांफ्रेन्स के के नाम से पुकारते हैं ॥

जब आर्य समाज ने मूर्ति पूजन आदि का खण्डन आरम्भ किया तब मूर्ति पूजा आदि के मान्ने वालों ने अपने धर्म की रक्षा के हेतु "भारत धर्म महामण्डल" की नीव जमाई और कई स्थानों में "सनातन धर्म सभा" के नाम से सभायें स्थापित हुईं ॥

संक्षिप्त वृत्तान्त धर्म महोत्सव ।

ऊपर लिखी हुई संपूर्ण सभाओं और सोसायटियों के योग्य महाशयों और दूसरे धर्म के खोजने वालों और धार्मिक पुरुषों के द्वारा सन् १८९५ ई० में "धर्म महोत्सव" प्रगट हुआ जिस का मुख्य प्रयोजन यह है कि संपूर्ण देश के चुने हुए बुद्धिमान् और योग्य पुरुष प्रति वर्ष वा उचित समय पीछे अपनी सामान्य आवश्यकताओं पर विचार करें और मत मतान्तर के झगड़ों को छोड़ कर धर्म की उन्नति में तत्पर हों ॥

पहिला मेला धर्म महोत्सव का अजमेर में २६—२७ और २८ सितम्बर सन् १८९५ ई० को हुआ जिस में नीचे लिखे हुए मतों के महाशयों ने प्रीति पूर्वक अपने २ सिद्धान्तों को वर्णन किया ॥

१—शैव मत ॥
२—वैष्णव मत ॥
३—निम्बार्क संप्रदाय ॥
४—वल्लभाचार्य संप्रदाय ॥
५—रामानुज संप्रदाय ॥
६—वेदान्त मत ॥
७—ब्रह्म समाज ॥
८—आर्य समाज ॥
९—प्रार्थना समाज ॥
१०—सिंह मत ॥
११—राधा स्वामी मत ॥
१२—जैन मत ॥
१३—मुसल्मानी मत ॥
१४—ईसाई मत ॥

नीचे लिखे प्रश्नों पर सोच विचार किया गया था ॥

१—परमात्मा ॥
२—जीवात्मा ॥
३—पुनर्जन्म ॥
४—पाप पुण्य ॥
५—शारीरिक धर्म्म ॥
६—गृहस्थ धर्म्म ॥
७—सामाजिक धर्म्म ॥

८—आकाशवानी ॥

९—अवतार ॥

१०—मोक्ष ॥

इस प्रथम मेले की संक्षेप रिपोर्ट अङ्गरेज़ी और उर्दू में छपी थी ॥

दूसरा मेला धर्म महोत्सव का २६ से २९ दिसम्बर सन् १८९६ ई० पर्य्यन्त लाहौर में हुआ जिस में नीचे लिखे मत मतान्तरों के लोगों ने प्रीति पूर्वक अपने २ सिद्धान्त नीचे लिखे छः (६) प्रश्नों को लेकर वर्णन किये ॥

१—सनातन धर्म्म ॥

२—आर्य्य समाज ॥

३—ब्रह्म समाज ॥

४—सिंह मत ॥

५—थियोसोफ़िकेल सोसायटी ॥

६—ईसाई मत ॥

७—मूसाई मत ॥

८—मुसल्मानी मत ॥

९—फ्री थोट ॥

(६) प्रश्न नीचे लिखे अनुसार थे ॥

१—मनुष्य की शारीरिक मानसिक और आत्मिक व्यवस्था ॥

२—परलोक अर्थात् मनुष्य की मृत्यु के पीछे की व्यवस्था ॥

३—संसार में मनुष्य के जन्म लेने का मुख्य प्रयोजन क्या है और वह किस प्रकार पूर्ण होसक्ता है ॥

४—कर्म का फल इस लोक और परलोक में क्या होता है ॥

५—ज्ञान प्राप्त होने के उपाय । इस मेले की ब्यौरेवार रिपोर्ट २८० पृष्ठों की छप चुकी है ॥

तीसरा मेला धर्म महोत्सव का "शिवगिरि शांति आश्रम" गुजरात, पंजाब में एक महीने तक अर्थात् माघ की पूर्णमासी से पौष पूर्णमासी पर्यंत (९ दिसम्बर सन् १८९७ ई० से ७ जनवरी सन् १८९८ ई० तक) रहा कई २ मत मतान्तरों के बड़े २ विद्वान् सन्त महात्मा और धार्मिक पुरुष दूर २ स्थानों से पधारे थे और नीचे लिखे प्रश्नों पर वर्त्तमान समय की व्यवस्था का ध्यान रख कर सोच विचार किया गया था॥

१—मनुष्य के लिये कौन कौन्से कार्य अत्यावश्यक हैं और वे किस प्रकार किये जासक्ते हैं॥

२—उपदेशकों में क्या २ गुण होने की आवश्यकता है और उन से सर्व साधारण को किस प्रकार लाभ पहुंच सक्ता है॥

३—धर्म किस प्रकार सफलता के साथ फैलाया जासक्ता है॥

इस मेले की रिपोर्ट भी कई भाषाओं में छपी है अब धर्म महोत्सव का मेला आश्रम में सदैव प्रति वर्ष हुआ करेगा॥

धर्म महोत्सव के प्रयोजन वा मनोरथ।

१ धर्म की ओर रुचि दिलाना।

यद्यपि आज कल असंख्य मत मतान्तर संसार में हैं और नवीन होते जाते हैं परन्तु फिर भी इन दिनों के पढ़े लिखे महाशय बहुधा तो धर्म को निरर्थक वस्तु समझते हैं, वा नीति का दास होना और इसी कारण से इस ओर ध्यान नहीं देते। धर्म महोत्सव का मुख्य प्रयोजन यह है कि मनुष्य मात्र के चित्त में धर्म की ओर रुचि बढ़ाना॥

२ धर्म प्राप्ति के हेतु बर्ताव करने योग्य सहज रीतियां निकालनी ।

धर्म के नियम और ऊपरी दिखावटी बातें आपस में इतनी मिलादी गई हैं और ऐसी कठिन बोली और शब्दों में उन को वर्णन किया जाता है कि बहुधा महाशय तो धर्म की ओर ध्यान देने का विचार ही नहीं करते और जो विचार करते हैं तो समझ नहीं सक्ते वा अशुद्ध समझने के हेतु हानि उठाते हैं। धर्म महोत्सव ऐसी रीतियां निकालेगा जिन से प्रत्येक मनुष्य धर्म के उत्तम रहस्यों को भली भांति समझ कर भेदू बन सके ॥

३ धर्म सम्बन्धी बातों में सहन शक्ति प्राप्त करना ।

धर्म की बातों में पक्षपात इत्यादि कारणों से बहुधा लड़ाई झगड़े होजाते हैं, जिस के कारण शान्ति स्वभाव वाले पुरुष दूसरे मत वालों से मिलना ही नहीं चाहते और इस हेतु वे अल्प ज्ञान वाले बने रहते हैं। धर्म महोत्सव में सब से बड़ा नियम यह है कि कोई मनुष्य दूसरे पर प्रत्यक्ष वा संकेत से भी आक्षेप कदापि नहीं करने पाता, इस कारण से सहन शक्ति स्वयं बढ़ जाती है जैसा कि अजमेर के धर्म महोत्सव में सहस्रों मनुष्यों ने अपने नेत्रों से देखा है। सभा विसर्जन होजाने के पीछे भी सहन शक्ति और आपस की प्रीति की यह व्यवस्था थी कि नाथद्वारे के अधिकारीजी ने संपूर्ण हिन्दू, आर्य, ब्रह्मो, मुसल्मान, ईसाई डिलीगेट अर्थात् पुरस्कृत महाशयों को अपने यहां टी पार्टि में निमंत्रण किया और आर्य समाज अजमेर ने ब्रह्मोपदेशक मिस्टर नगरकर को अपने मण्डप पर बुला कर व्याख्यान कराया ॥

४ शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति के उपाय करने का उद्योग करना।

जब बिना पक्षपात के विद्याभिलाषी लोग संपूर्ण मतों के तत्वों को सुनेंगे और उन को अपने मन में तोलेंगे तो अवश्य मत के सच्चे तत्व उन को ज्ञात होजावेंगे और ज्ञात होने पर उन्हीं के अनुसार चलने लगेंगे, जिस का फल अवश्य यह ही होगा कि शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति होकर सच्ची शान्ति फैलेगी ॥

इस अङ्गरेज़ी राज्य के सुख चैन और स्वतंत्रता के समय में जब कि असंख्य योग्य महाशय अपना प्रिय समय, द्रव्य और मन अपने २ मत की उन्नति की ओर लगा रहे हैं, प्रत्येक मत के शुभ चिन्तक का धर्म है कि यथा शक्ति सहायता करें, जिस्से और न्यायकारी परमात्मा की सहायता से सामाजिक उन्नति में मन चाही सफलता होकर सच्चे धर्म की उन्नति हो और उस के द्वारा सुख की वृद्धि और दुःख की निवृत्ति हो ॥

सामाजिक उन्नति से पारलौकिक धर्म की भी उन्नति होती है।

जिस प्रकार से शरीर में मन एक ऐसा मिश्रित पदार्थ है कि वह स्थूल शरीर और इन्द्रियों से मिल कर तुच्छ कर्मों को करता है और बुद्धि और आत्मा से मिल कर उत्तम कर्म करता है, उसी प्रकार से सामाजिक धर्म को भी समझना चाहिये, उस के उत्तम प्रबन्ध से लौकिक धर्म को भी मन चाही उन्नति होसक्ती है और पारलौकिक धर्म की भी, निदान जिस समय हिन्दुस्थान में सामा-जिक प्रबन्ध उत्तम था उस समय सांसारिक उन्नति के अतिरिक्त

पतञ्जलि और व्यास जैसे ऋषि भी जन्म धारण करते थे परन्तु जब कि सामाजिक प्रबन्ध को चलाने वाले योग्य पुरुष अस्त होगये, आत्मिक विद्या के फैलाने वाले पुरुष भी न रहे और यदि योग्य पुरुष सामाजिक धर्म को अब फिर भी उत्तम रीति से फैलावें तो आत्मिक विद्या के जानने वाले और फैलाने वाले महाशयों की भी संख्या बढ़नी सम्भव है॥

इस कारण प्रत्येक सांसारिक और आत्मिक उन्नति चाहने वालों का धर्म है कि तन, मन और धन से सामाजिक धर्म के स्थापित करने और चलाने में सहायता करें॥
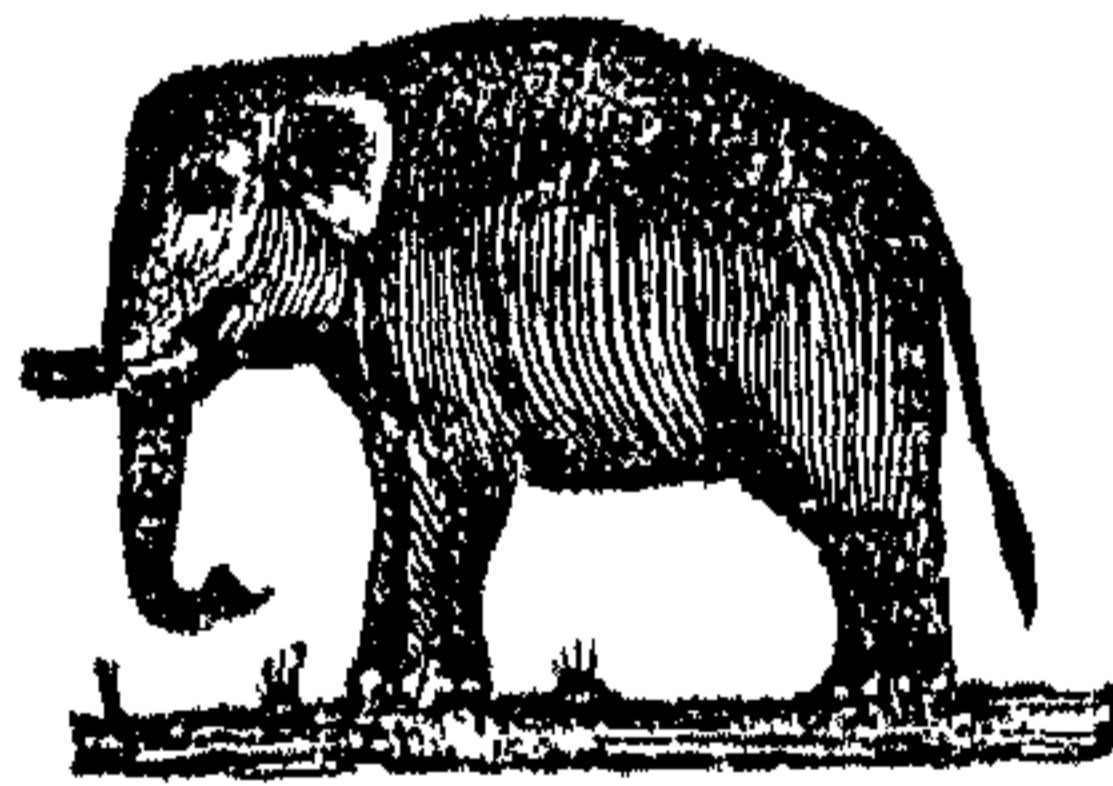
साधारण धर्म्म ।

दूसरा भाग ।

पारलौकिक धर्म्म ।

पारलौकिक धर्म्म की व्याख्या ।

इस संसार में प्रत्येक जीव जब जन्म धारण करता है, तो कुछ काल तक संपूर्ण शक्तियां धीरे २ बढ़नी आरम्भ होती हैं और कुछ समय तक उत्तम अवस्था में रहती हैं, फिर शने २ निर्बल होना आरम्भ होता है और अन्त में शरीर अर्थात् पञ्च महाभूत की बनी हुई काया, नष्ट होजाता है कौन कौनसी शक्तियां किस २ समय और किस २ प्रकार से बढती और घटती हैं, और जीव कहां से आता है, और फिर कहां चला जाता है, किस प्रकार आता है और किस प्रकार जाता है, इन सब बातों को ठीक २ जाने और उन से लाभ उठाने और दूसरों को बतलाने और उन को उस के अनुसार चलाने को, पारलौकिक धर्म समझना चाहिये ॥

पंच महाभूत शरीर का जन्म और मौत ।

यदि शारीरिक धर्म का ठीक २ पालन किया जावे, तो इस स्थूल शरीर का कोई न कोई विभाग पचास (५०) वर्ष की अवस्था तक उत्पन्न होता और वृद्धि पाता रहता है और यदि यथोचित साधन न रक्खा जावे, तो जिस समय तक रक्खा जावेगा, उसी समय तक यह अवस्था रहैगी; इस के पश्चात् उतने ही समय तक धीरे २

कोई न कोई विभाग हर समय निर्बल होना और मरना आरम्भ होजाता है और जब शारीरिक शक्तियां बहुत अधिक निर्बल होजाती हैं और मर जाती हैं, तो जीव शरीर का त्याग कर देता है, परन्तु आत्मिक शक्तियां सदा बढती रहती हैं, निदान बाल्य और युवा अवस्था में शारीरिक शक्तियां, इन्द्रियां और उन के विषयों इत्यादि की ओर अधिक ध्यान रखना चाहिये, परन्तु जब शारीरिक शक्तियों का घटाव आरम्भ हो, तो लालच और अधीर के साथ उन से काम लेना वा उन को बढ़ाने के उद्योग, सोच और निरासपने में समय व्यर्थ व्यतीत करना उचित नहीं, किन्तु शारीरिक शक्तियों का उचित रीति से, मध्यम अवस्था में, बर्ताव करते हुए उन से अत्युत्तम अर्थात् मानसिक और आत्मिक शक्तियों की वृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिये कि जो स्वाभाविक भी प्रति क्षण बढ़ती रहती हैं, अर्थात् अवस्था के प्रथम विभाग (५०) पचास वर्ष तक लौकिक धर्म को प्रधान और पारलौकिक धर्म को गौण अङ्ग में समझना चाहिये; और दूसरे विभाग में पारलौकिक धर्म को प्रधान और लौकिक धर्म को गौण अङ्ग में समझ कर, समय का अधिक विभाग आत्मिक शक्तियों की ओर ध्यान देने में व्यतीत करना चाहिये ॥

हिन्दुस्थान के ऋषियों के अनुसार समय का विभाग ।

ऋषियों ने, जो सृष्टि के नियम और आत्मिक शक्तियों से भले प्रकार जानकार थे, अवस्था को चार विभाग में बांटा था :—

१—ब्रह्मचर्य्याश्रम ॥

२—गृहस्थाश्रम ॥

३—बानप्रस्थाश्रम ॥

४—संन्यासाश्रम ॥

इन में से प्रथम दो आश्रमों सम्बन्धी आज्ञायें, इस पुस्तक के पहिले विभाग, लौकिक धर्म, में वर्णन की गई हैं, और पिछले दो आश्रमों सम्बन्धी आज्ञायें, इस दूसरे विभाग पारलौकिक धर्म में लिखी जावेंगी॥

ऋषियों के उस समय में प्रत्येक बालक और कन्या, चाहे वे धनवान् के हों वा दरिद्री के, गुरु कुल में जाकर, वीर्य्य की रक्षा करते हुए और विद्या पढ़ते हुए, मनुष्य जाति की संपूर्ण शक्तियों को प्रगट किया करते थे। पचीस वर्ष की अवस्था के लगभग अपनी विद्या, बुद्धि और मन की इच्छा के अनुसार किसी व्यापार को ग्रहण करके, गृहस्थाश्रम में संपूर्ण सांसारिक सुख धर्मानुसार प्राप्त करते थे; फिर पचास वर्ष की अवस्था होने पर वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम में होकर, गृहस्थ के सम्बन्धों को धीरे २ त्याग करके, वन में वा बस्ती के किनारे किसी एकान्त स्थान में, निवास करते थे; और जिस २ विद्या में जो २ योग्य और गुणवान् होते थे, वे ब्रह्मचारियों इत्यादि को उस विद्या के गुप्त भेद बतलाते थे, जैसे आयुर्विद्या के जान्ने और चाहने वाले समझदार शिष्यों को व्यवहारिक शिक्षा देते थे, और धनुर्विद्या के जानकार वीर और योद्धा ब्रह्मचारी पुरुषों को युद्ध के रहस्य और अभ्यासिक ऊंच नीच समझाते थे॥

शङ्का—प्रथम भाग, लौकिक धर्म के अन्तरगत सामाजिक धर्म के अध्याय में, हिन्दुस्थान की सामाजिक उन्नति के वर्णन में, आपने नेशनल कांग्रेस को धर्म का राज्य नीति अङ्ग और सोशल कान्फ्रेन्सों को धर्म का जाति की उन्नति अङ्ग कहा है, और वास्तव में वे सभायें अपने नियमों में स्पष्ट रीति से कहती हैं कि मत मतान्तर से उन को कुछ सम्बन्ध नहीं है, और अब दूसरे विभाग पारलौकिक धर्म

में आप कहते हैं कि संन्यासी महात्मा युद्ध विद्या की अभ्यासिक रीतियां सिखलाया करते थे, और वास्तव में संन्यासी संसार को मिथ्या और माया का जाल कहते हैं, और किसी काम के भागी नहीं होते हैं, तो युद्ध के कामों में भागी होना कैसा ?

समाधान—कांग्रेस और कांफ्रेन्स वाले मुख द्वारा वा लिख कर, चाहे जैसे कहैं कि धर्म से उन को कुछ सम्बन्ध नहीं, फिर भी धार्मिक पुरुष ही उन का काम चला रहे हैं ; और जब कभी अधर्म पर चलने वाले मनुष्य उन के काम में मिले हैं, तब बहुत हानि उठानी पड़ी है । धर्म भाव से जो कार्य कौड़ियों से होता है वह दूसरी रीतियों से सहस्रों रुपये व्यय करने पर भी वैसा उत्तम नहीं होसक्ता ॥

वास्तव में सच्चे धर्म का अभाव होने, और मत मतांतरों में पक्षपात, और नये २ झगडे देख कर, कई मनुष्यों ने धर्म के मुख्य २ अङ्गों के सुधारने का । दूसरी रीतियों और नामों से आरम्भ कर दिया है, निदान यह शङ्का कदापि नहीं करनी चाहिये कि उन सुधारों को यथार्थ में भी धर्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥

इसी प्रकार ऋषियों के समय में संन्यासाश्रम से यह प्रयोजन था कि गृहस्थ धर्म के कर्मों को छोड़ कर अपने बाल बच्चों कुटुम्बियों और सम्बन्धियों के मोह से निर्लेप होकर जो २ लाभ अपनी योग्यता और बाहु बल से उन को पहुंचाए जाते थे, वे लाभ प्राणी मात्र को पहुंचाए जावें । अपने छोटेसे कुटुम्ब को त्याग के, सृष्टि मात्र को अपना कुटुम्ब पृथ्वी को माता और परमात्मा को पिता और संपूर्ण मनुष्यों को भ्राता अर्थात् भाई और दूसरे जीवों, पशु, पक्षियों इत्यादि को अपना सम्बन्धी समझा जावे ॥

निदान उस आश्रम में निज के लाभ पर दृष्टि कुछ भी नहीं रहती थी, अतएव प्रत्येक काम में देशी और जाति की भलाई को दृष्टि में रखने के हेतु, बड़े २ भारी उद्यमों में सामाजिक उन्नति के उत्तर दाता मनुष्य संन्यासियों से सम्मति लिया करते थे; और बहुधा उन्हीं की सम्मति पर चला करते थे, राज्य सभा में भी संन्यासियों का बहुत आदर सत्कार हुआ करता था, लड़ाई झगड़ों के समय दूत का काम उन से लिया जाता था, और दोनों ओर वाले उन पर भरोसा रखते थे, नारदजी इत्यादि ऋषियों का बहुत-सी पुस्तकों में ऐसे कामों के करने का वर्णन देखने में आता है। युद्ध विद्या को ऋषियों के समय में बड़े आदर से देखा जाता था और उस को जैसा कि वह वास्तव में भी है अति आवश्यक, लाभ दायक और उत्तम धन्धा समझते थे। विश्वामित्रजी ने वह उत्तम गुण महाराजा रामचन्द्रजी को सिखलाया, और द्रोणाचार्य ने अर्जुन और दूसरे राज पुत्रों को उस की शिक्षा दी। धनुर्विद्या और उस के द्वारा जय को ऐसे आदर की दृष्टि से देखा जाता था कि परशु रामजी, जिन्होंने क्षत्रियों से बहुत युद्ध किया, और उन को जीता अवतार करके माने जाते हैं। इसी प्रकार महाराजा रामचन्द्रजी को रावण के पराजय करने के हेतु अवतार समझते हैं और उस पराजय को देशी शूरवीरता का नमूना समझ कर रामलीला नामी वार्षिक मेला कराया जाना आरम्भ हुआ है कि प्रत्येक वीर पुरुष को उत्साह और प्रत्येक अत्याचारी और दुःख देने वाले को चितावनी का प्रभाव होता रहे। श्रीकृष्णजी महाराज ने, जिन को संपूर्ण कला अवतार कहते हैं, प्रसिद्ध महाभारत की लड़ाई को कराया और अपनी राजनीति की समझ और धनुर्विद्या के दांव पेचों से अर्जुन की सहायता और महाराजा युधिष्ठिर की जय कराई। जब सामाजिक उन्नति का प्रबन्ध उत्तम न रहा, तब आश्रम भी बिगड़ने लगे,

धर्म के नाम से अनेक प्रकार की असम्भव बातें और कहानियों से भरी हुई पुस्तकें, जान बूझ के वा समयाधीन, संस्कृत में लिखी गईं, जिन के कारण सच्चे धर्म और उत्साह आदि गुणों से हट करके, मत मतांतरों के झगड़ों में लोगों को रुचि होगई है। प्रत्येक मत वालों ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिये, नवी से नवी रीतियों से तरुण और अनभिज्ञ मनुष्यों को साधु बना कर, अपने विचारानुसार उन से काम लेना आरम्भ किया, उस समय से सच्चे संन्यासी महात्माओं ने, जिन का सामाजिक और दूसरे सांसारिक कामों, विद्या पढ़ाने और हुनर सिखलाने इत्यादि में, केवल गौण अङ्ग में सम्बन्ध था, इस ओर से ध्यान को हटा कर अपना सारा समय अपने मुख्य काम आत्मिक शक्तियों के जगाने में लगाना प्रारम्भ किया और यदि अब फिर सच्चा धर्म प्रगट होकर सामाजिक उन्नति का काम ठीक तरह आरम्भ हो, तो ऐसे सच्चे संन्यासी महात्मा भी अवश्य प्रगट होजावेंगे, जो सामाजिक उन्नति के कामों में भी सहायता देवें और सच्चे संन्यास, योगाभ्यास, ज्ञान और मोक्ष आदि साधनों का भी उपदेश करें, जिन का संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है॥
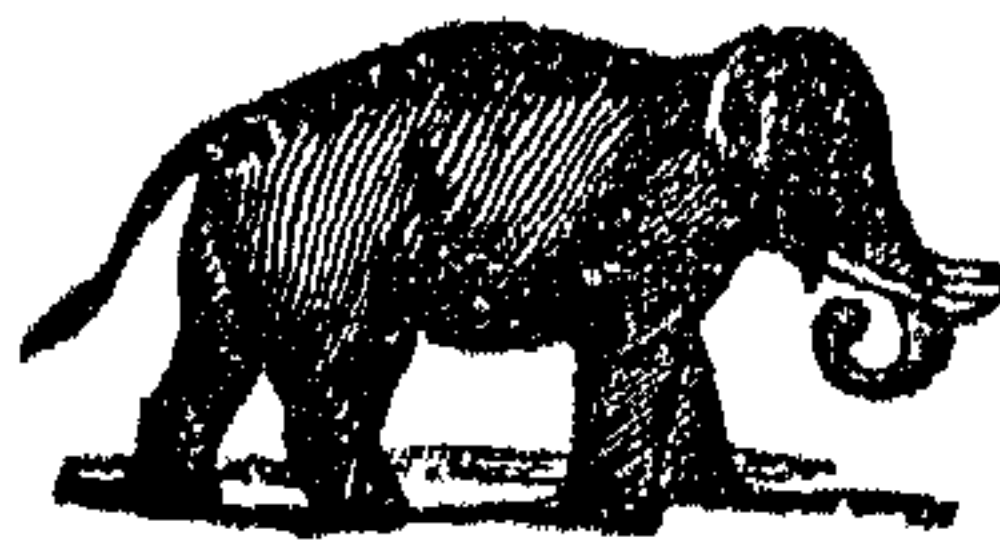
दूसरा भाग।

पहिला अध्याय।

संन्यास धर्म्म।

संन्यास धर्म्म की व्याख्या।

संन्यास एक संस्कृत शब्द है, जिस का अर्थ छोड़ना है, बोल चाल में संन्यास का अर्थ गृहस्थाश्रम के कर्म और स्वार्थ से भरी हुई इन्द्रियों और उन के विषय सम्बन्धी कार्यों के छोडने, आत्मिक शक्तियों के बढ़ाने और उन के द्वारा सच्चे आनन्द और शान्ति के प्राप्त करने को कहते हैं॥

जिन कर्मों के करने से, इन्द्रियां मन और बुद्धि वश में रहैं, परोपकार का स्वभाव पड़े, निरिच्छा का धन प्राप्त हो, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार से सामना करने और उन के जीतने का पराक्रम उत्पन्न हो, सच्चा ज्ञान प्राप्त हो, उन सब कर्मों और शक्तियों के काम में लाने को संन्यास धर्म समझना चाहिये॥

आनन्द और उस के भेद और उन के त्याग करने की रीति।

परमात्मा ने प्रत्येक जीव को अपने बचाव और उन्नति के लिये असंख्य शक्तियां दी हैं। मनुष्य के शरीर में वे संपूर्ण शक्तियां पूर्ण बल के साथ उपस्थित हैं; और वे संपूर्ण शक्तियां अपनी रक्षा और उन्नति के लिये प्रति क्षण अपने आहार की इच्छा करती रहती हैं; और

उस आहार की मिलने पर एक प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होती है, जैसे इन्द्रियां हर समय अपने आहार की इच्छा करती हैं, अर्थात् कान चाहते हैं, कि कुछ सुनते रहैं, नेत्र देखते रहना चाहते हैं इत्यादि और जिस प्रकार के शब्द, अच्छे हों वा बुरे, कान में पड़ते रहते हैं, उसी प्रकार के शब्दों को सुने की इच्छा बढ़ती रहती है, और उन को सुन के प्रसन्नता होती है; और जिस प्रकार के पदार्थों को नेत्र बहुधा देखते हैं, उन्हीं को देखने की इच्छा करते रहते हैं और उन को देख कर प्रसन्नता प्रगट करते हैं ॥

पहिला त्याग ।

कानों को बुरे शब्दों से हटा कर, अच्छे शब्दों में लगाने का स्वभाव डालना; और नेत्रों को बुरे पदार्थों से हटा के, उत्तम पदार्थों में लगाना, संन्यास धर्म में पहिला त्याग समझना चाहिये। जिन महात्मा पुरुषों ने इस त्याग के फल को प्राप्त किया है, वे इस त्याग के फल को चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होना कहते हैं, अर्थात् शरीर रूपी नगर में, जो इन्द्रियों के द्वारा कर्म का चक्र चल रहा है उस को वे अपने वश में कर लेते हैं ॥

दूसरा त्याग ।

इन्द्रियों के आनन्द से अधिक आनन्द मन के द्वारा प्राप्त होता है, निदान जांच से जाना गया है कि जब मनुष्य अच्छे वा बुरे विचार में मगन होता है, उस समय पास का भी शब्द सुनाई नहीं देता, नेत्रों के आगे धरा हुआ पदार्थ ही नहीं सूझता, उन विचारों को यदि वे बुरे हों तो अच्छों से बदलना संन्यास धर्म में दूसरा त्याग है जिस के प्राप्त होने पर स्वर्ग लोक की प्राप्ति कही गई है, क्योंकि उत्तम विचारों के द्वारा सदैव अच्छे ही कर्म होते हैं जिन का फल सदैव सुख का देने वाला होता है; और सुख ही स्वर्ग का सच्चा लक्षण समझा गया है ॥

तीसरा त्याग।

चिर काल तक उत्तम विचारों में लगे रहने से, बुद्धि निर्मल और सात्विक होजाती है, और वह झूठे विचारों को ग्रहण करना कभी नहीं चाहती, इस अवस्था को त्याग का तीसरा पद समझना चाहिये, जिस के द्वारा सत्य लोक की प्राप्ति होती है अर्थात् सचाई के आनन्द में मगन रहना होता है; और उस बुद्धि के बल से जिस विद्या वा अभ्यास की ओर ध्यान लगाया जाता है, उस में पूरी उन्नति होने लगती है और असंख्य सचाइयां प्रगट होजाती हैं॥

चौथा त्याग।

जब बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म होजाती है, उस समय उस के द्वारा जान पड़ता है कि उस को सहारा देने वाली एक चैतन्य शक्ति है, जिस को जीवात्मा कहते हैं, उस चैतन्य शक्ति तक पहुंच के बुद्धि शान्त होजाती है और जीवात्मा के स्वाभाविक गुण प्रगट होजाते हैं और यह त्याग का चौथा और अन्तिम पद समझना चाहिये। इस पद पर पहुंच कर, जीवात्मा के द्वारा, परमात्मा का अनुभव हो करके, ब्रह्म लोक की प्राप्ति कही गई है अर्थात् ब्रह्म स्वरूप परमात्मा, जो संपूर्ण स्थानों में व्यापक और परिपूर्ण है, उस का अनुभव हृदय रूपी भूमि में होकर, भीतर वा बाहर सब स्थानों में उसी का प्रकाश दिखाई देने लगता है, इसी को महाआनन्द ब्रह्मानन्द इत्यादि नामों से कहते हैं वह सब से उत्तम आनन्द इस हेतु से कहा जाता है कि इस से पहिले के संपूर्ण आनन्द उद्योग से प्राप्त होते हैं, तिस पर भी सदैव रहने वाले नहीं हैं, क्योंकि जिस समय उद्योग बन्द कर देते हैं, तत्काल ही वे आनन्द भी जाते रहते हैं। वरन प्रति दिन उद्योग बने रहने पर भी एक नियत समय पश्चात्, वे आनन्द बन्द होजाते हैं, परन्तु यह अन्तिम आनन्द जीवात्मा के स्वाभाविक

गुणों के द्वारा प्राप्त होता है, जो गुण सदैव रहते हैं, क्योंकि जैसे जीवात्मा अनादि और अविनाशी है, ऐसे ही उस के गुण भी अनादि और अविनाशी हैं ॥

त्याग की कठिनाइयां ।

प्रगट होकि ऊपर लिखे आनन्दों का त्याग करना, यद्यपि सुगम काम नहीं है, वरन अत्यन्त ही कठिन है, परन्तु चिर काल तक परिश्रम, जो धैर्य्य और वीरता से किया जावे, तो सफलता होनी सम्भव है, क्योंकि प्रथम तो अविद्या रूपी असावधानता के चिक से, यह भरोसा रहता है कि प्रत्येक आनन्द जिस में रस आता है, वही आनन्द सब से उत्तम है, इसी हेतु उस के त्याग की इच्छा नहीं होती ; और जब तक वह छोड़ा न जावे, उस्से ऊंचे पद का आनन्द प्राप्त होना असम्भव है ; और यदि किसी महात्मा के उपदेश और सत्सङ्ग से यह विश्वास होकर कि वर्त्तमान आनन्द से अधिक आनन्द प्राप्त होना सम्भव है, उत्तम आनन्द की इच्छा की जावे, तो वर्त्तमान आनन्द का रस आड में आता है, अर्थात् बारम्बार अपनी ओर खींचता है और ध्यान को अपनी ओर से हटने नहीं देता, क्योंकि उस का स्वभाव पड़ा हुआ होता है ॥

दृष्टान्त महाराजा भर्तृहरिजी ।

भर्तृजी राज्य को छोड़ साधु हुए थे, एक दिन रात के समय बन में जारहे थे, चांदनी खिली हुई थी, मार्ग में किसी पथिक ने, जो इन से पहिले उस पथ में निकला था, पान की पीक थूकी थी, वह चांद की किरणों से एक सुन्दर लालसी दीखती थी। भर्तृजी की दृष्टि उस पर पड़ी, तो लालच के वश होकर उस को उठाना चाहा, परन्तु यह विचार करके कि सारा राज्य ही छोड़ दिया, तो अब एक लाल को उठा कर क्या करेंगे, वैराग्य के वेग में आगे बढ़ गये,

परन्तु मन ने फिर दबाया कि लाल को लेना चाहिये, अन्त में थोड़ेसे पांवड़े चल कर, फिर लौट कर आए, जब उस मन कल्पित लाल को उठाने लगे तो उस की यथार्थ दशा जान पड़ी ; और पीक के मैल से उंगली अशुद्ध होगई, उस समय भर्तृजी ने मन को बहुत धिक्कार दिया उन का वाक्य है ॥

दोहा ।

रत्न जड़ित मण्डप तजे, तजी सहस्रों नार ।
अजहु कामना नहिं तजी, हे मन तोहि धिकार ॥१॥

दृष्टान्त विल्वमङ्गलजी ।

यह महात्मा ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे, परन्तु कुसङ्ग के कारण एक वेश्या से प्रीति करके, दिन रात उस के घर पर पड़े रहते थे । एक दिन किसी धर्म सम्बन्धी कार्य के हेतु सब दिन भर घर में रहना पड़ा, रात्रि को अवकाश मिला, उसी समय अर्धरात्रि को वेश्या के घर को चले । मार्ग में नदी आती थी, उस समय दैव योग से कोई मृतक बहा चला आता था, ये समझे कि प्यारी ने नौका भेजी है, उस पर चढ़ बैठे और नदी पार उतर गये । घर का द्वार बन्द था और किसी ओर से घुसना सम्भव न था, चारों ओर घर के घूमने लगे, दैवाधीन एक सर्प दीवार से लटक रहा था, इन्होंने अपने काम विकार के कारण यह समझा कि प्राण प्यारी ने मेरे ही निमित्त निसेनी लटकाई है, तुरन्त उस को पकड़ के छत पर पहुंचे; और जब नीचे उतरने को कोई मार्ग न मिला, तो चौक में कूद पड़े । कूदने का शब्द सुन के, वेश्या और उस की सम्बन्धी सब जाग पड़े । विल्वमङ्गलजी को देख कर, उन से पूछा कि किस प्रकार नदी को पार किया और छत चढ़े उन से उत्तर सुन कर वेश्या के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि विल्वमङ्गलजी को ऐसी प्रीति

परमात्मा से होजावे तो बहुत अच्छा हो । यह विचार उसने विल्व-मङ्गलजी से कहा और कहते समय उस को ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ कि वह विल्वमङ्गलजी से बोली कि तुम जो चाहो सो करो, मैं तो इसी समय परमात्मा से प्रेम का सम्बन्ध आरम्भ करती हूं, विल्व-मङ्गलजी पर बहुत कुछ प्रभाव हुआ, रात का शेष भाग दोनों ने परमात्मा की चर्चा में काटा ; और भोर होते ही सांसारिक सम्बन्धों को त्याग कर और एक दूसरे से पृथक् होकर, बन में चले गये । विल्वमङ्गलजी चिर काल पर्य्यन्त परमात्मा के प्रेम में मगन होकर, भ्रमण करते रहे, एक दिन किसी नगर में पहुंचे, कई स्त्रियां नदी के तट पर स्नान कर रही थीं, इन की दृष्टि उन पर पड़ी और सच्चे त्याग और बहुत समय तक सत्सङ्ग में रहने पर भी उन का मन एक सुन्दर स्त्री पर आसक्त होगया, जब वह स्त्री स्नान करके चली, ये भी उस के पीछे हो लिये । जब स्त्री अपने घर में चली गई, तो ये डयोढ़ी के द्वार पर बैठ गये ; थोड़े समय पीछे उस स्त्री का पति आया, वह बहुत भला मानस और साधु सेवा करने वाला था, उसने विल्वमङ्गलजी को द्वार पर बैठा देख कर, स्त्री से जाकर पूछा कि साधु को भिक्षा क्यों नहीं दी ? स्त्री भी पतिव्रता और सत्यवादी थी, उसने सारा वृत्तान्त विल्वमङ्गलजी के नदी से उस के पीछे २ आने का वर्णन किया । उस के पति ने यह संपूर्ण वृत्तान्त जान्ने पर भी विल्वमङ्गलजी को अपने चौबारे में लेजा कर उन का बहुत सत्कार किया, बात चीत करने से वे सच्चे साधु विदित हुए, तब मन में बहुत अचम्भित हुआ कि क्या किया जावे एक ओर अपने नाम और आबरू का विचार था और दूसरी ओर साधु सेवा का, अन्त में सांसारिक पदार्थों को असत्य और अल्पायु समझ कर साधु सेवा को उत्तम समझा और सायंकाल को स्त्री से कहा कि उत्तम शृंगार करके और भोजन का थाल लेकर, विल्वमङ्गलजी के पास जा और

उन की संपूर्ण इच्छाओं को पूरी कर। स्त्री यह सुन के आश्चर्य में हुई और सोचने लगी कि यदि स्वामी की आज्ञा पालन नहीं करती हूं, तब तो पतिव्रत धर्म खण्डन होता है और पालन करूं तो महापाप में फंसती हूं, अन्त में उसने पतिव्रत धर्म मुख्य समझ कर, सब शृंगार किया और उत्तम २ भोजन थाल में रखके, विल्वमङ्गलजी के पास गई, परन्तु मन में परमात्मा से प्रार्थना करती थी कि जिस प्रकार आपने द्रौपदी की लज्जा रक्खी उसी प्रकार मेरी भी सहायता कीजिये! जब विल्वमङ्गलजी के पास पहुंची, तो उस स्त्री और उस के पति की भक्ति और निश्चय को देख के, वे भयभीत होगये, अपने भूले हुए चित्त को धिक्कार देकर, वश में किया; और स्त्री से कहा कि दो सुइयां भी ले आओ। जिस समय स्त्री सुइयां लाई, विल्वमङ्गलजी ने दोनों सुइयां अपनी दोनों आंखों में मार लीं, लोहू की धारा बहने लगी और वे अंधे होगये। स्त्रीने घबरा के संपूर्ण वृत्तान्त अपने पति से कहा, वह दौड़ा हुआ विल्वमङ्गलजी के पास आया और बहुत दीनता से बोला कि हे महाराज! जो कुछ दोष मुझ से वा मेरी स्त्री से हुआ हो, वह क्षमा करके, आप कारण बतलाइये कि आपने अपनी आंखें क्यों फ़ोड़ डालीं? विल्वमङ्गलजी ने हंस कर कहा कि तुम दोनों परमात्मा के भक्त हो तुम्हारे सत्सङ्ग और सच्ची भक्ति को देख के मेरा चंचल मन वश में आगया, तुम दोनों कृपा करके मेरे अपराध को क्षमा करो और इस कारण से कि इस संपूर्ण दुःख का हेतु आंखें थीं, मैंने उन को दण्ड देना उचित समझा। उन को दण्ड देने में, जो कुछ क्लेश मुझ को हुआ, मैं उस के योग्य था, क्योंकि मैंने अपने गुरू की आज्ञा पालन नहीं की, उन्होंने कहा था कि बुराई के कारण को समझ कर, उस को सदैव रोक देना चाहिये और यह शिक्षा देते समय उन्होंने एक महात्मा का इतिहास भी सुनाया था, जो संक्षेप से इस भांति है॥

एक महात्मा का इतिहास ।

एक संन्यासी महात्मा किसी साहूकार के घर टिके हुए थे, एक दिन साहूकार के पांव में उत्तम पग रखियां देख कर, उन के मुंह से निकला कि ये पग रखियां बहुत सुन्दर हैं, साहूकार ने तुरन्त उस प्रकार का एक जोड़ा बनवा के उन से प्रार्थना की कि उस को धारण करें, महात्मा ने कहा कि ऐसा बहुमूल्य और सुन्दर जोड़ा पहन कर आवश्यक है कि संपूर्ण वेश भी उसी प्रकार का हो। साहूकार ने कहा कि वस्त्र भी तुरन्त बन सक्ते हैं महात्मा ने कहा कि जब वेश उत्तम होगा, तो बैठने को घर और जाजम इत्यादि भी उत्तम होना चाहिये। साहूकार ने कहा कि वह भी बनाया जा सक्ता है। महात्मा ने कहा कि जब उत्तम घर और उत्तम वस्त्र होंगे, तो भोजन भी उत्तम ही होना चाहिये। साहूकार ने उस को भी अङ्गीकार किया। महात्मा ने कहा कि जब ये संपूर्ण सामान होंगे, तो विषय भोग की भी कामना होगी, साहूकार ने कहा कि इस का भी प्रबन्ध होना सम्भव है। महात्मा ने कहा कि फिर बाल बच्चे होंगे, उन की बीमारी और मृत्यु के समय शोक प्राप्त होगा उस का भी तुम ज़िम्मा लेलो। साहूकार ने कहा कि उस शोक का मैं किस प्रकार ज़िम्मा लेसक्ता हूं? महात्मा ने कहा कि यदि उस का ज़िम्मा नहीं लेसक्ते, तो एक पग रखियों की जोड़ी के लिये हम को झगड़ा रचना और फिर दुःख और क्लेश उठाना, हम को स्वीकार नहीं; और इसी कारण तुम अपनी पग रखियां पीछी लेजाओ॥

विल्वमङ्गलजी ने कहा कि इस इतिहास के अनुसार हमारा पहला धर्म यह था कि जिस समय तुम्हारी स्त्री पर कुदृष्टि पड़ी थी, उसी समय संपूर्ण बुरे परिणामों को सोच कर, उस दृष्टि को हटा लेते, दूसरा कर्म यह था कि उस के साथ न आते, तीसरा कर्तव्य

यह था कि तुम्हारी भक्ति को देख के, मन में लज्जित होकर, पीछे चले जाते परन्तु लगातार भूल पर भूल कीगई, निदान इस का दण्ड भोगना आवश्यक था ॥

ऋषियों के समय में त्याग की एक साधारण रीति।

हिन्दुस्थान के ऋषियों ने कर्म फल की इच्छा त्यागने को सच्चा त्याग कहा है, इस त्याग को वे धीरे २ इस रीति से प्राप्त किया करते थे कि जब कोई कर्म करने लगते, उस समय परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे कि यद्यपि हम इच्छा के पुतले हैं और इसी कारण इच्छा से रहित नहीं होसक्ते, तो भी इस वर्त्तमान अपने कर्म का फल हम आप की सेवा में अर्पण करते हैं इसी प्रकार एक २ कर्म का फल परमात्मा के अर्पण करते २ उन का स्वभाव पड़ जाता था कि कर्म फल की इच्छा को त्याग सकें, जब इस त्याग का भली भांति स्वभाव हो जाता था, तब उन का यह उद्योग होता था कि कर्म फल की इच्छा त्याग के साथ ही त्याग के अभिमान को भी छोड़दें जब इस में भी भले प्रकार सफलता होजाती थी, तब उन को महात्यागी कहा जाता था ॥

पराशर ऋषि और मैत्री का वर्णन ।

कहते हैं कि याज्ञवल्क्य ऋषिने जब बन में जाने का विचार किया, तब अपनी स्त्री गार्गी और मैत्री को बुला के, रुपयों, मोहरों और दूसरी अमोल्य वस्तुओं से भरे हुए सन्दूकों की कुंजियां उन को दीं और कहा कि तुम आधा २ धन बांटलो। यह सुन करके, गार्गी ने अपने मन में सोचा कि याज्ञवल्क्यजी महाविद्वान् और बुद्धिमान् हैं, जब वे अपना सारा धन हम को सौंप कर, बन में जाते हैं, तो अवश्य इस्से अधिक धन उन को उस स्थान में प्राप्त होगा; और इन सांसारिक धन के भण्डारों को त्याग करने से अवश्य उन को अत्यन्त

उत्तम आत्मिक धन के भण्डार मिलेंगे। यह सोच करके, गार्गी ने उत्तर दिया कि हे महाराज ! संपूर्ण धन मैत्री को देदो, मैं आप के साथ वन में चल कर, सत्सङ्ग का धन लेने की इच्छा रखती हूं, निदान गार्गी उन के साथ चली गई और मैत्री सब धन लेकर अपना निर्वा करने लगी। कुछ काल में उस को भी वैराग्य हुआ और वह पराशर ऋषि के समीप गई और उन से धन आदि सांसारिक पदार्थों के क्लेश वर्णन करके, उन क्लेशों से छूटने का उपाय पूछा। पराशरजी ने उत्तर दिया कि जिस वस्तु में क्लेश प्रतीत होता है, वह त्यागने के योग्य है मैत्री ने अपने धन आदि को पराशरजी के भेट करके, वन में एक कुटिया बनाई और उस में रहना आरम्भ किया। कुछेक दिवस पश्चात्, पराशरजी मैत्री के निकट गये और पूछा क्या दशा है ? मैत्री ने कहा, महाराज आनन्द प्राप्त नहीं हुआ। पराशरजी ने कहा कि तुम्हारा त्याग पूर्ण नहीं है। यह सुन कर, मैत्री ने कुटिया को भी त्याग दिया फिर भी पराशरजी ने यही कहा कि अभी तक पूर्ण त्याग नहीं हुआ। मैत्री ने अपने वस्त्र आदि भी अग्नि में जला दिये, फिर भी पराशरजी ने यही कहा कि परिपूर्ण त्याग अभी नहीं हुआ। तब मैत्री ने कहा कि अब तो केवल यह देह बची है, यदि आप आज्ञा दो तो इस को भी अग्नि में भस्म कर दूं। पराशरजी ने उत्तर दिया कि इस के जला देने से भी पूर्ण त्याग नहीं होगा, ऐसी ही दूसरी देह प्रकट होजावेगी, इस पर मैत्री ने विनय पूर्वक पूछा कि जिस प्रकार पूर्ण त्याग होसके वह बिधि बतलाइये। पराशरजी ने कहा कि त्याग के अभिमान को छोड़ के जो कुछ धन आदि है, उस को परमात्मा का समझ के तन मन और धन से परोपकार करो इसी को पूर्ण त्याग कहते हैं; और इसी में महाआनन्द है। यह कह करके मैत्री का धन आदि उस को पीछा दे दिया ॥

पराशरजी और निर्मोही राजा का आख्यान।

इसी प्रकार से एक राजा ने, जो पराशरजी का शिष्य था आकर उन से कहा कि हे महाराज! मैं संसार के दुःखों से बहुत दुःखी रहता हूं, इन की निवृत्ति का कोई उपाय बतलाइये। पराशरजी ने कहा कि संसार को छोड़ दो, दुःख भी साथ ही छूट जावेंगे। राजा ने कहा कि महाराज! मैं तो संसार त्यागने के लिये बहुत दिनों से उद्यत हूं, केवल इतना विचार है कि मेरा पुत्र अभी छोटी अवस्था में है, जिस समय वह राज्य का काम संभालने योग होजावेगा, मैं तुरन्त राज्य उस को सौंप के संसार को त्याग दूंगा। पराशरजी ने कहा कि यदि वास्तव में तुम को संसार के दुःख क्लेश देरहे हैं और तुम्हारा विचार उन से छूटने का और राज्य के त्याग करने का है, तो पुत्र के जवान होने की बाट देखना आवश्यक नहीं, न जाने वह युवा होने की अवस्था तक जीता रहै वा नहीं और यदि जीता भी रहा, तो राज्य के योग्य होवे वा नहीं अतएव यही उचित है कि राज्य हम को सौंपो और तुम सांसारिक क्लेशों से निवृत्ति प्राप्त करो। राजा ने राज्य तुरन्त पराशरजी को संकल्प कर दिया और प्रसन्नता पूर्वक वहां से उठ कर बन की ओर जाने लगा। उस समय पराशर-जीने कहा कि कहां जाते हो? राजा ने उत्तर दिया कि महाराज! आपने कृपा करके मुझ को राज्य के बोझ से हल्का कर दिया अब मैं जहां चाहूंगा रहूंगा केवल दो रोटी की आवश्यकता है और वह थोड़ासा परिश्रम घड़ी दो घड़ी करके घास खोद कर भी प्राप्त कर सक्ता हूं। पराशरजी ने कहा कि हे राजन्! तुमने कभी घास नहीं खोदी है, इसलिये तुम को उस नवीन काम में अधिक परिश्रम और क्लेश होगा, क्योंकि प्रत्येक काम के प्रारम्भ में क्लेश होता है, इसी प्रकार, हमने राज्य कभी नहीं किया, इसलिये हम को राज्य करने में दुःख होगा, इसी से हम किसी न किसी दूसरे मनुष्य को राज्य

का काम सौंप देंगे, तुम से अधिक योग्य पुरुष हम को नहीं मिल सकेगा, अतएव तुम हमारी ओर से राज्य करो। जो कुछ हानि लाभ हो, वह हमारा तुम केवल दो रोटी के अनुमान अपनी वेतन लेलिया करो और प्रत्येक वर्ष हमारे राज्य का लेखा चोखा हम को समझा दिया करो, राजा ने ऐसा ही किया और इस कारण से कि राज्य अपने गुरू पराशरजी का समझता था, बहुत परिश्रम और जीव झोंक कर न्याय और दया से संपूर्ण कार्य करना आरम्भ कर दिया, जिस के हेतु चारों ओर उन्नति और सुख के सामान दिखाई देने लगे और वह पराशरजी की बुद्धिमानी का बारम्बार धन्यवाद देता था और स्तुति करता था और मन में सोचा करता था कि यदि संपूर्ण राजा, महाराजा, सेठ और साहूकार इसी प्रकार से अपना धन आदि अपने परम गुरू परमात्मा का समझ करके, अपने आप को केवल सेवक जान के, जैसा कि वास्तव में वे हैं, यही न्याय और सचाई का बर्ताव रक्खें तो स्वयं सांसारिक क्लेशों से बचे रहैं और संसार के दुःख भी सुखों से बदल जावें। कुछ काल तक ऐसा बर्ताव रखने से राजा "निर्मोही राजा" के नाम से प्रसिद्ध हो गया क्योंकि जिस में जो गुण होता है, वह शीघ्र वा कुछ कालान्तर में सब को अवश्य ही ज्ञात होजाता है और संपूर्ण उस को उसी नाम से पुकारने लगते हैं। एक दिन निर्मोही राजा का कोई चाकर वन में गया और वहां एक महात्मा साधु से मिलना हुआ साधुने पूछा कि तुम्हारे राजा का क्या नाम है ? चाकर ने कहा कि "निर्मोही राजा" साधु यह सुन के मुस्करा कर, चुप हो रहा और मन में कहने लगा कि देखो सांसारिक लोभ कितना बढ़ गया है कि राजा लोग संपूर्ण सांसारिक सन्मानों से तृप्ति न पाकर, वे उपाधियां जो मुख्य तपों के पीछे साधुओं को भी कठिनाई से मिलती हैं, अपने नाम के साथ लगाने लगे हैं। कुछ दिनों पीछे राजा का कुंवर भी दैवाधीन शिकार

खेलता हुआ, उसी वन में आगया और साधु से जल मांगा। साधुने जल पिलाया और पूछा कि तुम किस राजा के कुंवर हो? उसने उत्तर दिया कि "निर्मोही राजा" का, यह सुन के साधु से न सहा गया विचार किया कि राजा की परीक्षा करनी चाहिये, निदान उसने राजा के पुत्र से कहा कि तुम कुछ काल मेरी कुटिया में ठहरो मैं तुम्हारे पिता की परीक्षा लेने को जाना चाहता हूं। कुंवर उस स्थान में ठहरा रहा, साधु उस बालक का नाम पूछ कर और उस के वस्त्र लोहू में भिगो करके, राजा के महल की ओर गया और प्रगट किया कि राजा का पुत्र सिंह की शिकार करता था, सिंहने उस को फाड़डाला। इस बात को संपूर्ण सेवकों ने सुन कर, एक साधारणसी बात समझ कर, कुछ भी चिन्ता नहीं की, जब साधु राजा के समीप पहुंचा, तो राजा ने केवल यह कहके कि संयोग के साथ वियोग अवश्य है, जो वस्तु उत्पन्न हुई है, वह एक दिन अवश्य ही नष्ट होगी, मेरे पुत्र के शरीर का वियोग इसी रीति से होना था, केवल इतना कह कर, साधु की सेवा और सत्सङ्ग में लग गया। साधु ने यह दशा देख करके, मन और वाणी दोनों से राजा की प्रशंसा की और अपनी परीक्षा का वृत्तान्त राजा को सुना कर पूछा, कि ऐसा उत्तम और पवित्र उपदेश तुम को किस महात्मा के द्वारा प्राप्त हुआ? राजा ने पराशरजी का नाम बताया। साधु पराशरजी के पास गया और उपदेश की बांच्छा प्रगट की। पराशरजी ने उस का समस्त वृत्तान्त सुन कर और विचार द्वारा अनुमान करके, उससे कहा कि पहिले दुष्ट वासना अर्थात् बुरे विचारों को मन से भुलादो, फिर संन्यास धर्म के अधिकारी होगे, क्योंकि महर्षि मनुजीने कहा है कि जिस मनुष्य के मन में दुष्ट वासना उपस्थित है, उस को न विद्या का पढ़ना लाभ पहुंचा सक्ता है, न तप और न मत के दूसरे साधन; और नीचे लिखा हुआ दृष्टान्त भी सुनाया :—

पिपीलिका और मिश्री के पर्वत का दृष्टान्त ।

एक पिपीलिका अर्थात् चिऊंटी एक मिश्री के पर्वत पर रहती थी और मन चाही मिश्री खाकर, सुख से जन्म व्यतीत कर रही थी, कोई दूसरी पिपीलिका उस के पास गई और उस को बहुत प्रसन्न चित्त देख कर, उस प्रसन्नता का कारण पूछा और मिश्री के पर्वत का वृत्तान्त सुन कर, याचना की कि मुझ को भी उस पर्वत की सैर कराइये, निदान पहिली पिपीलिका ने पर्वत का पता बतला दिया। दूसरी पिपीलिका बड़ी प्रसन्नता से उस पर्वत पर गई और संपूर्ण पर्वत पर घूम कर लौट आई, तिस पर भी यही कहा कि वह पर्वत तो लोन का है। पहिली पिपीलिका यह सुन कर, अचम्भित हुई, परन्तु उस की दृष्टि अचानक दूसरी पिपीलिका के मुख की ओर चली गई, जिस में एक लोन का कङ्कर था, निदान उसने हंस कर कहा कि बहिन इस लोन के कङ्कर को मुख से निकाल कर, पर्वत पर जाओ, दृष्टान्त यह है कि यह संसार सुख सागर है, परन्तु जो मनुष्य मन को दुःख रूपी जिह्वा के द्वारा उस में से जल पीते हैं, खारी जान पड़ता है; और अमृत रूपी जिह्वा से पीने में मीठा अर्थात् शुभ कर्म करने वाले पुरुषों को मीठा, अतएव दुष्ट इच्छायें दूर करनी चाहियें। यह दृष्टान्त सुना कर, पराशरजी ने साधु को कहा कि तुम्हारे लिये पहिले मन की चंचलता को रोकना और अन्तःकरण को शुद्ध करना ही उचित उपदेश है और वह योगाभ्यास द्वारा सम्भव है। योगाभ्यास का वर्णन आगामी अध्याय में किया जावेगा॥

दूसरा भाग ।

दूसरा अध्याय ।

योगाभ्यास ।

योगाभ्यास की व्याख्या ।

योगाभ्यास उन साधनों को कहते हैं, जिन के द्वारा मन की वृत्तियां रुकते २ और संकल्प विकल्प कम होते २ मन अत्यन्त शुद्ध और बलवान् हो जाता है, उत्तम २ और नवीन २ विचारांश उत्पन्न होने लगते हैं, बहुतसी मन की शक्तियां, जो बहुधा गुप्त रहती हैं। धीरे २ प्रगट होनी आरम्भ होजाती हैं और चाहे जितने ही दुःख व क्लेश पड़ें वे सब सहन हो सक्ते हैं और उन से निवृत्ति का साधारण उपाय ध्यान में आसक्ता है; शारीरिक आरोग्यता उत्तम होनी और दीर्घ आयु होने का भी यह एक बड़ा साधन है॥

योगाभ्यास का आनन्द ।

थोड़े काल तक अभ्यास करने से मन को एक ऐसा आनन्द प्राप्त होता है जिस की उपमा किसी सांसारिक आनन्द से नहीं दी जासक्ती और न जिह्वा वा लेखनी को सामर्थ्य है कि वर्णन कर सके, परन्तु इतना कहा जासक्ता है कि जैसे कोई पथिक धूप की गर्मी और जल की तृषा से व्याकुल होकर किसी मरुस्थल में घबरा कर घूम रहा हो उस अवस्था में छायादार वृक्ष और शीतल जल मिलने से उस को जैसी तृप्ति मिलनी सम्भव है उससे भी अधिक शान्ति योग

के साधनों से होती है, और यही शान्ति अभ्यासी को भविष्यत् काल में उन्नति करते रहने के लिये उत्साह दिलाने वाली होती है ॥

योगाभ्यास का अधिकारी ।

प्रत्येक देश और प्रत्येक मत और संप्रदायों के संपूर्ण मनुष्य, स्त्री हों वा पुरुष, योगाभ्यास के अधिकारी हैं। इन साधनों में न तो द्रव्य व्यय करने की आवश्यकता है और न घर बार त्याग करने की, किन्तु जैसे २ योगाभ्यास में रस आता जाता है और उत्तमोत्तम सुख प्राप्त होते जाते हैं। वैसे ही तुच्छ सुखों की इच्छायें स्वयं छूटती जाती हैं ॥

योगाभ्यास का समय ।

यद्यपि योगाभ्यास आरम्भ करने और उससे पूर्ण लाभ उठाने के लिये उत्तम समय तो १५ वर्ष से ४५ वर्ष की अवस्था तक है, तो भी जिस मनुष्य ने बचपन में ब्रह्मचर्य्य सेवन किया हो और युवावस्था में विषय भोग में अत्यन्त लम्पट न रहा हो वा पूरी इच्छा रखता हो, वह ४५ वर्ष के स्थान में सत्तर वर्ष की अवस्था तक भी योग साधन आरम्भ करके पूरा लाभ उठा सक्ता है ॥

योगाभ्यास के साधन ।

वे योग साधन, जिन की महिमा ऊपर कही गई है, नीचे लिखे अनुसार हैं। मन की वृत्तियों को जो नेत्र, कर्ण इत्यादि इन्द्रियों के द्वारा नाना प्रकार के बाह्य पदार्थों में फैली हुई हैं, सब पदार्थों से हटा कर अन्तरीय प्रकाश देखने और अनाहत शब्द सुनने में लगाया जावे। ये साधन बाह्य और अन्तरीय भेद से दो प्रकार के हैं और अवस्था, आरोग्यता, चाल चलन, रहनगत, बुद्धि और विद्या की अपेक्षा, इन की असंख्य अवस्थायें हैं, जिन का संक्षेप से वर्णन करना उचित जान पड़ता है ॥

अधिकार के अनुसार साधन करना ।

प्रत्येक पुरुष वा स्त्री को अपने अधिकार अर्थात् योग्यता के अनुसार साधन आरम्भ करने से शीघ्र और उत्तम रीति से सफलता होनी सम्भव है । इस बात का अनुमान कि कौन मनुष्य किस अवस्था के योग साधन करने का अधिकारी है, वह स्वयं सचाई के साथ अपने शुद्ध अन्तःकरण से स्थापित करे और यदि उस को शङ्का रहे तो किसी दूसरे सच्चे निरपेक्ष, सत्यवक्ता और योग्य पुरुष से सम्मति लेकर अनुमान करे वा सावधानी के हेतु लघु पद से ही आरम्भ करदे ॥

योगाभ्यास के नियम ।

इस हेतु से कि मनुष्य के संपूर्ण विचार और कर्मों का प्रतिबिम्ब मन पर पड़ कर, भले वा बुरे प्रभाव हर समय उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये अभ्यासी को सदैव सत्सङ्ग में रहना, और विचार पूर्वक अपने समय का विभाग करके और उस में उचित अदला बदली करते हुए, संपूर्ण कामों को बिधि पूर्वक और नियत समय पर करने का उद्योग करते रहना चाहिये ॥

प्रत्येक काम को नियत समय पर ही करने से, प्रथम तो वह काम सावधानता और उत्तमता से किया जाता है और दूसरे यह लाभ भी होता है कि मन में किसी मुख्य समय में सिवाय उस काम के विचार के, जो उस समय के लिये नियत किया गया है, दूसरे विचार मन में नहीं आने पाते और चित्त में एक समय में एक ही विचार के रहने और दूसरे विचार के न आने से, योग साधन में बहुत सहायता मिलती है । यद्यपि भोजन का भी, विचार और कर्म पर बहुत प्रभाव पड़ता है तो भी अभ्यासी को आरम्भ के समय भोजन के अदला बदली में अधिक ध्यान नहीं देना चाहिये, जैसे २ अभ्यास की शक्ति बढ़ती जावेगी, वैसे ही स्वयं सात्विक भोजन की ओर मन

की रुचि होती जावेगी, केवल इतना विचार रहै कि दुष्पच, कच्चा, सड़ा हुआ, दुर्गन्ध वाला, कटु वा खट्टा पदार्थ काम में न लाया जावे ॥

अभ्यास का समय और बैठक की रीति ।

जिस मनुष्य की अवस्था पन्द्रह वर्ष की हो, वह प्रति दिन नियत समय पर (प्रातःकाल नित्य नियम का समय अत्युत्तम है) शुद्ध, एकान्त और रमणीक स्थान में सिद्धासन से बैठे । सिद्धासन से बैठने की यह रीति है कि बाईं टांग को मोड़ कर उस की एड़ी को अण्ड-कोष के नीचे की सींवन और दाहिनी टांग को मोड़ कर उस की एड़ी को अण्डकोष के ऊपर की सींवन पर रख कर, पालथी मार कर बैठे; और ऊपर के सारे शरीर को तना हुआ रक्खे इस आसन का चित्र पुस्तक के प्रारम्भ में दिया गया है इस आसन के अभ्यास से शरीर की नैरोग्यता भी बढ़ती है ॥

यदि इस आसन में किसी कारण से क्लेश हो, तो जिस प्रकार सुख हो उसी भांति बैठना चाहिये, परन्तु हर अवस्था में शरीर, अवश्य करके गर्दन को तना हुआ रखना अधिक लाभदायक है ॥

सिद्धासन से बैठ कर, मन को शान्त करने का उद्योग करें, यदि मन में क्रोध वा शोक इत्यादि से उद्वेग हो और मन शान्त न हो सके, तो जब तक उद्वेग रहै साधन का आरम्भ न किया जावे । मन को शान्त करने के पश्चात् कम से कम पांच प्राणायाम करे । प्राणा-याम की विधि नीचे लिखी जाती है ॥

प्राणायाम की रीति ।

धीरे २ श्वास को उस स्थान से जहां नाक के दोनों छिद्र एक होते हैं ऊपर खेंच कर और थोड़े काल तक वहां ही रोक कर, फिर उसी प्रकार धीरे २ बाहर निकालना चाहिये और कुछ काल बाहर रोक कर, फिर ऊपर खेंचना चाहिये, श्वास को ऊपर खेंचने में,

रोकने में और बाहर निकालने में इतनी देर न लगानी चाहिये और न इतना बल करना चाहिये कि जिस में थकावट वा क्लेश जान पड़े ॥

ध्यान का जमाना ।

प्राणायाम के पीछे किसी स्थूल पदार्थ पर जिस को अभ्यासी, मन के द्वारा आदर योग्य वा प्रिय जानता हो—जैसे चित्र, मूर्त्ति इत्यादि पर पांच मिनट तक ध्यान जमावे; वा दर्पण सामने रख कर पांच मिनट तक उस पर दृष्टि जमावे अर्थात् दोनों नेत्रों की पुतलियों को देखता रहै—यदि दर्पण की चमक अप्रिय हो तो हरे रंग का पत्र, एक फुट व्यास का, गोलाकार काट कर और उस के बीचों बीच में, अंगुष्ठ के नख के परिमाण एक बिन्दु स्याही से बना कर उस पै ध्यान जमावे। इस के पीछे पांच मिनट तक किसी उत्तम भजन गाने वा धर्म की पुस्तक पढ़ने वा धीमा सुरीला बाजा सुन्ने में कानों को लगावे। इन दोनों साधनों को एक २ अठवाड़ा करने के पीछे, एक २ मिनट बढ़ाना चाहिये। जब प्रत्येक साधन का समय आध घन्टा हो जावे और इतने समय तक आंखों के द्वारा ध्यान, मूर्त्ति, चित्र, दर्पण वा पत्र पर और कानों के द्वारा भजन, धर्म पुस्तक पढ़ने वा सुरीले बाजे का शब्द सुन्ने में भले प्रकार जम सके, तब अभ्यासी को एक विचित्र आनन्द आने लगेगा, उस समय बाह्य साधन आंख और कान को, जैसा कि एक २ मिनट बढ़ाया गया था, उसी प्रकार एक २ मिनट घटाते जाना चाहिये और पांच मिनट तक जिस मूर्त्ति, चित्र वा पत्र पर ध्यान को जमाया हो, उसी का आंखों को मूंद करके उस स्थान पर जहां नेत्रों की दोनों धारा एक होती हैं अर्थात् भवों के बीच में ध्यान करना चाहिये और इसी प्रकार से जिस बाजे का शब्द कानों से सुना था। उसी शब्द को कान बन्द करके अन्तर में सुन्ने का उद्यम करे। जब ये साधन एक

एक मिनट बढ़ते २ आधे घंटे तक पहुंच जावें, तब इन में पहिले से अधिक आनन्द होगा। जब आध घंटे तक ये साधन भी होने लगें, तब इन को भी एक २ मिनट कम करते हुए और पांच २ मिनट तक आंख मूंद करके दोनों भवों के बीच में अन्तरीय प्रकाश को देखना चाहिये और इसी प्रकार कानों को दोनों अंगुष्ठों से बन्द करके पांच मिनट तक अन्तरीय शब्द सुना चाहिये। अन्तरीय साधनों को भी बाहरी साधनों के अनुसार एक २ मिनट प्रत्येक अठवाड़े में बढ़ाना चाहिये जब ये साधन भी बढते २ आधे घंटे तक पहुंच आवेंगे तो पहिले आनन्द से उत्तम आनन्द और कई अनोखी बातें जान पड़ेंगी॥

प्रगट होकि अन्तरीय साधनों में ध्यान को भकुटी इत्यादि के बीचों बीच जमाना और बढ़ाते जाना चाहिये। प्रथम तो ध्यान बीच से किसी ओर को न टले, कदाचित् टले तो दाईं ओर को, बाईं ओर से, अभ्यासियों ने उत्तम माना है॥

इस के पीछे इन अन्तरीय साधनों को भी एक २ मिनट कम करना आरम्भ किया जावे और पांच २ मिनट बिना नेत्र मूंदे अन्तरीय प्रकाश का ध्यान और बिना कान बन्द किये अन्तरीय शब्द का सुना आरम्भ करना चाहिये; और इस अभ्यास को प्रत्येक अठवाड़ा एक २ मिनट बढ़ाना चाहिये। इसी को योग परिभाषा में सविकल्प समाधि और संप्रज्ञात योग का अन्तिम भाग कहा गया है। इस पद पर पहुंच कर प्राणायाम के साधन का त्याग कर देना चाहिये। जिस स्त्री वा पुरुष की अवस्था ४० वर्ष से अधिक हो वा नेत्र वा कर्ण अरोग न हों, उस को बाहरी साधन प्राणायाम और नेत्र और कर्ण के नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जिस की अवस्था २० और ४० वर्ष के बीच में हो और बुद्धि तीव्र और विद्याभ्यास उत्तम हो, वह भी बाहरी साधन न करे॥

पहिली अवस्था वालों अर्थात् ४० वर्ष से अधिक आयु वा जिन को आरोग्यता अच्छी न हो—उन को दर्पण वा पत्र द्वारा बाहरी साधनों के बदले शब्द ओं वा और कोई शब्द जिस में उन की रुचि हो, इतने समय तक अर्थात् जितना समय प्राणायाम, ध्यान और भजन में लगता, मुख से जपना चाहिये; फिर मुख के जप को एक एक मिनट कम करते हुए चुप चाप उंगलियों पर जप करना चाहिये फिर इस जप को भी एक २ मिनट कम करते हुए नेत्र और कर्ण के अन्तरीय साधनों को आरम्भ करना चाहिये। दूसरी अवस्था वाले अर्थात् जिन की बुद्धि तीव्र और विद्या उत्तम हो, वे बाहरी साधन प्राणायाम, ध्यान वा भजन के बदले, धर्म पुस्तक के सुन्ने सुनाने और विचारने में कम से कम आध घन्टा नित्य लगावें और प्रति दिन एक २ मिनट बढ़ाते हुए। जब दो घन्टों तक अभ्यास बढ़ जावे, तब पुस्तक के विचार का एक २ मिनट कम करना आरम्भ करें; और नेत्र और कर्ण के अन्तरीय साधन को पांच २ मिनट तक करना आरम्भ करके, आधे घंटे तक पहुंचावें; और फिर इस साधन को एक २ मिनट घटाते हुए बिना नेत्र और कर्ण मूंदे के अन्तर में प्रकाश को देखने और शब्द के सुन्ने का अभ्यास करें॥

जिन मनुष्यों का चाल चलन उत्तम न हो और अवस्था ३० वर्ष से न्यून और आरोग्यता उत्तम हो, वे बाहरी साधन, प्राणायाम, आंख और कान के साधन और शब्द का जप और धर्म पुस्तकों का सुन्ना सुनाना और इन के अतिरिक्त व्यायाम मुख्य करके बाहू और छाती के साधन क्रिया करें और सात्विक भोजन के सिवाय दूसरा भोजन न करें। संपूर्ण साधनों के लिये जो समय और नियम रक्खा गया है उसी रीति से करें और व्यायाम में न्यून से न्यून आधा घन्टा और लगाया करें जैसे २ उन का चाल चलन उत्तम होता जावे और इच्छायें कम होती जावें वैसे २ बाहरी साधनों और व्यायाम को कम

करते जावें और अन्तरीय साधनों को आरम्भ करते जावें, साधु इत्यादि ऐसे पुरुष, जिन का समय किसी मुख्य व्यापार के काम में नहीं जाता है, उन को अपने अधिकार के अनुसार साधन कम से कम दो घंटे प्रति दिन करना चाहिये और कम बोलना, कम खाना और कम सोने का स्वभाव डालते हुए, कर्म और विचारों को उत्तम बनाने का उद्योग करते रहना चाहिये, जिस किसी को अधिक रुचि हो उस को चाहिये कि इन सब साधनों के अतिरिक्त, निद्रा आने के समय और जागते और सोते रहने के बीच के समय में, जागते रहने का उद्योग करके, ओं इत्यादि का जप करे, इस साधन से बहुत लाभ पहुंचेगा। निर्बल वा वृद्ध मनुष्य इस साधन को न करें, अन्तरीय प्रकाश के ध्यान करने वालों और अन्तरीय शब्द के सुन्ने वालों को कुछ काल तक छोटे २ परमाणु और फिर रक्त पीले नीले इत्यादि सुन्दर रंग बदलते हुए दीख पडेंगे और इसी प्रकार कानों के साधन में पहिले साईं २ का शब्द सुनाई देगा और फिर झींगर के शब्द के तुल्य रसीली ध्वनि सुनाई पडेगी यह पहिला पद है— इस पद में मन एकाग्र होना आरम्भ होता है॥

चित्त वा ध्यान में मुख्य चिन्ह उत्पन्न होने।

कुछ काल के पीछे; जिस का समय नियत नहीं हो सक्ता क्योंकि यह समय अभ्यासी के अवकाश, रुचि, तीव्र बुद्धि और सच्चे विश्वास के आधीन है; चमकते हुए तारों कासा प्रकाश दिखलाई देना आरम्भ होगा और नगारे कासा शब्द सुनाई देगा। यह दूसरा पद है। इस पद में सत्य ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होकर, मनुष्य ऐसा ही चाहने लगेगा और निरर्थक बातों से चित्त हटने लगेगा॥ इस पद में मन इतना शुद्ध होजाता है कि अशुद्ध विचार उत्पन्न होने स्वयं बन्द होजाते हैं—परन्तु मन को कोमलता के हेतु सत्सङ्ग और कुसङ्ग का बहुत तीव्र प्रभाव होता है, इस कारण बहुत सावधानी के

साथ कुसङ्ग का त्याग उचित है। इस के पीछे चन्द्रमा के से प्रकाश वाले मण्डल और घंटे कासा शब्द जान पड़ेगा—यह तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त होकर, सत्य असत्य का विवेक करने और सत्य ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होजावेगी, जिस की प्राप्ति होने पर अभ्यासी निर्भय और निष्पक्ष होजाता है और जिस विषय को विचारता है, उस को यथायोग्य जान लेता है और जिस कार्य को आरम्भ करता है, उस को शीघ्र और उत्तम रीति से पूरा कर देता है। इस अवस्था में धीरे २ सांसारिक कामों में ममता न्यून होती जाती है। इस के पश्चात् एक प्रकार का हल्का और धुंधलासा फैला हुआ श्वेत रंग का प्रकाश दिखलाई देगा और मधुर २ बांसुरी कीसी ध्वनि सुनाई देगी—यह चौथी अवस्था है। इस अवस्था में बहुतसे अभ्यासियों को महात्माओं के दर्शन होकर, उन से प्रेरणा भी होती है और धर्म की सत्यता ज्ञात हो जाती है, जिस के कारण इस अवस्था के मनुष्यों में मत मतान्तरों के भेद कभी नहीं रहते—किन्तु उन के सत्सङ्ग और उत्तम विचारों का जितने मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है, वे भी सत्य धर्म को समझ कर ऊपरी बातों में झगड़े नहीं करते॥

जैसे २ श्वेत प्रकाश और बांसुरी की ध्वनि शुद्ध और उच्च पद की होती जाती है वैसे ही उच्च पद का आनन्द और शान्ति का अनुभव और प्राप्ति होती जाती है। सङ्ग ही सङ्ग सिद्धियां अर्थात् अद्भुत शक्तियां भी प्रगट होती जाती हैं, जिन पर अभ्यासी को कदापि ध्यान नहीं देना चाहिये क्योंकि इन पर ध्यान देने से मन को विक्षेपता होती है और उन्नति में अवरोध हो जाता है॥

जब सिद्धियों में कुछ भी लोभ नहीं रहेगा और अभ्यास बिना किसी विघ्न के होता रहेगा, तब सब सुखों को देने वाली निर्विकल्प समाधि प्राप्त होगी। इस समाधि को अभ्यासी शनैः २ यदि वह चाहे

तो दिनों, सप्ताहों, महीनों और वर्षों तक बढ़ा सक्ता है इन साधनों से अन्तःकरण शुद्ध होकर दुष्ट कर्म और उन का बीज दुष्ट संस्कार भस्म होजाते हैं ॥

प्रश्न—यद्यपि आपने धर्म के संपूर्ण अङ्गों को एक अपूर्व ढंग और नई रीति से वर्णन किया है, तो भी बुद्धि द्वारा वे सब सत्य जान पड़ते हैं—परन्तु योगाभ्यास की विद्या का निरन्तर अभाव होने से और बुद्धि के द्वारा उन का अनुमान न करने के हेतु आवश्यक है कि आप किसी प्राचीन प्रसिद्ध योगी के बचनों का प्रमाण देवें ॥

उत्तर—प्रत्येक देश और जाति में और प्रत्येक मत मतान्तर में असंख्य मनुष्यों का मुख्य करके उन के देहान्त के पश्चात् अनेक प्रकार की शक्तियों वाला होना वर्णन किया जाता है—अतएव उन संपूर्ण का प्रमाण दिया जाना कैसे सम्भव है ?

प्रश्न—आपने अनेक अवसरों पर भरतखण्ड के ऋषियों का प्रमाण दिया है और इस देश में पतञ्जलि मुनि प्रसिद्ध योगी हुए हैं और उन्होंने योग शास्त्र रचा है उन का प्रमाण देना उचित है ॥

उत्तर—पतञ्जलि मुनिने संस्कृत बाणी में, जो उन के समय में, सर्वत्र प्रचलित थी, योग शास्त्र रचा है, वह बोली अब बहुत प्राचीन हो गई है, और बोली भी नहीं जाती है और केवल शब्दार्थ पर वादानुवाद करने वालों ने कभी कभी अपनी बात को सिद्ध करने के अर्थ एक २ शब्द के अनेक और एक दूसरे से विरुद्ध अर्थ किये हैं—जैसे आत्मा का अर्थ किसी स्थान में चैतन्य शक्ति का लिया

गया है और किसी स्थान में जड़ शक्ति का भी लिया गया है इस कारण शब्द प्रमाण के स्थान में सारांश वर्णन करना अति लाभदायक है जिस को वर्णन करने से पहिले यह बतलाना आवश्यक है कि पतञ्जलि मुनि ने योग शास्त्र के लिखने से पहिले योगाभ्यास के साधन करके उस विद्या को प्रगट किया था और वे साधन यही साधारण साधन हैं जिन का संक्षेप वृत्तान्त ऊपर लिखा गया है वरन पतञ्जलि मुनि ने अपने समय की विद्या और धर्म भाव का अनुमान करके उस समय के अधिकारियों के लिये स्पष्ट रीति से लिखा है और महर्षि व्यासजी ने उन के सूत्रों की टीका करके उन को और भी प्रसिद्ध और लाभदायक बना दिया है॥

पतञ्जलि सूत्रसार

अर्थात्

पतञ्जलिजी के योग शास्त्र का सारांश।

योग शास्त्र के चार विभाग हैं:—

१ **समाधि पाद**—जिस में अनेक प्रकार की समाधियों का वर्णन है और उस में ५० सूत्र हैं॥

२ **साधन पाद**—जिस में अभ्यास की सरल रीतियां ५८ सूत्रों में लिखी हैं॥

३ **विभूति पाद**—जिस में सिद्धियों अर्थात् अनूप शक्तियों के प्राप्त होने का वर्णन ५२ सूत्रों में लिखा है॥

४ कैवल्य पाद—जिस में मोक्ष का वर्णन ३४ सूत्रों में लिखा है। योग से प्रयोजन चित्त की वृत्तियों को रोकने का है अर्थात् चित्त की वृत्तियों को दुष्ट संस्कार और दुष्ट कर्मों से हटा कर, शुभ संस्कार और शुभ कर्मों में स्थिर करने और उस के पश्चात् संकल्पों से रहित होने और परमात्मा के समीप पहुंचने को योग कहते हैं ॥

चित्त की संपूर्ण वृत्तियों को पांच विभागों में बांट कर, पतञ्जलिजी कहते हैं कि संपूर्ण क्लेश जो ९ प्रकार के हैं उन वृत्तियों के रोकने से, दूर होजाते हैं ॥

पतञ्जलिजी ने जैसे कि प्रत्येक ग्रन्थकार की रीति है—सब प्रकार के अधिकारियों के लिये उपदेश किया है ॥

प्रथम उत्तम अधिकारी ।

उत्तम अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के संस्कार और कर्म दोनों उत्तम हों उस को अभ्यासी महात्माओं के समीप जाकर वितर्क अर्थात् वादविवाद करना चाहिये यह प्रथम समाधि है, फिर एकान्त में बैठ कर उस बिवाद सम्बन्धी विचार करना चाहिये। यह दूसरी समाधि है जब विचार में आनन्द प्राप्त होने लगे, तो तीसरी समाधि समझना चाहिये। जब सात्विक बुद्धि के द्वारा आनन्द के मूल आत्मा तक पहुंच होवे, उस को चौथी समाधि कहा है; ये चारों सविकल्प समाधि कही गई हैं और चारों का नाम संप्रज्ञात योग रक्खा है क्योंकि ये समाधियां इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा प्राप्त होती हैं। इसके पीछे निर्विकल्प समाधियों के नियम और आनन्द का वर्णन है, जिन का नाम असंप्रज्ञात योग रक्खा है ॥

दूसरा मध्यम अधिकारी।

मध्यम अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के संस्कार दुष्ट हों—परन्तु कर्म श्रेष्ट हों। उस को प्रथम संस्कार उत्तम करने चाहियें, जिन के उपाय नीचे लिखे जाते हैं:—

१ निष्काम कर्म्मों का करना—अर्थात् अपनी इच्छायें और स्वार्थ को त्याग कर, परोपकार के काम करना वा परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना में लगा रहना॥

२ तप—अलङ्कार रूपी कथा में तप की व्याख्या इस रीति से वर्णन की है कि विश्व को एक मार्ग समझो, जिस के उत्तर में अर्थात् ऊंची ओर स्वर्ग है और दक्षिण अर्थात् नीची ओर नरक है मनुष्य का शरीर एक रथ समझो, जिस में इन्द्रियां रूपी अश्व जुते हुए हैं मन रूपी सारथी अर्थात् कोचवान् है आत्मा रूपी राजा उस के भीतर बिराजमान है और बुद्धि रूपी मंत्री उस की आज्ञाओं को मन तक पहुंचाता है। मार्ग के दोनों ओर भांति २ के मनोहर पदार्थ दिखाई देते हैं और भयानक वन और कान्दरायें भी हैं। मन उन को देखने में बारम्बार लग जाता है और अश्वों की पूर्ण सावधानी रख के चलाने के बदले, उन की लगाम ढीली छोड़ देता है और रथ की खड़खड़ाहट में बुद्धि के कहने को नहीं सुनता है। अश्व ऊपर जाने के बदले, जिस में उन को दुःख और परिश्रम होता है, बार २ नीचे की ओर फिर जाते हैं; और भागने लगते हैं और कुमार्ग चल के रथ को

विभागों को बिगाड़ देते हैं। तप से यह प्रयोजन है कि घोड़ों और सारथी को यथायोग्य नियम में रख कर, आवश्यकता के अनुसार, कभी शीघ्र और कभी धीरे २ चलाया जावे और रथ के संपूर्ण अङ्गों को देखा जावे, जब कोई विभाग किञ्चित् भी बिगड़ा हुआ दीखे, उसी समय उस को सुधारा जावे और मार्ग में चाहे जैसी सुन्दर वस्तुयें दृष्टिगोचर हों, उन पर ध्यान न दिया जावे और चाहे जैसी कठिनाइयां हों, उन को धैर्य और वीरता से सहन किया जावे। बारम्बार किसी एक शब्द ओं आदि का जप करने और इस प्रकार से मन के रोकने को भी तप कहते हैं, एकान्त में बैठ कर इन्द्रियों के रोकने को भी तप कहा गया है। शारीरिक राग द्वेषों को रोकने के लिये व्रत करने वा पञ्चधूणी तपने इत्यादि को भी तप कहते हैं तप के द्वारा दुष्ट संकल्पों का बीज भस्म होजाना कहा गया है॥

तीसरा कनिष्ठ अधिकारी।

कनिष्ठ अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के विचार और कर्म दोनों दुष्ट हों उस को उचित है कि परमात्मा को सर्व व्यापी समझ कर दुष्ट कर्म करने से डरता रहै और इसी प्रकार परमात्मा को अन्तर्यामी समझ कर दुष्ट विचार का सङ्कल्प भी मन में न लावे यदि निराकार परमात्मा को ध्यान में न लासके, तो जो वस्तु अत्यन्त प्रिय हो, उस पर ध्यान जमाना चाहिये॥

चौथा अत्यन्त कनिष्ठ अधिकारी।

अत्यन्त कनिष्ठ अधिकारी उस को समझना चाहिये, जिस के संस्कार भी दुष्ट हों और कर्म भी; और उन में इतना मोह होगया

हो वा स्वभाव पड़ गया हो कि उन को त्यागने की इच्छा वा साहस भी न हो सके, परन्तु योगाभ्यास की इच्छा हो उस के लिये अष्टांग योग है॥

अष्टांग योग का बिस्तार पूर्वक वर्णन।

अष्टांग योग से प्रयोजन आठ साधनों से है, जिन में से एक २ ऐसा साधन है जिस का भले प्रकार अभ्यास करने से बुरी अवस्था से बदल जानी सम्भव है; वे आठ साधन ये हैं:—

१—यम॥
२—नियम॥
३—आसन॥
४—प्राणायाम॥
५—प्रत्याहार॥
६—धारणा॥
७—ध्यान॥
८—समाधि॥

इन आठों की संक्षेप व्याख्या इस रीति से है॥

१ **यम**—यम शब्द का अर्थ रोकना है। योग परिभाषा में चाल चलन के पांच नियमों से प्रयोजन है:—

१—अहिंसा॥
२—सत्य॥
३—अस्तेय॥
४—ब्रह्मचर्य्य॥
५—अपरिग्रह॥

अहिंसा—से यह प्रयोजन है कि किसी जीव को दुःख न दिया जावे, न दुःख देने का मन में विचार किया जावे। यह अहिंसा २१ प्रकार की कही गई है और इस को काम में लाने के लिये सदैव बुद्धि को काम में लाना चाहिये—जैसे किसी हत्यारे को फांसी दी जावे वा अपने बचाव वा देश के हित के लिये किसी का प्राण तक भी लिया जावे तो वह हिंसा नहीं है—अहिंसा अर्थात् दया आत्मा का एक गुण है, जब सदैव उस को उत्तम प्रकार से वर्ता जाता है, तो किसी जीव से दुःख नहीं पहुंच सक्ता—क्योंकि मनुष्य का विद्युत्, जो हर समय शरीर से निकलता रहता है, उस में मनुष्य के विचारों का प्रभाव आजाता है। दयावान् मनुष्य का विद्युत्, जहां तक उस का प्रभाव पहुंचेगा, दूसरे जीवों को भी दयावान् बना देगा—यही कारण है कि बहुधा ऐसी बातें सुनी जाती हैं कि कोई महात्मा सिंह वा सर्प के सन्मुख आये—परन्तु उन को कुछ हानि न पहुंची कारण यह है कि उन के विद्युत् के प्रभाव से, वह पशु भी दया के गुण से गुणी होगया ॥

सत्य—से यह प्रयोजन है कि जैसा मन में हो वैसा ही कहै, करै और माने ॥

उत्तम सत्य यह है कि जैसा भविष्यत् में होने वाला हो उस को भी विचार करके वैसा ही कहै। सत्यवादी का मन शुद्ध होकर, उस में प्रकाश उत्पन्न होजाता है और जो कार्य्य वह करता है, वह उत्तम प्रकार से सफलता के साथ अन्त को पहुंच जाता है॥

अस्तेय—से प्रयोजन किसी वस्तु को बिना उस के मालिक की आज्ञा के न लेना—वरन लेने का विचार भी न करना। ऐसी प्रतिज्ञा से उस को प्रत्येक वस्तु यथायोग्य प्राप्त होती रहती है॥

ब्रह्मचर्य्य—से प्रयोजन वीर्य्य की रक्षा और विद्या का पढ़ना है। इस का फल यह है कि शरीर आरोग्य और बुद्धि निर्मल होकर, सदैव आनन्द प्राप्त होता रहता है॥

अपरिग्रह—से यह प्रयोजन है कि सामर्थ्य होने पर भी आवश्यकता से अधिक पदार्थ एकत्र न करना और जितेन्द्रिय रहना। इस साधन के बहुत काल तक ठीक २ करने से जन्म जन्मान्तर के वृत्तान्त ज्ञात होने लगते हैं॥

२ नियम—यह भी पांच हैं :—

१—शौच॥

२—सन्तोष॥

३—तप॥

४—स्वाध्याय॥

५—ईश्वर प्रणिधान॥

शौच—से प्रयोजन शुद्धता से है जब नित्य प्रति शरीर को शुद्ध रखने पर भी बाहर भीतर मलीनता भरी रहती है, तब औरों के शरीर में भी ऐसी ही दशा होने का विश्वास होता है और इस कारण से दूसरों के शरीर से स्पर्श करने को मन नहीं चाहता और अकेला रहना भला लगता है, जिस के हेतु मन में एक मुख्य आनन्द और एकाग्रता प्राप्त होती है ॥

सन्तोष—से यह प्रयोजन है कि जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस के लिये उचित उद्योग किया जावे, फिर भी यदि प्राप्त न हो, तो सन्तोष किया जावे। जो सुख, धन आदि से मिलता है, उस्से बहुत अधिक सुख सन्तोष से प्राप्त होजाता है, इसी कारण से बहुधा महात्माओंने सन्तोष को मोक्ष के सुख के तुल्य कहा है। एक कवि का वाक्य है ॥

दोहा ।

गोधन गजधन बाजिधन, और रत्न धन खान ।
जब आयो सन्तोष धन, सब धन धूर समान ॥२॥

महाराजा भर्तृहरीजी का इतिहास ।

कहते हैं कि भर्तृहरीजी साधुपने की अवस्था में किसी बन में बैठे थे। उस ओर किसी राजा की सवारी आई, राजा के सेवकोंने भर्तृहरीजी से कहा कि राजाजी की सवारी आती है, तुम इधर से

छूट जाओ। भर्तृहरीजीने कहा कि हम महाराजा हैं, राजा को कहदो कि दूसरी ओर को चला जावे। राजाने यह बात सुनली और भर्तृहरीजी से पूछने लगा कि तुम किस प्रकार महाराजा हो? भर्तृहरीजी ने कहा कि तुम किस प्रकार राजा हो? राजा ने उत्तर दिया कि मेरे पास असंख्य सेना है। भर्तृहरीजी ने पूछा कि सेना किस प्रयोजन के लिये है? राजा ने उत्तर दिया कि शत्रुओं को दण्ड देने और जीतने के लिये। भर्तृहरीजी ने कहा कि हम इस कारण महाराजा हैं कि हमारा कोई शत्रु ही नहीं और इसी कारण सेना भी रखने की आवश्यकता नहीं। राजा ने कहा कि मेरे पास असंख्य द्रव्य है, जिस के द्वारा, जिस वस्तु की इच्छा हो, तुरन्त प्राप्त होसकी है। भर्तृहरीजी ने कहा कि तुम द्रव्य इत्यादि से, जिस वस्तु को मन चाहे, प्राप्त कर सक्ते हो और हम किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं रखते, इसी कारण धन आदि प्राप्त करने और रक्षा करने के दुःख से बचे हुए हैं। इस हेतु यदि तुम अपने तईं राजा समझते हो तो हम अपने को महाराजा मानते हैं॥

तप की व्याख्या पहिले कही गई है।

स्वाध्याय—से उन पुस्तकों के पढ़ने वा नित्य पाठ करने से प्रयोजन है, कि जिन के द्वारा अपने स्वरूप का ज्ञान हो कर, सच्चा आनन्द प्राप्त होता है, जो मनुष्य विद्या वाले हों वे आत्म विद्या की पुस्तकें पढ़ें। और जो विद्यावान् न हों, वे परमात्मा का नाम जपें। वास्तव में मनुष्य के भीतर सच्ची विद्या का सोता उपस्थित है

परन्तु एक तङ्ग और अंधेरे जङ्गल में होकर, उस अमृत के सोते पर पहुंचना होता है, यद्यपि विद्यावान् पुरुष विद्या का दीपक लेकर उस मार्ग में सुख से जासक्ता है, परन्तु यह भी सम्भव है कि दीपक के प्रकाश से कई मन के लुभाने वाली वस्तुओं को देखने के कारण सच्चे सोते पर पहुंचना न होसके अर्थात् विद्यावान् का अनेक प्रकार से आदर होता है इस लिये बहुधा विद्यावान् उस सुख और मान बड़ाई की कीचड़ में फंस जाते हैं; और नाम का जप, अंधे की लाठी के अनुसार है कि खटखटाता हुआ धीरे २ चला जाता है। स्थान के पहुंचने पर दोनों को एकसा आनन्द होता है, योग साधनों में स्वाध्याय एक उत्तम साधन समझा गया है, व्यासजी अपने भाष्य अर्थात् योगशास्त्र की टीका में लिखते हैं कि इस साधन करने वाले के पास देवता और सिद्ध और ऋषि लोग जो अन्तरिक्ष लोक में विचरते हैं, दर्शन करने आते हैं; और उस के उत्तम कर्मों और प्रयोजनों में बहुधा सहायता करते हैं॥

ईश्वर प्रणिधान—से प्रयोजन यह है कि परमात्मा को अपना स्वामी समझ कर, उस के अतिरिक्त और किसी पर भरोसा न करना, इस साधन से परमात्मा हर समय सहायक रहता है और उस की सहायता के कारण सारी इच्छायें पूर्ण होजाती हैं॥

३ **तीसरा साधन अष्टांग योगका आसन है**—पतञ्जलिजी कहते हैं कि जिस बैठक से सुख हो बैठना चाहिये, परन्तु जिस बैठक से बहुत काल तक एक पुरुष बैठता है, उसी में सुख जान पड़ता है, मुख्य करके सिद्धासन से बैठना अति लाभ दायक है । जितना दृढ़ आसन होता है उतनी ही योग साधन में सुलभता होती है ॥

४ **चौथा साधन प्राणायाम है**—जिस प्रकार अग्नि में सुवर्ण डालने से उस का मैल, मिट्टी कट जाते हैं, उसी प्रकार से प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के दोष दूर होजाते हैं, मन स्थिर होजाता है और ज्ञान की भी प्राप्ति होजाती है ॥

५ **प्रत्याहार पांचवां साधन है**—प्रत्याहार का शब्दार्थ उलटे भोजन का है, कानों का भोजन अर्थात् विषय सुना और नेत्रों का भोजन देखना है । इस साधारण भोजन से हटा के कानों को भीतर के शब्द सुने में और नेत्रों को भीतर का प्रकाश देखने में लगाना चाहिये इसी प्रकार ये दोनों इन्द्रियां रुक जाती हैं । इन्द्रियों के रुकने से मन भी रुकने लगता है ॥

६ **धारणा**—से यह प्रयोजन है कि हृदय, मस्तक इत्यादि स्थान में चित्त को लगाना और उस स्थान में ज्योति निरंजन अर्थात् प्रकाश रूप आत्मा का अनुभव करना ॥

७ बारम्बार इस प्रकार से करने और उस स्थान में चित्त के स्थिर करने को ध्यान कहते हैं ॥

८ जब भले प्रकार चित्त स्थिर होने लगे और आत्मा के आनन्द में मग्न होकर, उस में रम जावे, उस को समाधि कहते हैं । इस अवस्था को प्राप्त होकर अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, सङ्कल्प—मुख्य करके दुष्ट सङ्कल्प—नष्ट होजाते हैं, बुद्धि सात्विक हो जाती है और सच्चे ज्ञान के सुन्ने और समझने का अधिकार होजाता है, जिस का वर्णन आगामी अध्याय में किया जावेगा ॥

इति

दूसरा भाग।

तीसरा अध्याय।

ज्ञान।

ज्ञान की व्याख्या।

ज्ञान—एक संस्कृत शब्द है जिस का अर्थ जानना है परिभाषा में ज्ञान से यह प्रयोजन है कि अपने स्वरूप को और संसार की सारी सृष्टि को जैसी वह है, भले प्रकार से जानली जावे और उस से यथा योग्य काम लिया जावे॥

ज्ञान प्राप्त होने के लक्षण।

जब योगाभ्यास के द्वारा मल विक्षेप और आवरण अर्थात् शरीर के रोगादिक और पापों की प्रबलता और मन की चंचलता और बुद्धि की अविद्या रूपी मूर्खता का चिन्ह दूर होजाता है, तब जीवात्मा की चमत्कार रूपी शक्ति का अनुभव होने लगता है, जिस का पहिला लक्षण यह है कि विवेक की शक्ति अर्थात् भला वा बुरा सत्य वा असत्य इत्यादि में विवेचना करने की शक्ति उत्पन्न होजाती है॥

भारतवर्ष के ऋषियों ने, इस पद पर पहुंच कर, जान लिया है कि जीवात्मा पांच कोश के भीतर है और चार उस की अवस्थायें हैं परन्तु वह इन सब से निराला है, पांच कोश नीचे लिखे अनुसार कहे जाते हैं॥

कोशों की व्याख्या।

अन्नमय कोश—त्वचा से लेकर अस्थिपर्यंत का समुदाय पृथ्वी तत्व से बना हुआ है॥

२ प्राणमय कोश—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान के समुदाय का नाम है ॥

प्राण जो भीतर से बाहर आता है, **अपान** जो बाहर से भीतर जाता है, **समान** जो नाभि में स्थित होकर सर्व शरीर में रस पहुंचाता है, **उदान** जिससे भोजन और जल मुख के द्वारा भीतर खेंचा जाता है, **व्यान** जिससे शरीर में संपूर्ण हिला चली की जाती है ॥

३ मनोमय कोश—वह है जिस में मन के साथ अहंकार और पांच कर्मेन्द्रियां हैं ॥

४ विज्ञानमय कोश—वह है जिस में बुद्धि, चित्त और पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, जिन से जीवात्मा ज्ञान आदि व्यवहार करता है ॥

५ आनन्दमय कोश—वह है जिस में प्रीति, प्रसन्नता, थोड़ा आनन्द, अधिक आनन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है। ये पांच कोश हैं, जिन के द्वारा जीवात्मा सब प्रकार की कर्म, उपासना, ज्ञान आदि व्यवहार करता है ॥

अवस्थाओं की व्याख्या ।

चार प्रकार की अवस्थायें कही गई हैं :—

१ जाग्रदवस्था—अर्थात् जगने की दशा, इस में जीवात्मा इन्द्रियों में विशेष प्रवेश करके सारे बाहरी व्यवहार करता है ॥

२ स्वप्नावस्था—अर्थात् अर्ध अथवा सामान्य निद्रा इस में इन्द्रियां शान्त होजाती हैं और जीवात्मा का विशेष प्रवेश मन में होता है ॥

३ सुषुप्त्यवस्था—अर्थात् गहरी निद्रा वा अचेतनता इस में इन्द्रियां और मन दोनों शान्त होजाते हैं और जीवात्मा का विशेष प्रवेश अहंकार रूपी बुद्धि में होता है, जिस के कारण जागने पर कहा जाता है कि बड़ी गहरी निद्रा आई और उस में सुख मिला ॥

४ तुरीयावस्था—अर्थात् आनन्द यह अवस्था केवल योग की समाधि के द्वारा प्राप्त होती है, इस में जीवात्मा इन्द्रियों मन बुद्धि और अहंकार से रहित होकर, अपने स्वाभाविक गुणों के द्वारा आनन्द में रहता है ॥

इन सब अवस्थाओं से भी जीवात्मा पृथक् है, वरन इन का प्रेरक, साक्षी और कर्त्ता भोक्ता है ॥

विवेक के द्वारा ज्ञानवान् को जान पड़ता है कि पापाचरण दुःख का मूल कारण है और धर्म्माचरण सुख का मूल कारण है, निदान वह धर्म्माचरण में ही प्रवृत्त रहता है, जिस के कारण सत्य वैराग्य उत्पन्न होता है ॥

वैराग्य की व्याख्या ।

संपूर्ण सांसारिक पदार्थों को असत्य समझ कर, उन में मन न लगाना और असत्य शरीर, मन, इन्द्रियों इत्यादि के द्वारा सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का यत्न करना, सृष्टि की संपूर्ण वस्तुओं से उन के गुण, कर्म और स्वभाव जान कर यथा योग्य काम लेना और परोपकार को परम धर्म समझना वैराग्य कहाता है ॥

सत्योपदेश की प्राप्ति ।

इस प्रकार विवेक और वैराग्य के साधन करने से, ज्ञानवान् को तुच्छ २ बातों से भी उपदेश मिलने लगता है और जितना उस उपदेश का आदर और सच्चे मन से पालन किया जाता है, उतनी ही ज्ञान की प्राप्ति अधिक होती जाती है ॥

दत्तात्रेयजी का वृत्तान्त ।

प्राचीन समय में दत्तात्रेयजी एक प्रसिद्ध योगी हुए हैं। कहते हैं कि उन्होंने चौबीस गुरु धारण किये, जिस का प्रयोजन यह है कि जहां २ और जिस २ प्रकार से उन को ज्ञान का उपदेश हुआ, उस को तुरन्त ही ग्रहण और स्वीकार किया। एक बार दत्तात्रेयजी बाज़ार अर्थात् चौहटे में खड़े थे राजा की सवारी बड़ी धूमधाम से आई, संपूर्ण मनुष्य उस को देखने लग गये, परन्तु एक तीर बनाने वाला अपने कार्य में ऐसा तत्पर था कि उस को राजा की सवारी और संपूर्ण धूमधाम की कुछ भी सुध न रही। दत्तात्रेयजी ने उस को गुरु धारण कर लिया और उस से यह शिक्षा ली कि इसी प्रकार धार्मिक पुरुषों को परमात्मा के ध्यान में इतना मगन होना चाहिये कि सांसारिक धूमधाम का उन को ज्ञान तक भी न हो ॥

इसी प्रकार जीवात्मा के चमत्कार रूपी शक्ति से अन्तर में यही शिक्षायें मिलने लगती हैं कि उन उपदेशों को अति पवित्र समझ कर बिना किसी प्रकार के वादविवाद के तुरन्त उन का पालन करना उचित है। यदि उन आज्ञाओं का पालन नहीं किया जाता तो भविष्यत् काल में उन का मिलना बन्द होजाता है। ये उपदेश, प्रति अवस्था में, लाभदायक ही होते हैं, किन्तु कभी २ उन का लाभ तुरन्त समझ में नहीं आता ॥

ये ही प्रेरणायें हैं जो शब्द, नाद, आकाशवाणी, श्रुति, हदीस, इलहाम इत्यादि नामों से कही जाती हैं ॥

चैतन्यजी का वृत्तान्त।

यह महात्मा बङ्गाल देश में भक्ति मार्ग फैलाने के लिये प्रसिद्ध हुए हैं, कुछ काल तक उपदेश करने के पश्चात्, चैतन्यजी को ऊपर लिखे अन्तरीय प्रकाश के द्वारा, प्रेरणा हुई कि वह गृहस्थाश्रम को त्याग कर, संन्यास धारण करे। चैतन्यजी को अपनी माता से अधिक प्रीति थी, फिर भी उन्होंने अपनी माता और दूसरे सम्बन्धियों की प्रीति और गृहस्थ के सुखों से मुख मोड़ कर, तुरन्त संन्यास धारण कर लिया। थोड़े काल में उन को निश्चय भी होगया कि संन्यास धर्म में वे अपने को और संसार को अधिक लाभ पहुंचा सक्ते थे क्योंकि उस आश्रम में जाने से उन को माता आदि सम्बन्धियों का कुछ भी मोह, सोच और भार नहीं रहा; और वे अपना संपूर्ण समय धर्म के सूक्ष्म भाव और सिद्धान्तों को जानने और फैलाने में लगा सकें, जिस के कारण असंख्य पापी पुरुष धार्मिक बन कर संसार सागर से तिर गये॥

ऊपर लिखे पवित्र प्रकाश के दर्शन होने पर, बहुधा ज्ञानवान् महात्मा तो उस के देखने से तृप्त होजाते हैं और आनन्द में ऐसे मगन होजाते हैं कि बाहरी संसार के संपूर्ण बन्धनों से अपना सम्बन्ध अलग करके और उन्हें चित्त से भुला करके, उन को त्याग देते हैं; और कछवे की भांति अपनी संपूर्ण शक्तियों को छिपा कर, गूंगे के गुड़ की तरह अपने आनन्द का स्वाद चखते रहते हैं, संसारी मनुष्य उन को उन्मत्त समझने लगते हैं और वे संसारी मनुष्यों को भ्रष्ट बुद्धि और बावला समझ के पश्चात्ताप करते हैं। वे मन में हंसते रहते हैं कि सांसारिक मनुष्य सुख की चाहना रखते हुए, कर्म ऐसे करते हैं कि जिन से दुःख प्राप्त हो। सच्चा सुख तो उन के अन्तर में है, परन्तु वे उस को बाहर ढूंढ़ते फिरते हैं और जिस प्रकार से मृग

की नाभी के भीतर तो कस्तूरी होती है और जब पवन में उस की सुगन्ध फैलती है तो मृग उस को बाहर समझ कर कोसों भ्रमण करता फिरता है, वे लोग भी अपने भीतर के कोषों को छोड़ कर, संसार के घोर अन्धकार और मरुस्थल में दौड़ते फिरते हैं और यदि कोई महात्मा दया करके उन की भूल से उन को सचेत करना चाहता है, तो वे उस्से झगड़ा करने लगते हैं और अनेक प्रकार से उस को बदनाम करके दुःख पहुंचाना चाहते हैं, यद्यपि बहुधा महात्मा तो यह अवस्था देख कर चुप हो रहने को भला समझते हैं और अपने आनन्द में ही मगन रहते हैं, परन्तु जिन को परमात्मा की ओर से प्रेरणा होती है, वे सहसों क्लेश और विह्वलता सहन करके और अपने महत् सुख को त्याग के भी उपदेश करना आरम्भ कर देते हैं और उन भूले भटकियों के उद्धार के लिये ऊपर लिखे अन्तरीय प्रकाश से प्रेरणा चाहते हैं॥

निदान इसी पवित्र प्रकाश से शिक्षा लेने के लिये महाराज रामचन्द्रजी प्रति दिन प्रातःकाल के समय एकान्त में बैठा करते थे और उस समय किसी पुरुष को यहां तक कि अपने प्यारे भ्राता लक्ष्मणजी को भी अपने पास नहीं आने दिया करते थे और जब एक दिवस अति आवश्यकता के कारण लक्ष्मणजी उस अवसर पर उन के समीप गये तो रामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए॥

इसी प्रकाश के प्राप्त करने के लिये सांख्य मुनि गौतमजी ने राज्य त्याग छः वर्ष तक तप किया और उस की आज्ञा के अनुसार बौद्ध मत को प्रकाश किया॥

इसी प्रकाश के दर्शन और उस्से आज्ञा लेने के लिये हजरत मूसा तूर पर्वत पर जाया करते थे॥

इसी प्रकाश को प्राप्त करने और उससे प्रेरणा लेने के लिये हज़रत ईसा अपना मत चलाने से पहिले चालीस दिन तक बन में रहे॥

यही प्रकाश है कि जिस के लिये हज़रत मुहम्मद साहिब बहुत कष्ट और इन्द्रियों के दमन के साथ शहर मक्का की गुफ़ाओं में चिल्ले खेंचा करते थे और इसी प्रकाश के द्वारा उन को वही उतरा करती थी॥

यही प्रकाश है कि जिस्से जरदश्त ने आतशपरस्त अर्थात् अग्नि पूजक मत की नीव डाली॥

पंजाब देश के प्रसिद्ध रिफ़ोरमर अर्थात् मत प्रचारक गुरू नानक साहिब और उन के उत्तराधिकारी भी रात के पिछले प्रहर से दिन के पहिले प्रहर तक के समय का बहुतसा भाग इसी पवित्र रोशनी के दर्शन करने और उससे प्रेरणा पाने में लगाया करते थे और उसी के अनुसार धर्म का प्रचार किया करते थे॥

शङ्का—यदि ऊपर लिखे प्रकाश के द्वारा सत्य प्रकाश होता है और ऊपर लिखे कई महात्माओं को हुआ तो बतलाइये कि उन सब के मतों में सत्य ही है वा कुछ असत्य भी? और यदि सत्य ही है तो फिर दूसरे अन्तर क्यों हैं?

समाधान—इस शङ्का का उत्तर सुनने से पहिले यह समझना अवश्य है कि सत्य और असत्य का क्या स्वरूप है॥

सत्य और असत्य का स्वरूप।

सत्य—वह है जो कभी बदले नहीं अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल में एक ही तरह पर रहै। वह केवल ऊपर लिखी हुई चमत्कार रूप शक्ति है, जिस को चैतन्य शक्ति

भी कहते हैं और उस के कई वर्ग हैं, जैसे शरीर के अङ्गों में उस को देवता कहा है प्रत्येक शरीर के भागों के पृथक् २ देवता हैं जो अपने २ भाग में स्वतंत्रता से काम कर सक्ते हैं परन्तु अपने से बड़े भाग की अपेक्षा, आधीनता का सम्बन्ध रखते हैं। इन असंख्य देवताओं को नियम में रखने वाली शक्ति को जीवात्मा कहते हैं, जो संपूर्ण शरीर में व्यापक होकर, जहां तक उस का अधिकार है प्रत्येक काम करने को स्वतंत्र है परन्तु जो कार्य एक बार किया जाता है, उस के उत्तम वा निकृष्ट फल को भोगने के लिये, अपने से बड़ी ईश्वरी शक्ति के आधीन है अर्थात् संपूर्ण जीवात्मा ईश्वर के नियमों के आधीन हैं और जो शक्ति इन सब शक्तियों को सहारा दे रही है और नियम में रखती है, उस को परमात्मा, परमेश्वर और ब्रह्म कहते हैं। वास्तव में एक ही शक्ति है, परन्तु काम पृथक् २ होने के हेतु भिन्न २ नाम रक्खे गये हैं, भरतखण्ड के सर्व साधारण मनुष्य राम नाम से इस शक्ति को पुकारते हैं और लौकिक में "राम नाम सत्य है" यह वाक्य प्रचलित है और मुख्य करके जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उस की रथी के साथ यही वाक्य बारम्बार बोला जाता है, जिस्से अधिक बुद्धिमान् और न्यून बुद्धीय संपूर्ण समझ जाते हैं कि मृत्यु सिर पर स्थित है, और सत्य केवल परमात्मा ही है इसी प्रकार से मुसलमानों के मत में भी सत्य स्वरूप परमात्मा को "हक़ताआला" कहते हैं॥

असत्य—वह है, जो सदैव एक सूरत से दूसरी सूरत में बदलता रहै, जिस को बोल चाल में प्रकृति और जड़ शक्ति भी

कहते हैं और वह स्थूल देह अर्थात् शरीर है, जिस की सब से सूक्ष्म शक्ति बुद्धि है ॥

ऊपर लिखी हुई दोनों सत्य वा असत्य और जड़ वा चैतन्य शक्ति स्वभाव से अनादि हैं। इन में से सत्य शक्ति तो सदैव एक ही प्रकार से रहती है, परन्तु जड़ शक्ति प्रभाव से सदैव बदलती रहती है ॥

अलङ्कार में सत्य शक्ति को अमृत रूपी सर कहा गया है, जो चारों ओर माया रूपी मिट्टी की ऊंची २ दीवारों के कोट से घिरा हुआ है। योगाभ्यास के द्वारा मनुष्य उस सर का अपने अन्तर में अनुभव करता है और संयम रूपी डोल और रस्सी से सांसारिक मनुष्यों के अज्ञान रूपी रोग के नाश करने के हेतु, उस सर में से सात्विक बुद्धि रूपी वर्त्तन में अमृत भर कर बाहर लेआता है और धर्म्म की तृषा वाले मनुष्य उस के पास आकर अपनी तृषा बुझाने लगते हैं। ऊपर लिखा पात्र अर्थात् सात्विक बुद्धि जितना स्वच्छ और विशाल होता है, उतना ही सत्य का प्रकाश उस में अति स्पष्ट और अधिक मात्रा में आता है और उसी परिमाण से उस मनुष्य के उपदेश में अधिक प्रभाव और लाभ होता है और सहस्रों पुरुष उस के कथन को तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं, क्योंकि वह अपनी तीव्र बुद्धि के कारण कठिन से कठिन बात को साधारण शब्दों में कह कर सब को समझा देता है, कई पुरुष अपने निश्चय के अनुसार, उस को भी परमेश्वर वा परमेश्वर के स्थानापन्न समझने लगते हैं, निदान धर्म्म प्रचारक महात्माओं के उपदेश में अन्तरीय भेद तो बुद्धि के परिमाण से होता है और बाहरी भेद के कारण नीचे लिखे जाते हैं ॥

सात्विक बुद्धि से रीफ़ोरमर अर्थात् धर्म्म प्रचारक के हृदय में, जो सत्य का प्रकाश होता है, उस के द्वारा केवल यह प्रेरणा होती है कि जिस सुधार को वह चाहता है, उस में अवश्य सफलता होगी, यह प्रेरणा उस के मन में इतनी जम जाती है कि चाहे जितने दुःख और क्लेश सहने पड़ें, परन्तु वह न घबरा कर, प्रसन्नता पूर्वक उन को सहन करके, अपना कार्य्य किये चला जाता है और उस काम के करने के लिये उस को मुख्य २ रीतियां समयानुकूल उस काल के मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, गृहस्थ, सामाजिक और पारलौकिक धर्म की अवस्थाओं का अनुमान करके, सोचनी और धारण करनी पड़ती हैं, साथ ही उस के पबलिक ओपीनियन् अर्थात् सर्व साधारण की सम्मति, राज्य, प्रकृति, विद्या इत्यादि की अवस्था और प्रभाव का भी ध्यान रखना पड़ता है ॥

अनेक मतों में भेद हो जाने के ऊपर वर्णन किये हुए कारण ऐसे हैं कि वे सदैव बने रहेंगे, परन्तु इन के रहते हुए प्रत्येक सच्चे धर्म का उत्साही, अपने मत वा जिस मत को वह अच्छा समझे, उस के नियमानुसार चलने से मन की इच्छायें पूरी कर सक्ता है ॥

नाना प्रकार के मत मतान्तर जो वर्त्तमान हैं, ये ऐसे समझो कि सच्चे धर्म की प्राप्ति के लिये मानो घाट बने हुए हैं, जिन में होकर ऊपर वर्णन किये हुए अन्तरीय सर पर सहज से पहुंचना सम्भव है, परन्तु उन घाटों के द्वारा अन्दर जाने के बदले, कोट के बाहर खड़े २ यह वाद विवाद किया जावे, कि हमारा घाट उत्तम है और दूसरे संपूर्ण बुरे हैं, तो कोई लाभ नहीं होसक्ता ॥

और यदि वाचक ज्ञानी महात्मा, स्वार्थ इत्यादि से, सच्चे धर्म के उपदेश करने वाले को दुःख देते हैं तो परमात्मा के न्याय में दण्ड के भागी होते हैं, क्योंकि सैकड़ों में से कोई एक ज्ञान की ओर

ध्यान देता है, सहस्रों ध्यान देने वालों में से कोई २ यथायोग्य यत्न करता है और लाखों यत्न करने वालों में से कोई यथार्थ ज्ञान को प्राप्त होता है और करोड़ों ज्ञानियों में से कोई ज्ञान का उपदेश करने के लिये खड़ा होता है, निदान ऐसे विरले परमात्मा के प्यारे उपदेशक को दुःख देने का विचार करना, मानो परमात्मा के विरुद्ध लड़ाई का झगड़ा खड़ा करना है। जो कोई मनुष्य ऐसे महात्मा का अपराध करता है वह जैसे कि कुष्ठ के रोग वाला दुःख पाता है और उस के दुःख का प्रभाव पीढ़ियों तक रहता है, उसी प्रकार अपनी सात पीढ़ी समेत नरक में वास करता है और यदि वह किसी कुल का मुखिया होता है तो सारे कुल को क्लेश होता है, यदि वह जाति का अगवा होता है तो सारी जाति की हानि होती है, यदि राजा होता है तो उस का राज्य नष्ट होजाता है, इस के विरुद्ध जो कोई ऐसे महात्मा का यथायोग्य आदर करता है, वह अपनी सात पीढ़ी समेत स्वर्ग का भागी होता है, कुल का मुखिया हो तो उस का संपूर्ण कुल लाभ उठाता है, जाति का अगवा हो तो सारी जाति उन्नति पाती है, राजा हो तो उस के राज्य में अनेक उन्नतियां होने लगती हैं और जो कोई उस महात्मा के उपदेश का आदर करके, उस के अनुसार चलता है, वह सच्चा ज्ञान प्राप्त करके यह लोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लेता है, अहोभाग्य है वे मनुष्य, वे कुल के मुखिये, वे जाति के अगुए और वे राजा, जो सच्चे महात्मा का पूर्ण आदर करते हैं और उन के उपदेश के अनुसार चलते हैं॥

दूसरी शङ्का।

आपने ज्ञान प्राप्ति की बड़ी लम्बी चौड़ी रीतियां वर्णन की हैं और वेदव्यासजी ने कि जिन्होंने वेदान्त शास्त्र रचा है और शङ्कर

स्वामीने कि जिन्होंने वेदान्त शास्त्र का भाष्य अर्थात् टीका की है ज्ञान प्राप्ति के लिये केवल एक वाक्य जानना उचित समझा है अर्थात् "ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म एक हैं और मैं ब्रह्म हूं" इस को महावाक्य और संपूर्ण वेदों का सार कहते हैं इसी का उपदेश गुरुमंत्र की भांति दिया जाता है क्या इस बात के जानने से मनुष्य ज्ञानवान् नहीं होसक्ता ?

समाधान।

इस वाक्य ही को क्या परन्तु चारों वेदों को भी पढ़ कर ज्ञानी होना सम्भव नहीं, उस समय तक कि वेदों को पढ़ करके उन में जो उपदेश लिखे हैं, उस के अनुसार चिरकाल पर्यंत कर्म न किये जावें, केवल पुस्तक विद्या से वाचक ज्ञानी होकर, अपने को ब्रह्म समझना ऐसा है जैसे कि थिएटर अर्थात् नाटकगृह के कौतुक में राजा इन्द्र का स्वांग बन कर कोई मनुष्य अपने को राजा इन्द्र समझ ले॥

ऋषियों ने असम्प्रज्ञात योग की निर्विकल्प समाधि द्वारा ज्योतिस्वरूप परमात्मा का अनुभव किया है, जिस्से उन को निश्चय हुआ है कि इस जगत् में सार वस्तु, जो स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म है केवल ब्रह्म स्वरूप परमात्मा ही है, उसी से सब पदार्थ उत्पन्न हुए, वही उन सब को सत्ता देरहा है और महाप्रलय के समय उसी में सब पदार्थ लय होजावेंगे, यदि केवल एक वाक्य के जानने से ही ज्ञानी होना सम्भव होता तो बड़े २ ऋषि और मुनियों ने जो बहुत काल तक तप, सत्सङ्ग और योगाभ्यास किया क्या वह सब व्यर्थ था ?

शुकदेव मुनि का वृत्तान्त।

यह महात्मा बादरायण ऋषि अर्थात् वेदव्यासजी के पुत्र हुए हैं, बाल्यावस्था से वैराग्य आदि शुभगुणों से सुशोभित थे, चिरकाल

पर्यंत तप करने के पश्चात् इन्होंने अपने पिता से आत्म विद्या की शिक्षा पाई परन्तु इन को कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति और पूर्ण शान्ति न हुई तब व्यासजी ने इन को राजा जनक के पास उपदेश लेने को भेजा। राजा जनक ने पहिले इन की कई प्रकार से परीक्षा की और जब इन का अन्तःकरण शुद्ध पाया और इन के मन में ज्ञान प्राप्ति की सच्ची अभिलाषा देखी, तब इन के अधिकार के अनुसार उपदेश करके इन की तृप्ति की, यदि केवल एक वाक्य से ही ज्ञानी बनना सम्भव होता तो इतने परिश्रम और उद्योग के बदले वह वाक्य व्यासजी बचपन में ही शुकदेवजी को बतला सक्ते थे वा राजा जनक बिना परीक्षा के उन के पहुंचते ही तुरन्त बतला देते॥

नारदजी का आख्यान।

इसी प्रकार से छांदोग्य उपनिषद् में एक इतिहास आता है कि नारदजी को वेद शास्त्र आदि पढ़ लेने पर भी सच्चे ज्ञान की प्राप्ति और शान्ति न हुई, इस कारण वे जहां किसी ज्ञानवान् पुरुष से मिलते थे उन से ज्ञान प्राप्ति का यत्न पूछते थे और जब वह साधारण पुस्तकों में लिखे नियम बतलाता था, तो नारदजी निरास होकर कहा करते थे कि यह संपूर्ण उपदेश तो हम पुस्तकों में पढ़ चुके हैं, परन्तु उन से ज्ञान और उस के द्वारा परमानन्द प्राप्त नहीं हुआ। अन्त में कहावत प्रसिद्ध है कि "जिन खोजा तिन पाइयां" नारदजी का एक बार सनत्कुमार से मिलाप हुआ उन से भी नारदजी ने ज्ञान प्राप्ति का उपाय पूछा सनत्कुमारजी विद्यावान् अभ्यासी थे, उन्होंने नारदजी से पहिले यह प्रश्न किया कि नारदजी ने क्या, २ विद्या पढ़ी है जिस्से अधिक विद्या का उपदेश करें नारदजी ने उत्तर दिया कि हमने ऋग्, यजुः, साम, अथर्व चारों वेद और आयुर्विद्या आदि चारों उपवेद और ज्योतिष आदि चौदह

विद्या इत्यादि पढ़ी हैं, यह उत्तर सुन कर सनत्कुमारजीने मुसकरा करके कहा कि नारदजी जिस परमात्मा का वर्णन तुमने इन सब पुस्तकों में पढ़ा है उस को योगाभ्यास के द्वारा अपने अन्तर में खोजो, तब सत्य ज्ञान और परमानन्द प्राप्त होगा, यह कह कर योगाभ्यास की सुगम रीतियां नारदजी जैसे शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुष को अधिकार के अनुसार उन्होंने बतलाईं, जिन के द्वारा नारदजी को ज्ञान प्राप्त हुआ ॥

तीसरी शङ्का ।

प्राचीन इतिहासों से यह भी निश्चय होता है कि अभ्यासी महात्माओं ने ज्ञान क्षणभर में भी सिखला दिया है निदान दो प्रसिद्ध इतिहासों का उदाहरण दिया जाता है ॥

जड़ भरतजी और राजा रहूगण का वृत्तान्त ।

कहते हैं कि राजा रहूगण पालकी में बैठे हुए किसी बन में जारहे थे, पालकी का एक कहार बीमार होगया राजा ने आज्ञा की कि उस के बदले दूसरा मनुष्य तुरन्त लाया जावे, दैवाधीन उस बन में जड़ भरतजी विचरते थे, राजा के सेवकों ने उन को पुष्ट और भारी शरीर वाला देख कर, बीमार कहार के स्थान पर पालकी में लगा दिया, जड़ भरतजी ने उस को प्रारब्ध का भोग समझ के कुछ वाद नहीं किया, परन्तु मार्ग में चिऊंटी इत्यादि जीवों को दुःख न पहुंचने के अभिप्राय से देख २ करके कभी जल्द कभी धीरे पांव रखते थे एक बार पालकी को लेकर बैठने लगे तब राजा ने क्रुद्ध होकर उन से वैसा करने का कारण पूछा, जड भरतजी ने धर्म भाव के साथ ऐसे उचित कारण बताये कि राजा के मन पर बड़ा प्रभाव हुआ और उन को ज्ञानवान् महात्मा समझ कर वह पालकी से उतर पड़ा और उन के चरणों पर मस्तक नवाय, अपने दोष को

क्षमा मांगी; और ज्ञानोपदेश की प्रार्थना की, जड़ भरतजी ने उस को एक पल में ऐसा ज्ञानोपदेश किया कि राजा पालकी और अपने सेवकों को त्याग कर उसी बन में ज्ञान के आनन्द में मगन होकर बिचरने लगा॥

राजा जनक और अष्टावक्र का वृत्तान्त।

इसी प्रकार से कहते हैं कि राजा जनक ने यह इच्छा प्रगट की कि कोई उस को एक पल में ज्ञानोपदेश करे, बहुधा महात्मा तो इस इच्छा का पूर्ण होना असम्भव समझते थे, परन्तु महात्मा अष्टावक्र ने राजा से कहा कि हम तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे अर्थात् इतना ही शीघ्र उपदेश कर देंगे, जैसा कि तुम चाहते हो, परन्तु यह बताओ कि उस उपदेश के बदले तुम हम को क्या दोगे? राजा जनक ने कहा कि संपूर्ण राज्य आप के भेट कर दूंगा। अष्टावक्र ने इस में दोष निकाला कि राज्य प्रथम तो प्रजा का है जिस को वे चाहैं राजा बनावें, दूसरे जैसे तुम अपने पिता के स्थानापन्न राजा हुए उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारे पीछे राज्य का अधिकारी है, इस हेतु तुम दूसरे को किस प्रकार देसक्ते हो राजा ने कहा कि अपनी रानी देदूंगा अष्टावक्र ने इस में भी दोष निकाला कि जैसे वह तुम्हारी स्त्री है, इसी प्रकार तुम्हारे पुत्र की माता है, वह कैसे अपनी माता को भेट करने देगा, निदान इसी प्रकार से जिस २ वस्तु को राजा अपनी समझ कर भेट करना चाहता था उन सब वस्तुओं को अष्टावक्रजी सिद्ध कर देते थे कि वे राजा की नहीं हैं, अन्त में राजा ने कहा कि मैं अपना मन संकल्प करनेको उद्यत हूं अष्टावक्रजी ने कहा कि यद्यपि मन भी तुम्हारी वस्तु तो नहीं है, पर तो भी मन को हम भेट में लेना स्वीकार करते हैं, संकल्प करदो। जब राजा ने अपना मन अष्टावक्रजी को भेट

कर दिया अष्टावक्रजी बिना ही उपदेश किये उठ खड़े हुए और वहां से चल दिये, राजा ने पूछना चाहा कि उपदेश क्यों नहीं किया, परन्तु फिर यह सोच कर, कि मन अष्टावक्रजी को संकल्प कर दिया है उस में जो इच्छा उत्पन्न हो वह मेरी इच्छा नहीं है चुप होरहा, एक वर्ष तक इसी प्रकार जो इच्छा मन में होती थी उस को रोक कर निःसंकल्प होगया, एक वर्ष पीछे अष्टावक्रजी फिर आये और राजा के मन को इच्छाओं से रहित देखकर ज्ञानोपदेश किया ॥

समाधान ।

ये दोनों दृष्टान्त हमारे कथन को ही दृढ़ करते हैं। जड़ भरतजी ने राजा रहूगण को उपदेश करते ही अवश्य ज्ञानी बना दिया परन्तु राजा रहूगण बहुत काल से अधिकारी हुआ था और अब कपिलजी के पास उपदेश के लिये चला था इसी कारण तुरन्त ही जड़ भरतजी के उपदेश का प्रभाव होगया, वही उपदेश पालकी उठाने वालोंने भी सुना था परन्तु उन पर कुछ भी प्रभाव न हुआ क्योंकि वे इस मार्ग के भेदू न थे राजा जनक और अष्टावक्र के दृष्टान्त में आप स्वयं कहते हो कि राजा एक वर्ष तक निःसंकल्प रहा । निःसंकल्प होजाना योगाभ्यास का सच्चा साधन है, उस निःसंकल्पता के पीछे प्रत्येक मनुष्य ज्ञानोपदेश से तुरन्त लाभ उठा सक्ता है, अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना, ज्ञानोपदेश चाहे कितने ही बड़े सांसारिक बुद्धि वालों को किया जावे, वह उपदेश कोई मुख्य प्रभाव नहीं कर सक्ता, निदान कहते हैं कि बिदुरजी ने महात्मा सनत्सुजात के द्वारा महाराजा धृतराष्ट्र को महाभारत की लड़ाई से पहिले ज्ञानोपदेश किया, बिदुरजी का प्रयोजन यह था कि इस को ज्ञान प्राप्त होने से सम्भव है कि महाभारत का भयानक युद्ध रुक सके, परन्तु धृतराष्ट्र ने संपूर्ण उपदेश सुन कर उत्तर दिया कि महाराज!

आप के उपदेश ने मेरे हृदय पर बिजली की भांति प्रकाश डाला और उसी के प्रकाश की तरह नष्ट भी होगया। जब विदुरजी ने महाभारत के युद्ध के पीछे, वैराग्य के कारण धृतराष्ट्र का मन इच्छाओं से रहित हो जाने पर, वही ज्ञानोपदेश किया तो तुरन्त उस का प्रभाव हुआ ॥

जिस तरह अग्नि को अच्छी तरह प्रज्वलित किये बिना यदि उस में हवन की सामग्री डाल दी जावे, तो न वह जल सकी है और न उस में से सुगन्ध निकल सकी है, इसी प्रकार से बिना अन्तःकरण की शुद्धि और बिना ज्ञानोपदेश की इच्छा के ज्ञानोपदेश निष्फल जाता है, वरन सुन्ने वाला उस का आदर जैसा चाहिये वैसा नहीं करता है। परमात्मा का यह एक नियम है कि जिस प्रकार भूखे की दृष्टि रोटी के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर नहीं जाती और प्यासे को जब तक पानी न मिले अत्यन्त व्याकुल रहता है, इसी प्रकार से जब ज्ञान प्राप्त होने की सच्ची तृषा लगे और ज्ञान प्राप्ति बिना चित्त किसी ओर न लगे, उस समय ज्ञान प्राप्त होता है, वास्तव में जीवात्मा ज्ञात और अज्ञात दोनों विषयों को जानने वाला है परन्तु मल, विक्षेप और आवरण के चिक्कों से उस का ज्ञान ढका हुआ रहता है, निदान वे चिक्क दूर करने चाहियें, फिर ज्ञानोपदेश प्रत्येक द्वार वा दीवार से स्वयं मिलना आरम्भ होजाता है ॥

प्रश्न—क्या यह सत्य है कि ज्ञानी जन्म मृत्यु से रहित होजाता है अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति से आवागमन छूट जाता है ?

उत्तर—हां यह सत्य है और उस का कारण जानने के लिये पहिले यह जानना चाहिये कि आवागमन क्या तत्व है ॥

आवागमन का कारण ।

जब मृत्यु काल आता है, उस समय जिस इच्छा का मन पर अधिक प्रभाव होता है और जिन २ व्यतीत कर्मों के फल भोगने का समय आजाता है उन दोनों के अनुसार प्रारब्ध बन कर दूसरा जन्म मिलता है, प्रारब्ध के अनुसार उत्तम वा निकृष्ट कुल में राजा वा रङ्क के घर में, आरोग्य वा रोगग्रस्त अवस्था में, जन्म धारण करना होता है। उत्पन्न होने के पश्चात् पिछले कर्म संस्कार रूप होकर श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ इच्छायें उत्पन्न करते रहते हैं और वर्त्तमान सम्बन्ध अर्थात् सत्सङ्ग वा कुसङ्ग इत्यादि का भी प्रभाव पड़ता रहता है, इसी प्रकार से प्रारब्ध और पुरुषार्थ मिल कर जन्म भर भली वा बुरी अवस्था उत्पन्न करते रहते हैं, निदान इस प्रकार से अनन्त कर्म उत्पन्न होकर संचित होते रहते हैं और उन में से कई कर्म बारम्बार प्रारब्ध बन कर भोगे जाते हैं॥

योगाभ्यास के द्वारा प्रारब्ध और संचित कर्मों का अनुमान होता है और धीरे २ उन कर्मों से छूटना आरम्भ होता है अर्थात् योगाभ्यासी पुरुष पहिले अत्यन्त पुरुषार्थ करके दुष्ट कर्मों को श्रेष्ठ कर्मों से काटता है जैसे एक लोहे की गोली साधारण चाल में नीचे की ओर अर्थात् दक्षिण में लुढ़की जारही हो और एक दूसरी गोली किंचित् अधिक बल से उस के पीछे फिर लुढ़काई जावे, इस प्रकार से कि वह दूसरी गोली पहिली से टकरा कर थोड़ीसी दक्षिण, पूर्व की ओर आकर्षण करै तो, पहिली गोली की दिशा भी दक्षिण पूर्व की ओर होजावेगी, इसी प्रकार दुष्ट कर्म भी जो दक्षिण की ओर अर्थात् नरक मार्ग में लेजा रहे हैं उन को पूर्व की ओर अर्थात् शुभ कर्मों के द्वारा स्वर्ग मार्ग की ओर मोड़ना चाहिये और फिर पूर्व से उत्तर की ओर अर्थात् मोक्ष मार्ग की ओर फेरना* चाहिये।

योगाभ्यासी पुरुष अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों से बदल करके, शुभ कर्मों के विभाग करता है और छोटे पद के कर्मों को त्यागन करता हुआ, उच्च पद के कर्मों में प्रवृत्त होता है और उच्च पद के कर्मों से निष्काम कर्मों तक पहुंचता है, जैसे २ निष्काम कर्म अधिक किये जाते हैं, वैसे ही इच्छायें न्यून होती जाती हैं और जब किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती, तो शरीर जो इच्छाओं से बना हुआ है, इच्छा रहित होजाता है और मृत्यु के समय कोई इच्छा के न रहने से दूसरा शरीर नहीं मिलता, निदान योगाभ्यास के द्वारा अन्तः-करण शुद्ध होने पर ज्ञानी जन्म मरण से रहित होजाता है अर्थात् आवागमन से छूट जाता है और सर्व काल मोक्ष के सुख को भोगता रहता है, जिस का वर्णन आगामी अध्याय में किया जावेगा॥

दूसरा भाग।

—•••◉•••—

चौथा अध्याय।

मोक्ष।

मोक्ष की व्याख्या।

मोक्ष एक संस्कृत शब्द है, जिस का अर्थ छूटना है। बोल चाल में मोक्ष उस सुख की अवस्था को कहते हैं, जिस में संसार के दुःखों से निवृत्ति होकर, परमानन्द की प्राप्ति होती है अर्थात् संसार के क्लेशों से छूट कर सदैव का सुख प्राप्त होजाता है॥

मोक्ष के लिये ऋषियों की सम्मति।

भरतखण्ड में जब कि सामाजिक उन्नति का उत्तम प्रबन्ध था और सच्चे धार्मिक पुरुष क्रम से उन्नति करते हुए, मोक्ष की अवस्था को सुगमता से प्राप्त होसक्ते थे, उस समय के कई महात्माओं की मोक्ष के लिये जो सम्मति है वह नीचे लिखी जाती है॥

वशिष्ठजी की सम्मति।

वशिष्ठजी महाराज ने महाराजा रामचन्द्रजी, दूसरे राजकुमारों और अधिकारी पुरुषों को अनेक प्रकार से उपदेश किया है जिस के कारण महाराजा दशरथ, महाराजा रामचन्द्रजी, हनुमानजी, महारानी कौशल्या इत्यादि आठ अधिकारी पुरुष मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुए हैं। उन का विधि पूर्वक वर्णन योगवाशिष्ठ नाम पुस्तक में लिखा है। इन वशिष्ठजी महाराज की सम्मति है कि जब योगाभ्यास

के द्वारा दुष्ट कर्म और दुष्ट वासना क्षय होजाती हैं, तब मनुष्य की संपूर्ण शक्तियां अपने स्वभाव में स्थित होजाती हैं, स्वभाव से विरुद्ध कोई कार्य नहीं करती हैं और इस कारण से कोई दुःख प्राप्त नहीं होता है। जैसे कि गहरी निन्द्रा में स्थूल देह को कुछ सुध नहीं रहती वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी यही दशा होजाती है और अति बाह्य देह से संपूर्ण सुख भोगे जाते हैं, इसी अवस्था को मोक्ष माना है ॥

२ पतञ्जलिजी—जिन्होंने योग शास्त्र रचा है और जिस का संक्षेप वृत्तान्त पारलौकिक धर्म के दूसरे अध्याय योगाभ्यास में होचुका है, सारे क्लेशों से छूटने को मोक्ष कहते हैं। पतञ्जलिजी ने सारे क्लेशों को सारी चित्त की वृत्तियों की भांति पांच विभागों में बांटा है। वे पांच विभाग नीचे लिखे जाते हैं ॥

१ अविद्या—इस को संपूर्ण क्लेशों की जड़ कहा है, इस अविद्या के कारण ही जन्म मरण आदि दुःख सागर में झूलना पड़ता है। पतञ्जलिजी ने अविद्या के भी चार भाग किए हैं ॥

(क) नित्य पदार्थों को अनित्य और अनित्य पदार्थों को नित्य समझना, जैसे परमात्मा जो जगत का निमित्त कारण है और इसी प्रकार से जीवात्मा जो देह का निमित्त कारण है और प्रकृति जो उपादान कारण है ये तीनों अनादि हैं इन को अनित्य समझना और कारज रूप संसार को अर्थात् पृथ्वी तत्व से बने हुए स्थूल शरीर को नित्य समझना अविद्या का पहिला भाग माना है ॥

(ख) शौच में अशौच और अशौच में शौच बुद्धि का करना अर्थात् मल मूत्र आदि से भरे हुए शरीर में पवित्र बुद्धि का करना, स्पर्श इन्द्रियों के भोग में अत्यन्त प्रीति करना, मिथ्या भाषण आदि व्यवहारों को शुद्ध समझना और सत्य भाषण, परोपकार आदि व्यवहारों में अपवित्र बुद्धि का करना अविद्या का दूसरा भाग कहा गया है ॥

(ग) दुःख में सुख और सुख में दुःख बुद्धि का करना अर्थात् विषय, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, हर्ष, शोक, ईर्षा आदि दुःख रूप व्यवहारों में सुख मिलने की आशा करना; और जितेन्द्रियता, सन्तोष, प्रेम, मित्रता आदि सुख रूप व्यवहारों में दुःख बुद्धि का करना अविद्या का तीसरा भाग कहा गया है ॥

(घ) अनात्मा में आत्मा बुद्धि और आत्मा में अनात्मा बुद्धि अर्थात् अपने देह को अजर और अमर समझ कर अपने सुख के लिये पशु पक्षियों आदि में जो आत्मा है उस को जड़ समझ कर, उन को अनेक प्रकार के दुःख देना, यह अविद्या का चौथा भाग है। इस चार भाग वाली अविद्या में फंसे रहने से सदैव बन्धन रहता है ॥

२—दूसरा क्लेश **अस्मिता** का माना है अर्थात् अभिमान और अहङ्कार से अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझ कर, उन की उत्तम शिक्षा और उत्तम गुणों को ग्रहण न करना ॥

३—तीसरा क्लेश **राग** अर्थात् मोह का होना माना है, जब कोई सुख बहुत काल तक भोगा जावे और फिर किसी कारण से वह सुख न रहे, तो उस सुख को स्मरण करके तरसते रहना ॥

४—चौथा क्लेश द्वेष अर्थात् शत्रुता करना माना है, जब किसी कारण से दुःख पहुंचा हो तो उस को स्मरण करके सदा क्रोध बुद्धि होना ॥

५—पांचवां **अभिनिवेश** क्लेश माना है अर्थात् मृत्यु से डर कर सदा यह उद्योग करना कि कभी मृत्यु न आवे ॥

इन क्लेशों से छूटने के उपाय भी पतञ्जलिजी ने कहे हैं अर्थात् महात्माओं के उपदेश और सत्सङ्ग और योग साधनों के नियम से अविद्या नष्ट होजाती है । उस के नष्ट होने से रहे सहे क्लेश भी नष्ट होजाते हैं, अभिमान नम्रता से बदल जाता है, संयोग और वियोग के नियम को अच्छे प्रकार समझने से राग, द्वेश और अभिनिवेश क्लेश का अभाव होजाता है, इसी को मोक्ष माना है ॥

३—**गौतम** ऋषि भी, जिन्होंने न्याय शास्त्र रचा है, अविद्या के दूर होने से ही मोक्ष अवस्था की प्राप्ति मानते हैं । गौतमजी का निश्चय है कि अधर्म, अन्याय, विषय आसक्त आदि की वासना में फंसे रहना दुःख का मूल कारण है, जब वासना दूर होजाती है तो फिर जन्म नहीं मिलता और जन्म न मिलने से सब दुःखों का अत्यन्त अभाव होजाता है, दुःखों के अभाव से सुख ही सुख भोगना शेष रहजाता है और इसी का नाम मोक्ष है ॥

४—**पराशरजी,** जो वेदव्यासजी के पिता थे, कहते हैं कि जीवात्मा मोक्ष अवस्था में अपने स्वाभाविक गुणों से आनन्द भोगता है, इन्द्रियादि पदार्थों का उस अवस्था में अभाव हो जाता है । उन के पुत्र वेदव्यासजी का ऐसा सिद्धान्त है कि भाव और अभाव दोनों ही बने रहते हैं अर्थात् क्लेश, अज्ञान और अशुद्धि का अभाव हो जाता है और आनन्द, ज्ञान, शुद्धता आदि गुणों का भाव बना रहता है ॥

५—जैमनीजी, जिन्होंने पूर्व मीमान्सा शास्त्र रचा है, कहते हैं कि मोक्ष अवस्था में जीवात्मा के साथ शरीर, प्राण और इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति बराबर बनी रहती है, उपनिषदों में भी बहुधा प्रमाण मिलता है कि मोक्ष अवस्था में जीवात्मा संकल्प से शरीर रचलेता है और संकल्प से ही उस को त्याग देता है ॥

बन्ध और मोक्ष बुद्धि का विषय है ।

सत्य बात यह है कि बन्ध और मोक्ष बुद्धि में है, जब बुद्धि मोह और अज्ञान में फंसती है तब बन्धन समझना चाहिये। उस समय हर्ष और शोक होता है और इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान होता है वह मिथ्या और शोक का देने वाला होता है ॥

मोह का उदाहरण ।

कोई साहूकार निर्धन हो गया था, धन कमाने को उसने परदेश में जाने का विचार किया। उस समय उस की स्त्री गर्भवती थी। थोड़े काल में उस के घर पुत्र का जन्म हुआ, जब पुत्र बड़ा हुआ तो उसने अपने पिता का वृत्तान्त पूछ कर, उससे मिलने के लिये देशाटन का विचार किया। इस काल में साहूकार भी धनाढ्य होगया था, उसने भी अपने नगर को पीछा लौट आने और अपने पुत्र से मिलने का विचार किया। दैवयोग से दोनों का मार्ग में एक धर्मशाला में मिलाप हुआ, परन्तु पुत्र को अपने पिता की सुध न थी और पिता अपने पुत्र को नहीं पहिचानता था। पुत्र धर्मशाला में पहिले से आटिका था, पीछे से पिता भी आया और पास ही की कोठरी में ठहर गया। दैवाधीन रात्रि को पुत्र का पेट दूखना आरम्भ हुआ और वह पीड़ा से व्याकुल होकर रुदन और विलाप करने लगा। उस के पिता साहूकारने धर्मशाला के प्रबन्धक को बुला कर और

कुछ द्रव्य देकर कहा कि इस दूसरे पथिक को धर्मशाला से बाहर निकाल दो। हम को इस का रोना चिल्लाना सुन कर निद्रा नहीं आती। पुत्र को अन्त में सराय से बाहर जाना पड़ा और प्रातःकाल उस को ऐसी मूर्च्छा आई कि उस के चाकर नौकर उस को मृतक समझ कर रोना पीटना करने लगे। उस समय साहूकार भी सराय से बाहर निकला और उसने वृत्तान्त पूछा और यह जानने पर कि वह उस का पुत्र था, बहुत शोक करके रोने लगा। उस समय एक धन्वन्तर रूप महात्मा का उस स्थान में पधारना हुआ, उन्होंने संपूर्ण वृत्तान्त सुन कर साहूकार को उपदेश किया कि इस संसार में सब जीव अपने २ कर्म अनुसार मिलते हैं और सुख दुःख भोगते हैं। जब प्रारब्ध रूपी संपूर्ण कर्म का अन्त होजाता है तो देह छूट जाती है और सब सम्बन्ध टूट जाते हैं, निदान उचित यह है कि जन्म से मरण पर्यंत संपूर्ण जीवों से जिस प्रकार का सम्बन्ध हो उस को अत्यन्त उत्तमता के साथ धर्म भाव से निर्वाह करना चाहिये और जब उस की मृत्यु आजावे, जो केवल उसी के अन्तिम कर्मों के भोग पूरे होने पर आती है, तब संयोग वियोग के तत्व को भले प्रकार समझ कर, कुछ शोक नहीं करना चाहिये। इस ज्ञान के उपदेश से साहूकार को कुछ धीरज बंधा और महात्मा ने उस बालक को ध्यान से देखा तो मृत्यु के बदले मूर्च्छित पाया। उचित दवा देने से उस की मूर्च्छा खुली और वह सचेत हुआ और आरोग्यता प्राप्त हुई उस समय साहूकार बहुत प्रसन्न हुआ और अनेक प्रकार से मोह प्रगट करने लगा। उस समय फिर महात्मा साधुने उपदेश किया

कि इस अधिक मोह का फल फिर दुःखदायक होगा, जैसे तुम को उचित न था कि इस अपने पुत्र को पीड़ा की अवस्था में अपना सम्बन्धी न समझ कर, निर्दयता से सराय के बाहर करवा दिया, इसी प्रकार से यह भी उचित नहीं है कि अब अपार प्रीति करो, वरन उचित यह है कि सारे संसार के मनुष्यों को अपना सम्बन्धी समझ कर उन के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार बर्ताव करते रहो। ऐसा करने से न कभी हर्ष होगा और न शोक, परन्तु कृत कृत्य होने से ऐसा आनन्द प्राप्त होगा, जैसा कि मोक्ष का आनन्द होता है ॥

शोक का उदाहरण ।

कहते हैं कि कोई मनुष्य प्रति दिन एक लोटा जल अपने सिराहने रख कर सोया करता था और प्रातःकाल उठते ही वह लोटा लेकर शङ्का निवारण को जाया करता था, एक दिन रात्री को जब वह सोगया, उस की स्त्री ने एक दूसरे लोटे में गेरू घोल कर, वह लोटा भी चारपाई के पास रख दिया। वह मनुष्य प्रातः-काल उठते ही अपने स्वभाव के अनुसार लोटा लेकर जङ्गल को चला गया। जब हाथपानी लेने लगा तो दैवात उस की दृष्टि अपने हाथ पर और बिखरे हुए पानी पर पड़ी, उस में लाल रङ्गत देख कर, समझा कि उस के शरीर से लोहू निकला है। उसी समय शरीर में निर्बलता जान पड़ी, नेत्रों के सामने अंधेरा छागया, बड़े कष्ट से गिरता पड़ता नगर में आया, मार्ग में एक वैद्य मिल गया, उस्से लोहू निकलने का वृत्तान्त कहा। वैद्यजी ने नाड़ी इत्यादि

देख कर, एक बड़ा लम्बा चौड़ा औषध पत्र अर्थात् नुसखा लिख दिया। वह लेकर घर पहुंचा और जाते ही चारपाई पर गिर पड़ा। स्त्री भी बीमारी का वृत्तान्त सुन कर और मुंह को देख कर घबराई। थोड़े काल पीछे स्त्री ने गेरू के लोटे को ढूंढ़ा तो उस के बदले दूसरा लोटा धरा पाया। जब यह भूल उस मनुष्य को ज्ञात हुई तो सारी कल्पित बीमारी चली गई और हंसता हुआ चारपाई से उठ खड़ा हुआ। यह दोनों उदाहरण कान और आंखों के दिये गए हैं, यही दोनों इन्द्रियां हैं, जिन के द्वारा मनुष्य बन्धन में फंसता है, और यही पवित्र द्वार हैं, जिन के द्वारा सत्य ज्ञान होकर, सब बन्धनों से छूट कर मोक्ष सुख को प्राप्त होता है॥

मोक्ष सुख बुद्धि को जीवात्मा के द्वारा मिलता है।

जाग्रत अवस्था में बुद्धि बाहर के पदार्थों और इन्द्रियों के मेल से सुख अनुभव करती है, जब इन्द्रियां स्वप्न अवस्था में शान्त होजाती हैं, तो वैसा ही सुख बुद्धि, अन्तर में इन्द्रियों और बाहरी पदार्थों के बिना भी, मन के द्वारा अनुभव करती है। जब गहरी निद्रा में मन भी शान्त होजाता है, तो भी सुख का अनुभव होता है, जिस को जागने पर वर्णन किया जाता है अर्थात् यह कहा जाता है कि बड़े सुख से निद्रा आई कुछ भी न जान पड़ा॥

और जब योग साधनों के द्वारा बुद्धि, जीवात्मा की चमत्कार रूप शक्ति का, अनुभव करती है तब ऐसा सुख मिलता है कि

बहिर्मुख होने की इच्छा ही नहीं रहती। उससे उत्तम सुख कोई भी नहीं है और वह नित्य रहने वाला है। जिन्होंने उस सुख को प्राप्त किया है, वे और संपूर्ण सुखों को एक बूंद के तुल्य और उस सुख को सागर के तुल्य कहते हैं, उसी को परमानन्द, ब्रह्मानन्द और मोक्ष सुख कहते हैं॥

मोक्ष के भेद।

मोक्ष के दो भेद हैं, जीवन मोक्ष और कैवल्य मोक्ष, जब योगाभ्यास के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब हर्ष शोक से रहित संपूर्ण कर्मों को धर्मानुसार करते हुए और उन के फल की इच्छा न रखते हुए काम आदि विकारों के वेग को रोकते हुए और वैराग्य का सहारा लिये हुए, सदैव काल आनन्द में मगन रहना जीवन मोक्ष का स्वरूप है॥

राजा जनक का वृत्तान्त।

प्रसिद्ध कहावत है कि राजा जनक का एक चरण तो बड़ी सुन्दर स्त्रियां अपने स्तनों से दबाती थीं और एक चरण अग्नि में जलता था परन्तु उन को न सुख होता था और न दुःख अभिप्राय यह है कि राजा जनक युद्ध के समय धर्मानुसार युद्ध करते थे और उस में जो कुछ दुःख वा हानि होती थी उस का सोच नहीं करते थे। अन्तःपुर में जब जाते थे, तो धर्मानुसार वहां के संपूर्ण सुख भोगते

थे । थोड़ासा काल नित्य प्रति एकान्त में बैठने और संसार की अनित्यता पर विचार करने के लिये भी रखते थे और थोड़ा समय सन्त महात्माओं के सत्सङ्ग में भी अवश्य बिताते थे निषिद्ध कर्मों का सदैव परित्याग रखते थे । सकाम कर्मों को करके उन के फल की इच्छा नहीं करते थे, नित्य कर्म शौच आदि को कर्तव्य समझ कर रीति अनुसार किया करते थे और निष्काम कर्मों को उद्योग करके किया करते थे । वाणी मन और शरीर को सदैव अपने वश में रखते थे, इस कारण से उन को जीवन मोक्ष का सुख प्राप्त था और जो मनुष्य इस रीति से जन्म व्यतीत करे, वह जीवन मोक्ष का सुख प्राप्त कर सक्ता है ॥

जब बहुत काल तक जीवन मोक्ष का सुख मिलता रहता है, तब शरीर छूटने पर दूसरी स्थूल देह नहीं मिलती है क्योंकि कोई इच्छा नहीं रहती है और ऊपर लिखा जीवन मोक्ष कासा सुख जीवात्मा के स्वाभाविक गुणों के द्वारा मिलता रहता है, इस अवस्था को कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥

जन्म से ही मोक्ष वा बन्धन का आरम्भ होता है ।

जैसे मनुष्य पचास वर्ष के लगभग तक उत्पन्न होता रहता है और इसी प्रकार से आगामी पचास वर्ष की अवस्था तक मरता रहता है, ऐसे ही मोक्ष वा बन्धन भी एक पल में नहीं होजाता, किन्तु धीरे २ उत्पन्न होता है यदि जन्म लेते ही धर्म में प्रवृत्ति आरम्भ होजावे तो धीरे २ मोक्ष अवस्था की ओर चलना होता है और यदि अधर्म में रुचि होजावे तो बन्धन की ओर ॥

जब बालक जन्मता है उसी समय से जैसा २ उस को बोध होता जाता है, वैसे ही उस के मन में विचार और कर्म उत्पन्न होते जाते हैं, यदि वह अपने माता पिता और दूसरे सम्बन्धियों को छल कपट और मिथ्या भाषण आदि दोषों में फंसे हुए पाता है, तो वह भी उन्हीं दोषों को ग्रहण करना आरम्भ कर देता है और यदि उन को शुभ गुणों, विद्याध्ययन, परोपकार, सत्य भाषण आदि में प्रवृत्त हुए पाता है, तो वह भी उन गुणों को स्वाभाविक ही अङ्गीकार कर लेता है, इसलिये माता पिता आदि सम्बन्धियों को प्रयत्न करके शारीरिक, मानसिक वा आत्मिक धर्म को भले प्रकार स्वीकार करना और अपनी सन्तान को स्वीकार कराना चाहिए, परन्तु ये धर्म उस समय हो पालन होसक्ते हैं, जब गृहस्थ धर्म ठीक हो और गृहस्थ धर्म केवल सामाजिक धर्म की सहायता से यथोचित नियम में रहसक्ता है, सामाजिक धर्म की उन्नति से ही संन्यास आदि पारलौकिक धर्म के नियम भी पालन किए जाना और उन में उन्नति होती रहना सम्भव है, इसलिये संपूर्ण बुद्धिमान् और विद्वान् और देशहितैषी सज्जन पुरुषों को उचित है कि सामाजिक उन्नति में भले प्रकार प्रवृत्त हों और यदि आर्यावर्त्त में इस समय नाना प्रकार की रीति से सामाजिक उन्नति का आरम्भ होगया है, तो भी उन सब रीतियों में धर्म महोत्सव के द्वारा शीघ्र और भले प्रकार सामाजिक धर्म में उन्नति होना सम्भव है, क्योंकि इन में सारे धार्मिक पुरुष और धर्म के खोजी, चाहे वे किसी जाति और संप्रदाय के हों, चाहे वे किसी मत मतान्तर को अच्छा समझते हों और स्वीकार करते हों, वे सब एकत्र होकर सुगम रीतियां सामाजिक उन्नति की सोच सक्ते हैं और काम में लासक्ते हैं ॥

प्रश्न—क्या सामाजिक उन्नति के बिना कोई मनुष्य मोक्ष अवस्था को प्राप्त नहीं होसक्ता ?

उत्तर—सामाजिक उन्नति मानो एक पक्की सड़क है, जिस के द्वारा मोक्ष रूपी पर्वत पर सुगमता से चढना हो सक्ता है परन्तु यदि किसी की सच्ची रुचि हो, तो वह अनेक महात्माओं और उन की पुस्तकों के द्वारा एक पगडण्डी बना कर परिश्रम और क्लेश के साथ चढ़ सक्ता है, परन्तु यह बडे साहस वालों का काम है और उन को भी हर पांवडे पर नीचे गिर जाने का भय रहता है ॥

दूसरा प्रश्न—श्री कृष्णजी महाराजने अर्जुन को सारे धर्मों का उपदेश करके अन्त में यह कहा है कि सब धर्मों को त्याग कर मेरी शरण ले। क्या यह सत्य है और इस रीति से मोक्ष पदवी मिलसक्ती है ?

उत्तर—यह सत्य है और एक साधारण रीति मोक्ष के प्राप्त होने की है, परन्तु इस उपदेश पर चलना बहुत कठिन है और यदि उस के अनुसार बर्ताव किया जावे, तो निराकार परमात्मा उस सच्चे अभ्यासी के हृदय में ऊपर लिखा धर्म प्रगट कर देते हैं वा किसी अभ्यासी महात्मा से उस का सम्बन्ध करा देते हैं, परन्तु परमात्मा पर ही भरोसा रखने से यह प्रयोजन है कि अपने संकल्प को सर्वथा त्याग दे और जो शिक्षा जिस काल अन्तःकरण में मिले तुरन्त उस के अनुसार करे ॥

ग्रन्थकर्त्ता का स्वयं अनुभव ।

पन्द्रह वर्ष से अधिक समय हुआ कि ग्रन्थकर्त्ताने जो किसी शास्त्र वा धर्म पुस्तक से उस समय जानकार न था और न किसी महात्मा का रीति अनुसार सत्सङ्ग किया था, केवल एक परमात्मा पर विश्वास

किया। अन्तरयामी परमात्मा ने सच्ची प्रीति और निश्चय को देख कर एक पूर्ण विद्यावान् और पूर्ण योगी स्वामी शिवगिरजी महाराज से सम्बन्ध कर दिया। यह महाराज कुंजाह, ज़िला गुजरात, देश पंजाब में मौन वृत्ति धारण किये चालीस वर्ष से रहते हैं। मेरा सच्चा भाव देख कर, महात्मा ने स्वप्न द्वारा, उपदेश देना आरम्भ किया जिस का पालन जहां तक हो सका मैंने किया। उन्हीं महात्मा की कृपा दृष्टि और सहायता से विशेष करके, मैंने यह पुस्तक लिखी है और मेरा दृढ़ निश्चय है कि मेरी भांति यदि कोई सच्चे मन से परमात्मा की शरण लेगा और सांसारिक प्रयोजन के बिना और सुख वा दुःख, हानि वा लाभ, आदर वा निरादर का विचार किये बिना परमात्मा का उपदेश प्राप्त करने के लिये, हर समय उद्यत रहै और उस के अनुसार करना अपना कर्तव्य समझे, तो परमात्मा चाहै उस की बुद्धि सात्विक करके उस के हृदय में स्वयं सच्चे ज्ञान का उपदेश कर देवेंगे, चाहै किसी पूर्ण ज्ञानी महात्मा से सम्बन्ध करादेवेंगे और धीरे २ जब वह पूरा अधिकारी होजावेगा, तो उस को मोक्ष का भागी कर देंगे ॥

इति शुभम् ।

॥ श्रीः ॥

साधारण धर्म।

कठिन शब्दों का कोष।

अ

अग्रगण्य—आगे की गिन्ती में आने वाला।

अघाना—भरजाना।

अजर—बूढ़ा नहीं होने वाला।

अजायब—अद्भुत।

अण्डकोष—वीर्य वाहिनी नाड़ी, ब्रह्मांड का खज़ाना।

अतएव—इसी से।

अत्याचार—जुल्म।

अति—बहुत।

अतिरिक्त—सिवाय।

अतिसार—बहुत बहना।

अत्युत्तम—बहुत अच्छा।

अन्तर्गत—भीतर प्राप्त हुआ।

अन्तःपुर—ज़नाना।

अद्वैत—वेदान्त।

अध्यक्ष—मालिक।

अध्याय—पाठ।

अधर्म—पाप।

अधर्मी—पापी।

अधिकारी—हाकिम।

अधिपति—मालिक।

अधृति—अधीर।

अनभिज्ञ—अनजान।

अन्य—दूसरा।

अन्तिम—पिछला।

अनात्मा - मूर्ख।

अनाहत—ध्वनि अर्थात् शब्द जो बिना ताड़ना के उत्पन्न हो।

अनित्य—बिगड़ने वाला।

अनुकरण—नक़ली।

अनुकूल—मददगार।

अनुगामी—पीछे चलने वाला।

अनुचर—चाकर।

अनुचित—अयोग्य ।
अनुपम—अनूप, श्रेष्ठ ।
अनुवाद—उलथा ।
अनुभव—अन्दरी ज्ञान ।
अनुयायी—साथ चलने वाला ।
अनुराग—स्नेह ।
अनुष्ठान—अभ्यास ।
अनुसार—मुताबिक ।
अपठित—बिन पढ़ा ।
अपमान—निरादर ।
अपरा—दूसरी ।
अपरिग्रह—देखो पृष्ठ २११ ।
अपान—देखो पृष्ठ २१८ ।
अप्रिय—बुरा ।
अपेक्षा—से, निस्बत ।
अपोसल—रसूल ।
अफ़ीमची—अमलदार ।
अभ्यास—रब्त ।
अभिप्राय—मतलब ।
अभिमान—घमण्ड देखो पृष्ठ ४०
अभिलाषा—इच्छा ।
अर्पण—देना, सौंपना ।
अल्प—थोड़ा ।
अलङ्कार—आभूषण ।

अवकाश—फ़ुर्सत ।
अवनति—घटाव ।
अवयव—अङ्ग, भाग ।
अवरोध—रुकावट ।
अवलोकन—देखना, पढ़ना ।
अवसर—मौक़ा ।
अवस्था—उम्र, देखो पृष्ठ २१८ ।
अविद्या—मूर्खता, देखो पृष्ठ २३७
अश्व विद्या—सालहोत्र घोड़े की विद्या ।
अश्रद्धा—श्रद्धाहीन, देखो पृष्ठ ७६
अशौच—अपवित्र, देखो पृष्ठ २३८
अष्टांग—आठभाग, देखोपृष्ठ २०८
असहन—नहीं सहना ।
अस्तेय—चोरी न करना, देखो पृष्ठ २११ ।
अस्थि—हड्डी ।
अस्मिता—अपनापन, देखो पृष्ठ २३८ ।
अस्वीकार—नामंजूर ।
असाध्य—बेबश ।
असंख्य—बेशुमार ।
असंप्रज्ञात—नहीं जाना हुआ ।
अहर्निशि—दिन रात ।
अहिन्सा—नहीं मारना ।

अहङ्कार—घमण्ड, गुरूर।

अक्षि—नेत्र।

अज्ञात - नहीं जाना हुआ।

आ.

आकर्षण—खींचना।

आकुल—भरा हुआ।

आख्यान—कहना, वर्णन।

आगामी—आने वाला।

आग्रह—हठ।

आचरण—चलन।

आचार्य—मंत्र का अर्थ करने वाला

आतुरता—जल्दी, पीड़ा।

आत्मिक—आत्मा सम्बन्धी।

आदि—शुरू, प्रथम, वग़ैरा।

आन्तरीय—भीतरी।

आधान—स्थापन।

आध्यात्मिक—मन का दुःख।

आधिदैविक—किसी का दिया हुआ दुःख।

आधिभौतिक—शरीर का दुःख।

आधीन—वश।

आपत्ति—दुःख।

आपदा—आपत्ति।

आयुर्दा—उम्र, अवस्था।

आरम्भ—शुरू।

आरोग्य—तन्दुरुस्त।

आह्लाद—आनन्द।

आवरण—ढकना।

आवश्यकता—ज़रूरत।

आवागमन—आना जाना, मरकर फिर जन्म लेना।

आश्चर्य—अचम्भा।

आश्रम—स्थान, देखो पृष्ठ १७६।

आसक्त—लगा हुआ।

आक्षेप—दुर्वचन।

इ.

इत्यादि—आदि, वग़ैरा।

इलमुलयक़ीन—देखो पृष्ठ ७८।

ई.

ईर्षा—द्वेष।

उ.

उचित—योग्य।

उत्तराधिकारी—पिछला, हाकिम जानशीन, क़ायम मुक़ाम।

उत्कृष्ट—श्रेष्ठ।

उत्पत्ति—पैदायश।

उत्पन्न—पैदा।

उत्साह—उमङ्ग ।

उद्देश—उदाहरण ।

उद्यत—मुस्तैद ।

उद्योग—धन्धा, काम ।

उन्नति—बढ़वारी ।

उन्मत्त—मतवाला ।

उपदेश—शिक्षा, सिखाना ।

उपदेशिका—शिक्षा देने वाली ।

उपनिषद्—वेद का श्रेष्ठ अङ्ग ।

उपवेद—वेद से निकला वेद ।

उपयुक्त—योग्य ।

उपयोगी—लाभकारी ।

उपस्थित—मुस्तैद, मौजूद हुआ ।

उपाधि—बखेड़ा ।

उपासना—देखो पृष्ठ ८६ ।

उभारना—बाहर करना ।

उल्लंघन—उलांगना ।

ऋ

ऋतु—ऋतु छः होती हैं १ चैत्र, बैशाख, बसन्त । २ जेष्ठ, आषाढ़, ग्रीष्म । ३ श्रावण भादों, वर्षा । ४ आसोज, कार्तिक, शरद् । ५ मार्गशिर, पौष, शिशिर । ६ माघ, फाल्गुन, हेमन्त ।

ऋतम्भरा—सत्य से परिपूर्ण ।

ए

एकत्र—एक जगह इकट्ठा ।

एकान्त—तनहाई, गुप्त जगह ।

ऐ

ऐनुलयक़ीन—देखो पृष्ठ ७८ ।

ऐश्वर्य—सामर्थ्य ।

क

कटु—कडुवा ।

कदाचित्—शायद ।

कन्याशाला—लड़कियों का मदर्सा

कनिष्ठ—छोटा ।

कर्तव्य—करने योग्य ।

कर्म—काम ।

कल्पना—विचार ।

कल्पित—बनाया हुआ ।

कष्ट—दुःख ।

कातरता—कायरपन ।

कांग्रेस—मजमा, सभा ।

कान्फेन्स—सभा ।

क्रान्ति—तेज ।

कैथोलिक—ईसाइयों का एक फ़िर्क़ा जिन का महन्त पोप कहलाता है ।

किंचित्—थोड़ा।

कुपित—कोपा हुआ।

कुष्ठ—कोढ़।

कुम्हिलाना—मुर्झाना।

क्रुद्ध—कोपयुक्त।

कृतकृत्य—पूर्ण काम।

कृतार्थ—धन्य धन्य।

कृपाण—तलवार।

कृषिकार—काश्तकार।

केन्द्र—बीच, मर्कज़।

केवल—सिर्फ़।

कोमल—नरम।

कोष—खज़ाना।

कौतुक—तमाशा।

ख.

खिसियाना—गुस्सा करना।

ग.

गज—हाथी।

गज़—एक माप ३ फुट।

गर्भ—बीच, हमल।

ग्रस्त—पकड़ा हुआ।

ग्रहण—पकड़ना।

गुणग्राही—गुण की क़दर करने वाला।

गुप्त—छिपा हुआ।

गृहस्थ - स्त्रीयुक्त।

गोचर—इन्द्रियों के विषय।

गोप्य—छुपाया हुआ।

गौण—साधारण।

घ.

घातक—मारने वाला।

घ्राण—नाक।

घृणा—ग्लानी, नफ़रत।

च.

चक्रवर्ती राजा—बहुतसे छोटे राजाओं का अधिपति।

चपलता—चंचलता।

चक्षु—आंख, नेत्र।

चापलूसी—खुशामद।

चाशनी—रस, स्वाद।

चिरकाल—बहुत समय।

चिरस्थायी—बहुत काल तक रहने वाला।

छ.

छिद्र—छेद, गलती।

ज.

जठराग्नि—पेट की अग्नि ।

जनरल एजूकेशन—आम तालीम

जिज्ञासा—जान्ने की इच्छा ।

ट.

टाइमटेबिल—समय का विभाग ।

टी पार्टी—चाय पिलाने के लिये अपने बहुतसे मित्रों का किसी स्थान में एकत्र करना ।

डेलिगेट—एल्ची, वकील ।

त.

तत्व—सारांश, असली ।

तत्व विवेचक—तत्वों को यथार्थ जान्ने वाला ।

तदाधीन—उस के वश ।

तम—अंधेरा ।

तरी—गीलापन ।

तरुण—जवान ।

त्वचा—चमड़ी ।

तामसी—तमोगुणी, गुस्से वाला ।

त्याग—छोड़ना ।

तितीक्षा—क्षमा ।

तिरस्कार—निरादर ।

तीव्र—तेजवान् ।

तीक्ष्ण—तेज ।

तुच्छ—निकम्मा ।

तृषा—प्यास ।

तोबा—माफ़ी मांगना ।

थ.

थियेटर—नाटक घर ।

थियोसोफ़ीकल—तत्वविवेचक ।

द.

दर्पण—कांच ।

द्रव्य—धन, पदार्थ ।

दान—देना, खैरात ।

दार्ष्टान्त—दूसरा उदाहरण ।

द्वारा—साधन, वसीला ।

दिव्य—चमकीला, प्रकाशवान् ।

द्विविध—दो तरह का ।

दीनार—मुहर, अशरफ़ी ।

दुर्ग—क़िला, गढ़ ।

दुर्गन्ध—बदबू ।

दुश्शील—बुरे स्वभाव वाला ।

दुष्ट—दुःख देने वाला ।

दुष्पच—दुर्जर, कठिनाई से हज़म होने वाला ।

दूरदर्शिता—दूर देश।
दृढ़—मज़बूत।
दृष्टि—नज़र।
देशाटन—परदेश फिरना।
द्वेष—बैर।

ध

धनुर्विद्या—धनुष की विद्या।
धारणा—बुद्धिबल।
धार्म्मिक—धर्म्मवान्, धर्मात्मा।
धी—बुद्धि।
धृति—धारणा।
धैर्य—धीरज।

न

नपुंसक—नामर्द।
नष्ट—नाश।
नाद—ध्वनि, आवाज़।
न्यायशाला—अदालत, इन्साफ़ की जगह।
निकृष्ट—अधम।
नित्य—सदा रहने वाला।
निदिध्यासन—निरन्तर ध्यान में लाना।
निवृत्ति—छुटकारा।
निम्न—नीचे।

निमंत्रण—न्योता, नौता देना।
नियत—मुक़र्रर।
नियम—प्रण।
निरपेक्ष—इच्छा रहित।
निरर्थक—बिना अर्थ।
निरी—केवल।
निरुत्साही—बिन उमङ्ग।
निरूपण—वर्णन करना।
निरन्तर—लगातार।
निर्गम—निकलना।
निर्जन—मनुष्य रहित, शून्य।
निर्णय—निश्चय करना।
निरपराधि—बिना क़ुसूर।
निर्वाह—गुज़ारा।
निर्मल—साफ़, स्वच्छ।
निर्माण—बनाना।
निर्लज्जता—बेशर्मी।
निर्विकल्प—शङ्का रहित।
निवारण—फेरदेना।
निश्चय—ठीक।
निशि—रात्रि।
निष्काम—बेकाम।
निष्पक्षता—बेहिमायत।
नीति—न्याय, क़ानून।

न्यूनाधिक—थोड़ा बहुत ।
नैरोग्यता—तन्दुरुस्ती ।
नैशनल—क़ौमी ।

प.

पटल—ढकणा ।
पठान—मुसलमानों की जात का नाम है ।
पथ्य—हितकारी ।
पथिक—बटोही, राहगीर ।
पबलिक ओपीनियन—आमराय ।
परम—बड़ा ।
परमाणु—बहुत ही छोटा अंश ।
पराजय—हार ।
परास्त—हरा दिया ।
परिमाण—अन्दाजा ।
परिवर्त्तन—बदलना ।
परिवर्त्तनीय—बदलने योग्य ।
परिश्रम—मिहनत ।
परीक्षा—इम्तिहान ।
पर्यंत—तक ।
पश्चात्—पीछे ।
पक्षपात—हिमायत करना ।
प्रकाश—उजाला, चांदना ।
प्रकाशित—ज़ाहिर, प्रकट ।
प्रकृति—स्वभाव, आदत ।
प्रचलित—जारी ।
प्रचारक—चलने वाला ।
प्रचण्ड—तेज ।
प्रज्वलित—जलता हुआ, प्रकाश-युक्त ।
प्रण—प्रतिज्ञा ।
प्रत्याहार—इन्द्रियों को विषयों से रोकना ।
प्रतिकूल—उलटा, विरुद्ध ।
प्रतिबिम्ब—अक्स, परछाहीं ।
प्रतिष्ठित—इज़्ज़त पाया हुआ ।
प्रतिक्षण—हर वक़्त ।
प्रतिज्ञा—नियम, प्रण ।
प्रत्युत्तर—जवाब ।
प्रधान—मुख्य ।
प्रबल—बलवान् ।
प्रबन्ध—बंदोबस्त, इन्तिज़ाम ।
प्रबन्धक—मुन्तज़िम, प्रबन्ध करने वाला ।
प्रवृत्ति—लगना ।
प्रभाव—असर ।
प्रभाविक—असर करने वाला ।
प्रमत्त—मतवाला ।

प्रमाद—असावधानी, गफ़लत।
प्रयत्न—उपाय।
प्रयोजन—आशय, मतलब।
प्रशंसा—तारीफ़, बड़ाई।
प्रसव—जन्माना, जन्ना।
प्रसङ्ग—सिलसिला।
प्रहर—पहर, याम।
प्रज्ञा—अच्छा जानने वाली बुद्धि।
पाठशाला—स्कूल, मदर्सा।
पाणि—हाथ, कर, दस्त।
पातन—गिराना, पटकाना।
पारलौकिक—परलोक का, दूसरे लोक का।
पारितोषक—ख़िलत, इनाम।
पाश्चात्य—पश्चिम के रहने वाले।
प्रागट्य—प्रकट होना।
प्राचीन—पुराना।
प्राप्त—मिलना।
पित्त—शरीर की धातु विशेष।
पिपीलिका—कीड़ी, चिऊंटी।
पीव—रुधिर विकार।
पुतली—प्रतिबिम्ब, नमूना।
पुनरुक्त—कहे हुए को कहना।
पुरुषार्थ—सामर्थ्य।
पुरस्कृत—पहले किया हुआ।
पुष्टि—पोषण।
पूर्णता—समाप्ति।
पूर्वक—अनुसार।
पृथक्—जुदा, अलग।
प्रेरणा—आज्ञा करना।
प्रेषित—भेजा हुआ।
पैग़म्बर—ख़बर लानेवाला, अवतार
पोप—बड़ा पादरी जो रोम (इटली) में रहता है।
पोषण—पालन।
प्रोटैस्टैन्ट—ईसाइयों का एक फ़िर्क़ा।

ब.

बपतिस्मा—देखो पृष्ठ १५८।
बरन—बल्कि।
वर्णन—विषय।
वर्द्धन—बढ़ाव।
बन्द—कैद।
व्यक्ति—प्रगट।
व्यतीत—बीता हुआ।
व्यय—ख़र्च।
व्यवस्था—हालत।
ब्रह्मचर्य—देखो पृष्ठ ६६।
ब्रह्मनिष्ठो—ब्रह्म लयलीन।

बाइबिल—इंजील, ईसाइयों की पवित्र पुस्तक ।

बाजि—घोड़ा ।

बाटिका—बगीची ।

बानप्रस्थ—देखो पृष्ठ १७६ ।

बास—निवास, मुहल्ला ।

बाहन—सवारी ।

बाह्य—बाहर का ।

ब्याधि—दुःख, रोग ।

ब्याप्तता—लगता ।

ब्यापार—पेशा, सौदागरी ।

ब्यास—चौड़ाई ।

विकल्प—देखो पृष्ठ ७६ ।

विकार—बदल ।

विग्रह—लड़ाई ।

विचक्षणता—चतुराई ।

विचित्र—तरह तरह का ।

विपत्ति—आपदा, दुःख ।

विवेचन—पहचान ।

विभाग—खण्ड, टुकड़ा ।

विरुद्ध—उलटा ।

विलम्ब—देर ।

विशाल—बड़ा ।

विषयी—व्यसनी, शौक़ीन ।

विषमता—घटाव बढ़ाव ।

विषय—मज़मून, आशय ।

विसर्ज्जन—त्याग ।

विस्तार—फैलाव ।

ब्यूह रचना—मोरचा बांधना ।

वृषभ—बैल ।

बेदोक्त—वेद के अनुसार ।

बेष—रूप बनाना ।

वैराग्य—विषय त्याग ।

बोधनी—समझाने वाली ।

बौद्ध—बौद्धमती, बुद्धमत में चलने वाला ।

ब्यौहारिक—ब्यौहार में लाने वाला ।

भ

भविष्यत्—आने वाला समय ।

भय—डर ।

भ्रमण—फिरना ।

भारतीय राष्ट्रीय—देखो पृष्ठ १६१

भाषण—बोलना ।

भी—डर ।

भूमिया—ज़मीन्दार ।

भृकुटी—भवें ।

म·

मई—विशेषता के साथ।

मग़ज़—दिमाग़।

मद्यप—शराबी।

मनोरथ—इच्छा, चाह।

ममता—अपनापन, मोह।

मरुस्थल—रेतीला, मैदान।

मर्यादा—हद्द, सींव।

मल—विष्ठा।

महत्—बड़ा।

महत्व—बड़ापन।

महात्यागी—बड़ा छोड़ने वाला।

महाभारत—बड़ी लड़ाई।

महावाक्य—बड़ा जुमला, "तत्वमसि" "अहंब्रह्मास्मि" इत्यादि को वेदान्त में महावाक्य कहते हैं।

महिमा—बड़ाई, तारीफ़।

मातृभाषा—मा की बोली जो बोली घर में बोली जाती है।

मादक—नशे की वस्तु।

माननीय—स्वीकार करने योग्य।

मानसिक—मन सम्बन्धी।

मिशन—धर्मप्रचार।

मूत्र—पेशाब।

मृत—मरा हुआ।

मृत्यु—मौत।

मोजिज़ा—करामात, पर्चा, अद्भुत बात।

मोह—प्रीत।

मोक्ष—छूटना।

मौनव्रत—चुपचाप रहना।

य·

यथायोग्य—जैसा चाहिये वैसा।

यथार्थ—जैसा का तैसा।

यथावत्—अनुसार।

यथोचित्—मुनासिब।

यज्ञोपवीत—जनेऊ।

यावत्—जब तक।

युद्धाभिलाषी—लड़ाई चाहने वाला

युवा—जवान।

यूनीटेरियन—अद्वैतवादी, वेदान्ती

योगाभ्यास—योग साधन।

योग—लायक़।

र·

रजस्वला—पुष्पवती, स्त्री धर्म्म वाली

रज्जु—डोरी, रस्सी।

रहवास—रहने की जगह।

रहस्य—छुपी हुई बात।

रक्षा—बचाव।

राग—स्नेह।

राजकीय—राजा का, सरकारी।

राज्य सभा—राजा की सभा।

राज्याधिकारी—हाकिम।

रामायण—राम चरित्र।

रिफ़ोरमर—इस्लाह देने वाला, धर्म्म प्रचारक।

रोमन कैथोलिक—ईसाइयों का एक फ़िर्क़ा जिन का महन्त पोप कह-लाता है।

रङ्क—दरिद्री, ग़रीब।

ल.

लघुशङ्का—पेशाब।

लज्जा—लाज, शरम।

लम्पट—दग़ाबाज़।

लिपायमान—लिपटा हुआ।

लौकिक—लोक की, संसारी।

लङ्का—जो टापू हिन्दुस्तान के दक्षिण में है उस का नाम लङ्का है।

व.

वायु—पवन।

व्याख्या—वर्णन।

व्यायाम—कसरत।

वास्तव—दरअसल।

वितर्क—विचार।

विदित—मशहूर, प्रसिद्ध।

विद्यमान—मौजूद।

विद्याध्ययन—इल्म का पढ़ना।

विद्यालय—पाठशाला।

विपरीत—उलटा, विरुद्ध।

विभा—चमक, प्रकाश।

विवेक—ज्ञान, बोध।

विशेष—अधिक, ज़्यादा।

विश्व—संसार।

वीर्य—धातु, बल।

वीर्य वाहिनी—धातु वाली।

वृत्तान्त—हाल।

वेतन—तनख़्वा, मोल।

श.

शक्ति—सामर्थ्य।

शरीफ़—अच्छा।

शरीर—देह, बदन।

श्रवण—कान, कर्ण, श्रोत्र।

शारीरिक—शरीर सम्बन्धी।

शाला—स्कूल, मदर्सा।

शान्ति—स्थिरता।

शीघ्र—जल्द।

श्रुति—कान, वेद।

श्रेणी—पंक्ति, अवली।

श्रेष्ठतर—सब से अच्छा।

शोकातुर—रंजीदा।

श्रोत्री—सुनने वाला।

शौच—पवित्र, पाक।

शङ्का—शक, भ्रम, सन्देह।

ष·

षोड़श—सोलह।

स·

सच्चिदानन्द—भगवान्, ईश्वर।

सत्य—देखो पृष्ठ २१०।

सदाचार—अच्छा चलन।

सदुपदेश—अच्छी नसीहत।

सनातन—क़दीमी, आदि का।

संन्यास—आशा रहित, चौथे आश्रम का नाम है।

सफलता—फल सहित होना।

सविकल्प—सन्देह युक्त।

समाधान—उत्तर।

सर—सरोवर।

सर्वजनिक—सब जनों में होने वाला।

सर्वथा—सब तरह।

सहनशक्ति—सहने की सामर्थ्य बर्दाश्त करने की ताक़त

सहमत—एक राय।

सहानुभवता—साथ मिलकर अनुभव करना।

सहानुभूति—हमदर्दी, दुःख सुख का साथी होना।

सहायकता—मददगारी।

संकल्प—देखो पृष्ठ ७६।

संकेत—इशारा।

सन्तति—औलाद।

सन्तान—औलाद।

संथा—सबक़, पाठ।

संदिग्ध—सन्देह युक्त।

संपाद—धनमाल।

संप्रज्ञात—अच्छी तरह जाना हुआ।

सम्बन्ध—रिश्ता।

सम्बन्धी—रिश्तेदार।

सम्वाद—बहस।

सम्भव—मुमकिन, होसकना।

सम्भावना—इच्छा, चाह।

संस्कार—भावना।

संस्कृत—एक बोली का नाम है।

संक्षेप—मुख़सिर ।

स्तन—कुच, छाती ।

स्मरण—याद ।

स्वजातीय—अपनी जात का ।

स्वतंत्र—स्वाधीन ।

स्वतः—आपोआप ।

स्वयं—खुद ।

साखा—डाली, टहनी ।

सात्विक—सतोगुण वृत्ति ।

सामाजिक—पंचायती ।

साहस—हिम्मत ।

स्थानापन्न—एवज़ी ।

स्थापित—ठहराया हुआ, मुक़र्रर

स्मारक—यादगार ।

स्वाधीनता—आज़ादी ।

स्वाभाविक—स्वभाव से ।

स्वार्थ—अपना मतलब ।

सिद्धान्त—अन्त में साबित हुआ अर्थ ।

स्थिति—ठहराव ।

स्वीकार—मंजूर ।

सुकुमारता—कोमलता, नज़ाकत

सुखोच्चार्य—आसानी से बोलने में आसके ।

सुगमता—आसानी ।

सुलभता—आसानी ।

सुष्क—सूखा ।

सुषुप्ति—सोने की हालत ।

स्तुति—बड़ाई, तारीफ़, देखो पृष्ठ ८७ ।

सूक्ष्म—थोड़ा ।

स्थूल—बड़ा ।

सोशेल—सभा सम्बन्धी ।

सौम्य—शुभ ।

हक़ताआला—सत्यरूप परमात्मा, ईश्वर ।

हक़ुलयक़ीन—देखो पृष्ठ ७८ ।

हठवादी—हठसे वाद करने वाला

हदीस—मुसल्मानों का धर्मशास्त्र

हनन—मारना ।

हब्श—देश का नाम, ऐफ़रीका ।

हाजत—चाह ।

ह्री—लाज ।

हृदयग्राही—मनको पकड़ने वाला

हेतु—कारण ।

क्ष·

क्षणभंगुर—थोड़े वक्त में नाश होने वाला।

क्षय--नाश।

क्षोभ—घबराहट।

त्र·

त्रिमूर्तिवाद—ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं का कथन।

ज्ञ·

ज्ञात—जाना हुआ।

शुभम्।